HINDI AUR MARATHI KAVITA MEIN MARXVADI CHETANA KA TULANATMAK ADHYAYAN

A Thesis submitted during 2014 to the University of Hyderabad in partial fulfillment of the award of a **Ph.D. degree** in Department of Hindi, School of Humanities.

By

KALLALIKAR VILAS DAVLAGI
08HHPH09

Department of Hindi
School of Humanities

University of Hyderabad
(P.O.) Central University
Prof. C. R. Rao Road
Gachibowli
Hyderabad - 500 046
Telangana
INDIA

C E R T I F I C A T E

This is to certify that the thesis entitled "**HINDI AUR MARATHI KAVITA MEIN MARXVADI CHETANA KA TULANATMAK ADHYAYAN" (हिन्दी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का तुलनात्मक अध्ययन)** submitted by Kallalikar Vilas Davlagi bearing Reg. No. 08HHPH09 in partial fulfillment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in Hindi is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance which is a plagiarism free thesis. which is a plagiarism free thesis.

TThe thesis has not been submitted previously in part or full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of the Supervisor

Head of the Department

Dean of the School

D E C L A R A T I O N

I, **KALLALIKAR VILAS DAVLAGI**, hereby declare that this thesis entitled "**HINDI AUR MARATHI KAVITA MEIN MARXVADI CHETANA KA TULANATMAK ADHYAYAN" (हिन्दी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का तुलनात्मक अध्ययन)** submitted by me under the guidance and supervision of **Prof. SHASHI MUDIRAJ** is a bonafide research work which is also free from Plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in part or full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in Shodganga/INFLIBNET.

Date :30/06/2014 NAME: KALLALIKAR VILAS

Signature of the Student
Regd. No. 08HHPH09

विषयानुक्रमणिका

पृ. सं.

भूमिका 3-6

प्रथम अध्याय 7-58

हिंदी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का उद्भव और विकास

1.1 हिंदी कविता में मार्क्सवादी चेतना का उद्भव और विकास

1.1.2 स्वतंत्रता पूर्व हिंदी कविता में मार्क्सवादी चेतना का उद्भव और विकास

1.1.2 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में मार्क्सवादी चेतना का उद्भव और विकास

1.2 मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का उद्भव और विकास

1.2.1 स्वतंत्रता पूर्व मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का उद्भव और विकास

1.2.2 स्वातंत्र्योत्तर मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का उद्भव और विकास

निष्कर्ष -

द्वितीय अध्याय 59-131

हिंदी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना

2.1 ईश्वर और धर्म के प्रति मार्क्सवादी दृष्टिकोण

2.2 यथार्थ चित्रण

2.3 सामंतों, महाजनों और पूँजीपतियों के प्रति रोष , घृणा तथा व्यंग

2.4 नारी के प्रति प्रगतिवादी दृष्टिकोण

2.5 वर्ग रहित समाज की परिकल्पना और क्रांति में आस्था

निष्कर्ष -

तृतीय अध्याय 132-214

हिंदी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना : शिल्प के संदर्भ में

3.1 भाषिक विधान

3.2 बिंब विधान

3.3 प्रतीक योजना

निष्कर्ष –

चतुर्थ अध्याय 215-228

हिंदी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना : तुलनात्मक विश्लेषण

उपसंहार 229-233

संदर्भ-ग्रंथ सूची 234-240

भूमिका

भारत बहुभाषी देश है । यहाँ राष्ट्रभाषा हिंदी के साथ-साथ प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा और उसका साहित्य सशक्त रूप में हमारे सामने उभरकर आता है । तुलना करना मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है । विविध भाषाओं के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा परिवेश, संवेदना, अनुभूति, आशय, चरित्र, शैली आदि का गहन अनुशीलन हो रहा है । जिसकी पहल में हिंदी और मराठी भाषा के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन बड़े पैमाने पर हो रहा है । वैसे मराठी और हिंदी का परिवेश अलग-अलग है मगर दोनों भाषाओं के कवियों ने एक ही उद्देश्य को लेकर कई कविताओं का लेखन किया है । खासकर मार्क्सवादी कवियों ने किसान, मज़दूर, मिल-मज़दूर, गरीबी, भूखमरी, धर्म और ईश्वर के प्रति दृष्टिकोण, नारी की स्थिति आदि क्या है ? और क्या होनी चाहिए इन बातों को कविता के माध्यम से चेतन मन को जागृत करने का प्रयास किया है । इससे निश्चित ही पाठक सोचने पर मजबूर और विवश हो जाता है ।

जहाँ तक इस विषय से जुडे मेरे शोध-कार्य "हिंदी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का तुलनात्मक अध्ययन" का सवाल है तो अध्ययन और लेखन की सुविधा की दृष्टि से मैंने शोध-विषय की समय सीमा तय न करते हुए हिंदी कवियों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और मुक्तिबोध तथा मराठी के अण्णाभाऊ साठे, शाहीर अमर शेख और नारायण सुर्वे के काव्य संग्रहों को आधार सामग्री के रूप में उपयोग किया है । मैंने हिंदी और मराठी के उन्हीं कवियों का चयन किया है जो प्रतिबद्ध मार्क्सवादी हैं ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के विषय के समुचित विवेचन को ध्यान में रखते हुए इसे चार अध्यायों में विभक्त किया है । प्रथम अध्याय "हिंदी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का उद्भव और विकास" पर विचार किया गया है । साथ ही सन् 1918 से चयनित कवियों के समय तक स्वातंत्र्य पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर काव्य में मार्क्सवादी चेतना का विकास क्रम को दिखाया है । हिंदी और मराठी कविताओं की

इस मार्क्सवादी परंपरा को रेखांकित करते हुए बराबर इस बात पर भी ध्यान दिया गया है कि बाद के समय में मार्क्सवादी विचारधारा की जो विभिन्न व्याख्याएँ की गई हैं, उसने काव्यक्षेत्र को किस प्रकार प्रभावित किया है।

द्वितीय अध्याय "हिंदी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना" के अंतर्गत चयनीत उभय भाषाओं के काव्य में मार्क्सवादी चेतना के प्रतिफलन को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। और साथ ही मार्क्सवादी चेतना से क्या अभिप्राय है, आधार बिंदु कौन से है और ईश्वर, धर्म, नारी, सौंदर्य के प्रति मार्क्सवादी कवियों के दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है।

तृतीय अध्याय "हिंदी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतनाःशिल्प के संदर्भ में" अंतर्गत मार्क्सवादी कविता के शिल्प पक्ष पर विस्तार से चर्चा की गयी है। हिंदी और मराठी के चयनित कवियों की कविताओं के रूप पक्ष पर स्वतंत्र रूप में भाषा, बिम्ब, प्रतीक, कथन शैली आदि को सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है। और इसमें यह दिखाने का प्रयास रहा है कि कैसे मार्क्सवादी कवियों के कविताओं में आए बिम्ब, प्रतीक , भाषा और सौंदर्य के मानदंड अभिजात कवियों से भिन्न है।

चतुर्थ अध्याय "हिंदी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना : तुलनात्मक विश्लेषण" में हिंदी और मराठी कविता की परंपरा और विकास को तुलनात्मक दृष्टि से उजागर किया है। वस्तु के साथ-साथ काव्य के रूप पक्ष पर भी ध्यान दिया गया है। उभय भाषाओं के कविताओं में ईश्वर, धर्म, स्त्री, यथार्थ और शोषकों के प्रति दृष्टिकोण आदि का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। और अंत में उपसंहार एवं संदर्भ ग्रंथ-सूची।

शोध प्रबंध को पूरा होने में अनेक लोगों की सक्रिय भागीदारी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से अनिवार्य तौर पर रही है। इस शोध विषय के अनछुए पहलू की ओर कार्य करने के लिए प्रो. शशि मुदिराज ने न केवल रास्ता सुझाया, बल्कि लगातार प्रोत्साहित भी करती रही। महाराष्ट्र के प्रा. सरजेराव रणखांब, खंडोजी वाघे और उद्धव धुमाळे ने मेरे शोध से संबंधित कई मराठी अनुपलब्ध पुस्तकों को सहज रूप से

उपलब्ध करने में काफी मदद की। प्रा. दुडुकनाळे, डॉ. दशरत ईबतवार, प्रो.आर.एस. सर्राजू, प्रो. रविरंजन आदि शिक्षकों एवं लेखकों के सुझाव शोध कार्य में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए।

गंभीर एवं नए चुनौतिपूर्ण विषय पर शोध करने की मेरी क्षमता पर भरोसा व विश्वास करने के लिए मैं अपने शोध निर्देशिका आदरणीय प्रो. शशि मुदीराज जी के प्रति कृतज्ञ हूँ। उनका स्नेह और निर्देश पूरी लेखन-यात्रा में अंतर्व्याप्त है। शोध के दौरान अक्सर वैचारिक आदान-प्रदान एवं महत्वपूर्ण बिंदुओं की ओर संकेत के द्वारा ही यह प्रबंध सही मायने में आकार ले पाया है। मेरे शोध विषय के शोध-समिति के सदस्यों के साथ विभाग के अन्य शिक्षकों के स्नेह ने भी शोध को दिशा प्रदान की। इसी विश्वविद्यालय में GUEST FACULTY के रूप में कार्यरत मेरे बड़े भाई डॉ. जी. राजू न केवल शोध करते वक्त हमेशा सहयोगी रहे हैं, बल्कि जीवन के हर संकट में उनका साथ प्रेरणादायी रहा है। हिंदी विभागाध्यक्ष एवं शोध-समिति के प्रति भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत विषय पर मुझे शोध-कार्य करने की अनुमति दी। वर्तमान विभागाध्यक्ष प्रो.वी. कृष्णा के कार्यकाल में यह शोध प्रबंध जमा हो रहा है, उनके प्रति भी मैं आभारी हूँ।

शोध-कार्य से संबंधित पुस्तकों की उपलब्धता के रूप में उस्मानिया विश्वविद्यालय पुस्तकालय (हैदराबाद), सेंट्रल लाइब्रेरी पुस्तकालय (हैदराबाद), पुणे विद्यापीठ पुस्तकालय (पुणे), अंबेडकर विद्यापीठ पुस्तकालय (औरंगाबाद), जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय पुस्तकालय (दिल्ली), मुंबई विद्यापीठ पुस्तकालय (मुंबई), हैदराबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय (हैदराबाद) की महती भूमिका रही है। इस शोध कार्य को पूर्ण होने में जनस, समकालीन चुनौती, आलोचना और विविध पत्र-पत्रिकाओं के जन्मशती विशेषांक का महत्वपूर्ण योगदान रहा। हैदराबाद विश्वविद्यालय के सभी मित्रों को विशेष रूप से धन्यवाद जिन्होंने बहुत कम समय में मुझे अपना बना लिया और हर प्रकार से मेरी मदद की। साथ ही मेरे मित्र शेख मोबिन और अग्रज विनायक काले से लगातार होनेवाले वैचारिक विमर्शों ने हमेशा

साहित्यिक विवेक को ऊर्जा प्रदान की है । प्रकाश चिलवंत, राजू बोलचेटवार, बंडी डैनेल, सिलवेरी हारिनाथ, आनंद आदि मित्रों ने भी संकटपूर्ण समय में शोध को पूरा करने की प्रेरणा एवं उत्साह के लिए न केवल आगे आए वरन् यथासंभव हर तरह से आत्मीय सहयोग दिया । गणेश पालदेवाड ने इस शोध प्रबंध के टंकन कार्य की जिम्मेदारी बखूबी निभायी है। इन सबके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

- कल्लालिकर विलास

प्रथम अध्याय

हिन्दी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का उद्‌भव और विकास

1.1 हिंदी कविता में मार्क्सवादी चेतना का उद्भव और विकास

यह सत्य है कि भारत देश में पूँजीवाद का विकास प्रथम महायुद्ध के कारण हुआ है और मार्क्सवाद का प्रचार-प्रसार रूसी क्रान्ति के कारण । प्रथम महायुद्ध उन देशों के बीच चल रहा था जिन देशों में पूँजीवाद का विकास अपनी चरम सीमा पर था । इंग्लड़, फ्रान्स, रूस और समर्थक मित्र राष्ट्रों का एक गुट बना था, तो जर्मनी, इटली, ऑस्ट्रिया, हंगेरी, टर्की और उनके समर्थक मित्र राष्ट्रों का दूसरा गुट । इन दो गुटों के बीच लगातार चार वर्ष तक युद्ध चलता रहा । इस युद्ध के कारण उन देशों में जनसामान्य और सैनिकों को दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति वहाँ के देश नहीं कर पा रहे थे, तब उन आवश्यकताओं की पूर्ति अधिक मात्रा में भारत देश से हो रही थी । नतिजतन भारतीय कलकारखानों को फलने-फूलने का अच्छा अवसर मिल गया था । यही कारण है कि 1914 से 1918 तक के इस अन्तराल में पाँच हजार से अधिक कल कारखानों की आश्चर्यजनक वृद्धि हुई । इस प्रकार भारत में मार्क्सवाद के प्रचार-प्रसार की पृष्ठभूमि बनी । क्योंकि पूँजीवादी शोषण की नींव पर खड़ा होता है और इस मजदूर और जनसामान्य के शोषण के प्रतिरोध में एक विचारप्रणाली की आवश्यकता होती है । वैश्विक स्तर पर ऐसी विचारधारा के रूप में मार्क्सवाद इस समय तक अपना स्थान बना चुका था एवं उसने शोषण के ख़िलाफ़ दुनिया भर के मज़दूरों को एक हो जाने का नारा बुलन्द किया था । इसका आह्वान मानवीय एवं बौद्धिक स्तर पर था । इसका नतीजा यह हुआ कि भारतीय मज़दूर वर्ग को भी मार्क्सवादी विचार प्रणाली एवं उनके हकों की बात करने वाले विचारप्रवाह के रूप में मार्क्सवाद जल्द ही आकर्षित करने लगा । इसी के प्रतिफलन के रूप में अपने अधिकारों के लिए मार्क्सवादी दृष्टि से जागृत मुंबई मिल मज़दूरों ने सन् 1918 में हड़ताल कर दी । इसके साथ आरंभ होनेवाली श्रृंखला में 1920 तक आते-आते एक विशाल जनजागृति का रूप ग्रहण किया और हजारों हड़तालें हुई, जिसमें करोड़ों मज़दूरों ने शिरकत की ।

अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मार्क्सवादीयों द्वारा हो रही मज़दूर समर्थक गतिविधियों का प्रतिफलन ब्रिटिश शासन के आगे बहुत बड़े उदाहरण के रूप में था । 1917 में हुई रूसी क्रान्ति पूँजीवादी देशों के लिए चिन्ता का विषय बन चुकी थी । इसी के चलते उन्हें अपने व्यापार एवं पूँजीवादी नितियों की रक्षा की चिन्ता सताने लगी । उसी के चलते अपने औपनिवेशिक देशों में मार्क्सवाद के प्रचार-प्रसार पर पाबंदी लगाना उन्हें अनिवार्य महसूस होने लगा । भारत में भी मार्क्सवादी समर्थकों एवं रचनाकारों के दमन के लिए ब्रिटिश शासन ने मोर्चा खोल दिया और मार्क्सवादी समर्थकों को विभिन्न मार्गों से दंडित किया जा रहा था । फिर भी मुजफ्फर अहमद, श्रीपाद अमृत डांगे आदि लोगों ने गुप्त रूप से कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की तथा डांगे ने भारत की पहली समाजवादी पत्रिका 'सोशियालिस्ट' की स्थापना एवं संपादन किया । 'इन्कलाब' जैसी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से मार्क्सवादी विचारधारा का मज़दूर एवं श्रमिक वर्ग में प्रचार-प्रसार किया जाने लगा और इसके साथ ही सृजनात्मक कलाओं का क्षेत्र भी मार्क्सवादी विचारधारा से अछूता न रह सका ।

1.1.1 स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी कविता में मार्क्सवादी चेतना का उद्‌भव और विकास

भारतीय भाषाओं में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित जो कविताएँ सामने आयी, उनमें अधिकतर मार्क्सवादी विचारधारा और रूसी क्रान्ति के प्रति प्रशंसात्मक और प्रचारात्मक लहजा लिए हुए हैं । इसका कारण बताते हुए जनेश्वर वर्मा ने लिखा है, "अस्तु सन 1918 से सन् 1922 तक के युद्धोत्तरकालीन आरंभिक युग में हमें यत्र-तत्र जो कुछ भी थोड़ा-बहुत साहित्य दिखाई देता है वह मूल रूप में प्रशंसात्मक और प्रचारात्मक है । जिसमें एक व्यवस्थित विचार श्रृंखला का अभाव है ।"[1] यह ध्यान देने योग्य बात है कि व्यवस्थित विचार श्रृंखला का अभाव तभी होता है जब किसी विचारधारा के सैद्धान्तिकी के बारे में परिपूर्ण ज्ञान का अभाव होता है और उसमें धुँधलका होता है ।

धीरे-धीरे भारतीय जन-मानस में मार्क्सवादी सैद्धान्तिकी विचारों का स्पष्ट रूप से प्रचार-प्रसार होने लगा था । अन्याय-अत्याचार और शोषण का विरोध करने के लिए कई कवि आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ रहे थे । हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना का आरंभ जनेश्वर वर्मा श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' से मानते हैं - "सन् 1918 से भारतीय जन जीवन

---

1. हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना – जनेश्वर वर्मा , पृ.223-24

में जो एक नया मोड़ आया, उस पर हिन्दी के काव्य क्षेत्र में यदि किसी ने सबसे पहले दृष्टि डाली, तो वे थे श्री गयाप्रसाद शुक्ल सनेही । जिस समय उनके समकालीन अन्य समस्त कवि इस विषय पर मौन धारण किए हुए अँधेरे में भटक रहे थे कोई वर्तमान से मुँह मोड़कर अतीत के गौरवगीत गा रहा था, कोई किसान-मज़दूरों की दीन-दशा को देखकर आँसू बहा रहा था तो कोई दैन्य निवारण के लिए ईश्वर से विनती कर रहा था । तब 'सनेही' जी पहले कवि थे जिन्होंने आगे बढ़कर दृढ आत्मविश्वास के साथ जन जागरण का प्रथम गीत गाया तथा अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय शोषित जनता में स्वाभिमान और आत्मविश्वास की भावना का संचार किया । पूँजीवाद के समूल विनाश और समाजवादी नवनिर्माण के लिए जनता को क्रान्ति का संदेश दिया ।"[2] सन् 1918 में लिखित 'वीरप्रण' शीर्षक कविता में अन्याय और अत्याचार का विरोध निर्भिकता से करके तत्कालीन कवियों को दिशानिर्देशन करने का श्रेय सनेही जी को जाता है । इस कविता के माध्यम से कवि उन लोगों को धिक्कारता है जो अन्याय को चुपचाप तमाशबीन बनकर देख-सह रहे हैं -

"न होने देंगे अत्याचार ।
लड़ जाएँगे न्याय पक्ष पर कर के उद्धार ।
न होने देंगे अत्याचार ।।
अन्यायी अन्याय करें यों हाय ! सरे बाज़ार ।
और खड़े चुप देखे हम तो नयनों को धिक्कार ।।
न होने देंगे अत्याचार ।।"[3]

'प्रकृति संदेश' शीर्षक कविता में शोषण पर जीवित रहने वाले पूँजीपतियों को कवि ललकारता है । 'विविध विचार' कविता में पूँजीपतियों के साथ-साथ पुरोहितों और धर्माचार्यों के अडंबरपूर्ण व्यवहार पर भी तीखा व्यंग्य किया है । 'साम्यवाद' शीर्षक अपनी प्रसिद्ध रचना में कवि ने मार्क्सवादी ढंग से सामाजिक विकास क्रम को दिखाने का प्रयास किया है तथा पूँजीवादी विकृतियों पर प्रकाश ड़ालते हुए साम्यवादी क्रान्ति द्वारा समाज के नव-निर्माण का संदेश दिया है । श्रेणी भेद और आर्थिक विषमता वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था

---

2. हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना – जनेश्वर वर्मा , पृ.234

3. वही, पृ.234 पर 'मर्यादा' (पत्रिका) जून 1918, पृ.247 से पूर्वोध्दृत.

के अन्तर्गत किस तरह से अपनी चरम सीमा तक पहुँच गई इसका चित्रण वे इस कविता में करते हैं -

"प्रलय धारा सी पड़ी विषमता विष सी छाई ।
तह में सोए बहुत, नाव कुछ ही ने पाई ।।
दूर जा पड़े बहुत, छूट कर भाई भाई ।
डूबा सकल समाज बाढ़ कुछ ऐसी आई ।।
स्वर नरक दोनों विषम बने साम्य संसार में ।
कोई महलों में रहा कोई कारागार में ।।"[4]

इस प्रकार सनेही जी की कविता में मार्क्सवादी सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति हुई है । उन्होंने मार्क्सवादी सिद्धान्तों को न सिर्फ समझा है, बल्कि उसे आत्मसात भी किया है, तभी तो उनके काव्य में मार्क्सवादी सिद्धान्तों के आर्थिक एवं सामाजिक विषमता की जागरुक अभिव्यक्ति हुई है ।

रेखा अवस्थी जी सन् 1918 में 'सनेही' द्वारा लिखी गई 'वीरप्रण' शीर्षक कविता से मार्क्सवादी चेतना की शुरुआत मानने वाले जनेश्वर वर्मा के विचारों से असहमत हैं । उनका मानना है कि उसके कई पहले से 'सरस्वती' पत्रिका में इस तरह की कविताएँ छप रही थी । अवस्थी जी ने सन् 1915 में पंडित केशवप्रसाद मिश्र द्वारा लिखित 'जाड़ा और निर्धन' कविता का हवाला देते हुए इस कविता की निम्न पंक्तियाँ उद्धृत की हैं -

"सिर पर लदा घाँस का बोझा तन पर नहीं एक भी सूत,
हाय ! हाय ! कंपित होता है जाड़े से भारत का पूत ।
छोटे-छोटे बच्चे घर पर देख रहे हैं उसकी बाट,
किंतु आज वह दुःखित लौटा, विफल हुई है उसकी हाट ।
एक दरिद्र कृषक है जिसने किया खेत में दिनभर काम,
किंतु पेट भर रोटी मिलना उसको है जय सीताराम ।"[5]

रेखा अवस्थी ने सनेही मंडल के कवियों के काव्य-कृतियों से पंडित केशव प्रसाद मिश्र की इस कविता की तुलना करते हुए कहा है, "जहाँ तक यथार्थ की अनुभूति प्रवण

---

[4].वही. पृ. पर 'साम्यवाद' शीर्षक कविता, 'प्रताप' (पत्रिका), 12 अप्रैल 1920, पृ.8 से पूर्वोध्दृत.

[5].माखनलाल चतुर्वेदी : यात्रा पुरुष – दिनकर, पृ.135, से प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य- रेखा अवस्थी, पृ.93 पर पूर्वोध्दृत.

संवेदना का प्रश्न है, सनेही मंडल के कृतिकारों की रचनाओं से कहीं अधिक जीवन्त रचनाशीलता 'जाड़ा और निर्धन' में है।"[6]

इस विकास क्रम में मार्क्सवादी चेतना की झलक कुछेक मात्रा में देविदत्त मिश्र की कविताओं में दिखाई देती है। मिश्र जी सत्ता में परिवर्तन चाहने वाले व्यक्ति थे और उन्होंने परिवर्तन के लिए साम्यवाद का तहे दिल से स्वागत किया है। क्योंकि परिवर्तन का एकमात्र मार्ग साम्यवाद को मानते हैं। वे शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति रखने वाले और शोषक वर्ग का विरोध करने वालों में से हैं। वे अपनी कविताओं में शोषक वर्ग को मिटाकर शोषित वर्ग को अधिकार देने की बात करते हैं। उनकी 'ध्येय' शीर्षक कविता में पूँजीवाद को मिटाकर सबको समान बाँटने की बात करते हैं -

"कुली हो या मज़दूर किसान।
न होने देंगे भेद विधान।।
मिटा देंगे सत्ता की शान।
बंटा देंगे सब स्वत्व समान।।"[7]

देविदत्त मिश्र के बाद इस विकास क्रम में शिवदास गुप्त 'कुसुम' का नाम लिया जाता है, जिनके काव्य में मार्क्सवादी चेतना का पुट मिलता है। कुसम जी साम्यवादी सिद्धान्तों को विश्व में शान्ति फैलाने वाला मंत्र और मानव उन्नती का संदेश देनेवाला मानते हैं। वे अपनी 'साम्यवाद' कविता में सभी साधन उत्पत्ति पर सबका समान अधिकार मानते हैं -

"जो जितना श्रम करे लाभ वह उतना पावे।
रोगी दुःखी अशक्त न भूखों ही मर जावे।
जनता की हो भूमि, अन्न पर सम विभक्त हो।
सौख्य-समुन्नति-द्वार सभी के हेतु व्यक्त हो।
सब साधन उत्पत्ति के, जनता की संपत्ति हो।
सब समाज संपन्न हो, मर्दित सी विपत्ति हो।।
- - - - - - - - - -
साम्य करे साम्राज्य, असमता मार भगावे।

---

[6].प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य-रेखा अवस्थी, पृ.93.

[7].प्रताप (पत्रिका), 15 मार्च, 1920, पृ.

एक बार फिर जगती तल पर नवयुग आवे ।।"[8]

राष्ट्रीय पथिक के काव्य में भी मार्क्सवादी विचारधारा का सृजनात्मक रूप देखा जा सकता है । पथिक जी जनक्रान्ति और उसके उद्देश्य को अपनी कविता में प्रतीकों के माध्यम से दर्शाते हैं । वे क्रान्ति का उद्देश्य अत्याचारी सत्ता का विनाश और दलित वर्ग का उद्धार मानते हैं । 'बिन्दु विनोद' शीर्षक कविता में कवि ने सुखी समाज की कल्पना की है, ठीक उसी प्रकार जिस तरह से वर्षा होने के बाद भूमि, पर्वत, पहाड़ सर्वत्र हरे-भरे और सम्पन्न हो जाते हैं । अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔंध' जी भी पथिक जी के समकालीन होने के बावजूद उनकी कविताओं पर मार्क्सवाद का विशेष प्रभाव नहीं दिखाई देता है, किन्तु उनकी 'सबल और निर्बल' जैसी कुछेक कविताओं पर तत्कालीन हो रही मार्क्सवादी कविताओं का प्रभाव दिखाई देता है । इसके अतिरिक्त अभिलाषी जी की 'गरीबों की होली', उग्र जी की 'देखो तो' आदि कविताओं में भी मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव दिखाई देता है ।

राजनीतिक क्षेत्र में जैसे-जैसे मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव अधिक व्यापक और विस्तृत होता गया, उसी अनुपात में साहित्य के क्षेत्र में भी व्यापकता बढ़ती गई । पहले परिस्थिति ऐसी थी कि कवि मार्क्सवादी सिद्धान्तों के प्रति सहानुभूति रख कर कविताएँ लिखते थे, किन्तु अपना नाम बदलकर या उपनाम से । क्योंकि मार्क्सवादी विचारों के प्रचार-प्रसार को ब्रिटिश शासन ने प्रतिबंधित कर रखा था । राजनीति में हो रहे बदलाव के साथ-साथ साहित्य में भी बदलाव आने लगा था । यही कारण है कि रामविलास शर्मा जैसे कई कवियों ने अपने आप को खुलकर मार्क्सवादी घोषित कर दिया था ।

रामविलास शर्मा पहले कवि थे, जिन्होंने अपने-आप को पूर्णतः मार्क्सवाद घोषित करते हुए साहित्य सृजन में अपने जमीन की तलाश की । सनेही जी से लेकर अयोध्यासिंह उपाध्याय तक सारे कवि मार्क्सवादी सिद्धान्तों से परिचित थे, किन्तु वे न ही मार्क्सवादी बने और न ही मार्क्सवादी सिद्धान्तों को अपना जीवन दर्शन माना । सन् 1929 में शर्मा जी ने अपनी 'आशा' शीर्षक कविता में दुष्टता, विषमता, कायरता और दुःख को दूर करके पूरे देश को सुखी और सम्पन्न बनाने का संदेश दिया है । उनका प्रगाढ़ विश्वास है कि ऐसा मात्र मार्क्सवादी विचार प्रणाली से ही संभव है, इसका कोई पर्याय नहीं है । शर्मा जी ने अपनी 'सिलहार' कविता के माध्यम से वर्ग-विभाजित समाज में किसानों के शोषण और दैन्यता का

---

[8].वही, 29 मार्च 1920, पृ.81.

चित्रण करते हुए कृषक जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। इनकी एक अन्य कविता 'कार्यक्षेत्र' में उन्होंने कहा कि श्रमिकों का धर्म, जाति, विचारधारा, सम्प्रदाय आदि के आधार पर विभाजन नहीं किया जा सकता। उन्होंने लिखा -

"धरती के पुत्र की
होगी कौन जाति कौन मत, कहो कौन धर्म ?
धूलि भरा धरती का पुत्र है,
जोतता है बोता जो किसान इस धरती को,
मिट्टी का पुतला है,
मिट्टी के चिर संसर्ग में।"[9]

रामविलास शर्मा की कविताओं में मार्क्सवादी विचारधारा के साथ-साथ उच्च कोटी की चित्रात्मक सांकेतिक कला भी विद्यमान है। कवि का मानना है कि यदि हमें विषमताजन्य रूढ़ीगत संस्कारों से मुक्ति पाकर, नवसमाज का निर्माण करना हो तो वह क्रान्ति द्वारा ही संभव है -

"असंस्कृत भूमि ये किसान की
धरती के पुत्र की
जोतनी है गहरी, दो चार बार, दस बार,
बोना महत्तिक वहाँ बीज असंतोष का,
काटनी है नए साल फागुन में फसल जो क्रान्ति की।"[10]

जगदम्बा प्रसाद मिश्र 'हितैषी' और राधावल्लभ पाण्डेय 'बन्धु' दोनों 'सनेही' जी के मंडल के कवि होने कारण इनकी कविताओं में भी मार्क्सवादी चेतना की झलक देखने को मिलती है। हितैषी जी ने 1923 में 'मज़दूर' नामक कविता लिखी। जिसमें उन्होंने मज़दूरों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए श्रम के महत्व को प्रतिपादित किया है। उनकी अन्य कविता 'शान्ति' में साम्राज्यवादी राक्षसी वृत्तियों का पर्दाफाश किया गया है। राधावल्लभ पाण्डेय जी ने सनेही जी की प्रेरणा से अपनी कविताओं में आर्थिक विषमता का विरोध करते हुए उसके निवारण के लिए क्रान्ति पर बल दिया है। 'क्रान्ति कब आती है' कविता में दलित और

---

9. रूपतरंग-रामविलाश शर्मा, पृ.18

10. वही, पृ.26

श्रमिक वर्ग के सुख और शान्ति के लिए उस व्यवस्था की बात की है, जो मात्र क्रान्ति से आ सकती है।

साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव कम-अधिक मात्रा में दुर्गादत्त त्रिपाठी और अवध बिहारी मालवीय 'अवधेश' जी पर भी दिखाई देता है । त्रिपाठी जी की कुछ रचनाएँ 'मनोरमा' में सन 1925 के आसपास प्रकाशित हुई थी । उन्होंने अपनी 'दाह' कविता में वास्तविक सुख और शान्ति की स्थापना के लिए शोषण जनित दीनता की समाप्ति की अनिवार्यता पर बल दिया है। मालवीय जी ने 'रणभेरी' कविता में पूँजीवाद के नाश के साथ-साथ मानव से मानव की दास मुक्ति की कल्पना की है।

साहित्य में मार्क्सवादी चेतना की अभिव्यक्ति के विकास क्रम में सनेही और रामविलास शर्मा के बाद मार्क्सवादी चेतना प्रखर रूप से छैलबिहारी दीक्षित 'कंटक' जी के काव्य में दिखाई देती है। कंटक जी ने साम्यवादी विचारधारा का समर्थन करते हुए ओजपूर्ण कविताएँ लिखी हैं । इस संदर्भ में जनेश्वर वर्मा का कहना है, "कंटक जी अपने विद्यार्थी जीवन से ही राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक थे आगे चलकर वे साम्यवाद की ओर भी आकर्षित हुए और इस विचारधारा के समर्थन में उन्होंने बड़ी ओजस्वी कविताएँ लिखी हैं।"[11] कंटक जी की प्रसिद्ध रचना 'साम्यवाद की हुंकार' में उन्होंने मार्क्सवाद के प्रति श्रद्धा को अभिव्यक्त किया है। कवि का मज़दूर वह मज़दूर नहीं है जो भूखा, नंगा अत्याचार और अन्याय को चुपचाप सहता रहता है, बल्कि वह मार्क्स और ऐंगेल्स के विचारधारा से जागृत मज़दूर है जो विश्व का पोषक और मिल का मालिक है -

"मैं मालिक मिल, रेल, खेत का मेरा सब संसार,
मैं अगणित असंख्य हूँ, मेरा है परिवार,
अब गुलाम होकर न सहुँगा भीषण अत्याचार,
मैं जागृत मज़दूर, माँगता हूँ अपने अधिकार।
मैं मज़दूर विश्व का पोषक मैं सबका सरताज।
दुनिया का धन मालमत्ता सब मेरा तख़्तों ताज,
पूँजीवाद लूटता उसको आती उसे न लाज,

---

[11].हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना-जनेश्वर वर्मा, पृ.278.

ठहरो, साम्यवाद आता है मेरा सुखद स्वराज ।"[12]

इसी रचना के अन्त में कवि दुनिया के सारे मज़दूरों को एक होकर संघर्ष करने के लिए प्रेरित करता है । कवि का मानना है कि पूँजीवाद का सर्वनाश और साम्यवाद की स्थापना तभी हो सकती है, जब दुनिया के मज़दूर मार्क्स-ऐंगेल्स के बताए पथ पर चले । उनके ओज और उत्साहपूर्ण शब्दों में -

"एक हो दुनिया के मज़दूर ।
साम्यवाद का पर्व पड़ा है,
देखो नवजीवन उमड़ा है,
एक तुम्हारा ध्येय बड़ा है,
चलो एक से एक भाव भर,
एक हृदय से उठे एक स्वर,
सहमे पूँजीवाद, हिले जग, हो दुःख चकनाचूर ।
एक हो दुनिया के मज़दूर ।"[13]

आगे के समय में मार्क्सवादी विचारधारा को अपनी रचनाभूमि का आधार बनाकर अन्य रचनाकार हुए । उनमें महावीर प्रसाद श्रीवास्तव की 'बदला', ठाकुर रघुनंदन सिंह की 'रोटी', दीनानाथ 'अंशक' की 'निश्चय', महेश बक्श की 'मज़दूर झंडे की प्रार्थना' आदि कविताएँ उल्लेखनीय हैं । महावीर प्रसाद श्रीवास्तव और महेश बक्श ने प्रतीकों के माध्यम से शोषित और शोषक का चित्रण अत्यन्त मनोहारी रूप में किया है । ठाकुर रघुनंदन सिंह जी ने 'रोटी' कविता के माध्यम से आर्थिक समस्या को उद्घाटित करते हुए उसके मूल में रोटी के प्रश्न को व्याप्त माना है ।

सन् 1936 तक आते-आते मार्क्सवाद एक पुष्ट विचारधारा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था । परिणामतः श्रेणी सजग कलाकारों का वर्ग बना । जिससे प्रगतिवादी साहित्य को तीव्र गति मिली । इसी समय लखनऊ में प्रेमचंद के तत्वावधान में 'अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई । जिसमें सामाजिक और साहित्यिक दायित्व से कई लेखक आगे बढ़ने के कारण मार्क्सवादी साहित्य में वृद्धि हुई । रामविलास शर्मा के बाद यदि

12.साम्यवाद की हुंकार-छैलबिहारी दीक्षित, पृ.03.

13.वही, पृ.14.

किसी ने अपने-आप को पूर्णतः मार्क्सवादी घोषित किया है तो वह हैं रामेश्वर करुण । इनका ब्रज भाषा का प्रथम काव्यसंग्रह 'करुण सत्सई' 1934 में प्रकाशित हुआ । इसके बाद 1948 में खड़ी बोली में 'तमसा' काव्यसंग्रह प्रकाशित हुआ । करुण जी ने मार्क्सवाद के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति ही नहीं प्रकट की वरन् उन्होंने जीवन में स्वयं दरिद्रता की पीड़ा का अनुभव किया है । एक शब्द में कहे तो वे भुक्तभोगी हैं । वे मार्क्सवाद में गहरी आस्था रखने वाले और उसे जीवन दर्शन माननेवालों में से हैं । मार्क्सवाद में उनकी कितनी आस्था थी यह उनकी पुस्तक 'तमसा' की भूमिका से पता चलता है, "मैं कोई कवि, कलाकार अथवा विद्वान नहीं हूँ । जीवन के आरंभकाल से ही आपा-धापी के साथ युद्ध करते-करते मेरे मन पर जो जो चोंटें आई हैं, उनकी औषधी मेरे उस्ताद (लेनिन-मार्क्स और स्तालिन) ने साम्यवादी व्यवस्था बतलाई है । अपने हृदय की वेदना दूर करने के साथ ही साथ अपने उस्ताद के बतलाए हुए इलाज से मनुष्य मात्र का कल्याण कर सकूँ तो कितना अच्छा हो । तमसा में लिखित लकीरों का यही लक्ष्य है ।"[14]

रामेश्वर करुण के 'करुण सत्सई' में पूँजीवाद, ईश्वर, आर्थिक विषमता, वर्ण व्यवस्था आदि का नकारात्मक, समाजविघातक दुष्प्रवृत्तियों का विरोध मुखरित हुआ है । मार्क्सवादी धारणा के अनुसार कवि आर्थिक समस्या को ही समाज की मूल समस्या मानता है । वह यह भी मानता है कि रोटी का प्रश्न ही मूल प्रश्न है -

"सब प्रश्नों का परदादा, यह रोटी प्रश्न अकेला
नित सबको नाच नचाता, हो आप गुरू या चेला ।"[15]

'तमसा' संग्रह में कवि वर्ण व्यवस्था का विरोध करते हुए कहता है कि संसार में तो सिर्फ दो ही वर्ग हैं - एक शोषक और दूसरा शोषित । फिर इस सत्य को न देखकर अब चार वर्णों की चर्चा करके समाज में विष क्यों बढ़ा रहे हैं । शोषित जनता के प्रति अपना रुझान व्यक्त करते हुए कवि ने पूँजीपतियों के नाश को ही श्रमिकों के लिए स्वर्णयुग माना है । जिसमें समानता ही समाज का आधार है -

"कोई न धनी रह जाए कोई न दरिद्र दिखाए
जो काम करे सुख भोगे, यह स्वर्ण नियम बन जाए ।

---

[14].तमसा, भूमिका – रामेश्वर करुण

[15].हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना – जनेश्वर वर्मा, पृ.417.

श्रमकार कृषक की जय हो समता की विश्व विजय हो,

सम्राटों की कब्रों पर पूँजीपतियों का क्षय हो ।"[16]

करुण की रचनाओं से यह सिद्ध होता है कि वे एक सच्चे मार्क्सवादी कलाकार हैं और उनके अभिव्यक्ति में ईमानदारी की सच्चाई है । इनकी लिखी प्रत्येक पंक्ति पर मार्क्सवादी विचारधारा की गहरी छाप दिखाई देती है ।

मार्क्सवादी चेतना बलभद्र दीक्षित 'पढीस' की 'मनुष्य', दिनकर की 'रेणुका' की प्रथम कविता में भी दिखाई देती है । रामेश्वर करुण के बाद मार्क्सवादी दर्शन में अचल आस्था रखने वाले सच्चे अर्थों में मार्क्सवादी कलाकार के रूप में शाम बिहारी शुक्ल 'तरल' हैं । जिनका बहुत सारा काव्य मार्क्सवादी चेतना से ओतप्रोत है । तरल मज़दूर जीवन से जुड़े हुए कार्यकर्ता थे । इसलिए पूँजीवादी अभिशाप ग्रस्त मज़दूरों के दुख-दैन्य को निकटता से देखा और महसूस किया है । मार्क्सवादी चेतना से युक्त उनकी प्रसिद्ध रचना 'मज़दूर जगत' में मज़दूरों को श्रम द्वारा निर्मित सुख-चैन-आराम धनिकों के कब्ज़े में होने तथा मज़दूर सभी का निर्माता होने के बावजूद किस प्रकार अभावों का जीवन जीने के लिए अभिशप्त है, इसका बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है -

"सुख खोकर इसको जीवन में, हृदय विदारक त्रास मिला ।

महलों को देकर इसको बस, कुटिया का आवास मिला ।।

दैत्याकार मशीनों में इसका, अनन्त अस्तित्व छिपा ।

उस महान दृढ़ता में इसका ही, महान अमरत्व छिपा ।।"[17]

मार्क्सवादी चेतना छायावाद के प्रमुख स्तंभ निराला और पंत के काव्य में दिखाई पड़ती है । निराला कम्यूनिस्ट नहीं थे और न कभी बने । किन्तु आम जन-जीवन के प्रति लगाव और यथार्थवाद की ओर उनका झुकाव होने के कारण उनके काव्य में मार्क्सवादी चेतना दिखाई देती है । निराला और पंत छायावादी भाव संस्कार और वैयक्तिकता को छोड़ यथार्थवाद की ओर आए थे । निराला ने 'कुकुरमुत्ता', 'नए पत्ते', 'गर्म पकोड़ी', 'खजोहरा' 'महंगू महंगा रहा', 'डिप्टी साहब आए', 'कुत्ता भोंकने लगा' आदि कविताओं में व्यंग्य के माध्यम से आदर्श कल्पना लोक को नकार दिया । निराला ने कविता के माध्यम से व्यंग्य का

---

[16].तमसा -रामेश्वर करुण, पृ.351.

[17]मजदूर जगत -श्याम बिहारी शुक्ल तरल, पृ.17-18.

एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में उपयोग किया । 'दान', 'मित्र के प्रति' आदि शीर्षक कविताएँ उत्तम उदाहरण हैं । आत्मसंघर्ष और व्यंग्य एक-दूसरे के पूरक हैं, पर निराला की दृष्टि विषमतापूर्वक सामाजिकता पर से हटती नहीं है । 'विधवा', 'भिक्षुक', 'तोड़ती पत्थर', 'वे किसान की नई बहु की आँखे' आदि यथार्थ की गहरी पहचान करती है । 'बेला' में संकलित निम्नलिखित अकाल के समय लिखी गई कृषी क्रान्ति के सारभूत सत्यों को प्रकट करने वाली कविता उल्लेखनीय है -

"आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला
धोबी, पासी, चमार, तेली
खोलेंगे अँधेरे का ताला
एक पाठ पढ़ेंगे टाट बिछाओ ।"[18]

निराला ने जहाँ 'वे किसान की बहु की आँखे' और 'पत्थर तोड़ती मज़दूरनी की आँखे' चित्रित की हैं, वहीं पंत ने भी उदात्त यथार्थपरक 'वे आँखे' शीर्षक कविता लिखी है । इसी प्रकार 'वह बुढ्ढा' कविता भी लाठी टिकाए निर्धन ग्रामीण चित्रण प्रस्तुत करती है । 'युगान्त' में कवि ने ऐसे विकृत समाज के विनाश की कामना करते हुए नवयुग का अवाहन किया है -

"गा कोकिल बरसा पावक कण
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वंस भ्रंष जग के जड़ बंधन ।"[19]

सुमित्रानंदन पंत के रचनात्मक उत्कर्ष समय तक मार्क्सवादी विचारधारा ने तत्कालीन राजनीति, समाज एवं साहित्य में अपनी एक सुनिश्चित धारा बना ली थी, ऐसे में उस युग के रचनाकार के रूप में कम-अधिक मात्रा में उससे तटस्थ रहना असंभव हो गया था। इस युग के प्रायःप्रत्येक कवि कम-अधिक या परोक्ष-अपरोक्ष रूप में मार्क्सवादी विचारधारा से अछूते न रह पाए । सुमित्रानंद पंत भले ही घोषित रूप से मार्क्सवादी न रहे हो या आगे चलकर भी उन्होंने ऐसी घोषण न की हो किन्तु युग के प्रवाह में एक रचनाकार के रूप में उन्होंने छायावादी भावभूमी संवेदनात्मकता एवं प्रतीकात्मकता का पल्ला छोड़ युगान्त

18.बेला – निराला, पृ.84.

19.युगान्त –पंत, पृ.10.

घोषित कर दिया तथा युगवाणी को अपने काव्य का आधार बनाया, भले ही उनकी काव्य भूमि का आधार सदैव आध्यात्मवाद और प्रकृति रही हो । यह भी उतना ही सच है कि युगवाणी का कवि कहीं-न-कहीं अपने आपको मार्क्सवादी विचारप्रणाली से जुड़ता हुआ दृष्टिगोचर होता है । इस सन्दर्भ में रेखा अवस्थी का कथन उल्लेखनीय है, "यथार्थ की पकड़ के संबन्ध में अपने भाववादी संस्कारों के बावजूद निराला और पंत ने सन 1936 के बाद कविता में आए गतिरोध को तोड़ा और इन्द्रियबोध, भावना तथा बहुजन छवि के विचार के स्तर पर कविता और जीवन की वास्तविकता का एक-दूसरे से गहरा रिश्ता कायम किया । काव्य में प्रगतिवाद की प्रतिष्ठा के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था ।"[20]

इसी युग में भगवतीचरण वर्मा के 'मानव' काव्यसंग्रह में संग्रहित अनेक कविताओं में पूँजीवादी व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था तथा दलित और शोषित मानवता के दैन्य का यथार्थपरक चित्रण किया गया । 'भैसा गाड़ी', 'राजा साहब का वायु यान' आदि शीर्षक कविताएँ इसके उत्तम उदाहरण हैं । कवि अहंवादी होने के कारण इस आनाचार का कारण पूँजीवाद को न मानकर अहं को मानता है । तत्कालीन समय में मुंशीराम शर्मा 'सोम' की 'विप्लव' जैसी कुछ कविताएँ और सुमित्राकुमारी 'सिन्हा' की 'शाप' शीर्षक कविता 'सुधा' पत्रिका में प्रकाशित हो रही थी । जिसमें मार्क्सवादी चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है ।

महेन्द्र भटनागर भी इस युग के मार्क्सवादी काव्यधारा में प्रवेश करने वाले एक उदीयमान मार्क्सवादी कलाकार है । जिन्होंने अल्पावधि में अपनी काव्य साधना द्वारा हिन्दी काव्य जगत में एक सम्मानीय स्थान प्राप्त कर लिया । इस युग की इनकी रचनाएँ 'टूटती शृंखलाएँ' शीर्षक काव्यसंग्रह में संकलित हैं । इसमें इन्होंने शोषक सत्ता से जन समाज की मुक्ति के लिए निर्भय उद्घोषणा की है । इस विकास क्रम में पक्के मार्क्सवादी के रूप में अंचल जी के बाद गजानन माधव मुक्तिबोध का नाम लिया जाता है । जिनका सम्पूर्ण काव्य मार्क्सवादी चेतना से ओत-प्रोत है । मुक्तिबोध मार्क्सवादी कवि और आलोचक, दोनों एक साथ थे । जब 'भारत-सोवियत मित्र संघ' की स्थापना हुई और कलकत्ते में उसका प्रथम अधिवेशन हुआ, उस समय मुक्तिबोध ने सोवियत की प्रशस्ती में एक कविता पढ़ी थी - 'लाल सलाम' । इनकी कविताओं का सविस्तार अध्ययन आगे के अध्यायों में किया जाना है ।

---

[20].प्रगतिशील और समानान्तर साहित्य -रेखा अवस्थी, पृ.85.

इसी दौर में मैथिलीशरण गुप्त ने अपना 'जयिनी' शीर्षक गीति-नाट्य मार्क्स की पत्नी जैनी के त्याग और कर्तव्यनिष्ठा से प्रभावित होकर लिखा है। यह गीति-नाट्य संवाद योजना परक है। गुप्त ने सुंदर संवाद योजना द्वारा कार्ल मार्क्स की मान्यताओं पर भी सम्यक प्रकाश डाला है। मार्क्स की उक्तियों को सुनकर जैनी की समस्त शंकाएँ दूर हो जाती हैं और वह दलित मानवता के उद्धार के लिए मार्क्स के साथ सभी त्याग करने के लिए सहर्ष तैयार हो जाती है।

गुप्त जी की तरह सोहनलाल द्विवेदी मार्क्सवादी नहीं, वरन् गाँधीवादी थे। किन्तु मानवतावाद के पोषक होने के नाते प्रगतिशील वामपंथी शक्तियों के प्रति भी उनके हृदय में एक दबी हुई सहानुभूति की भावना विद्यमान थी। जिसकी झलक यदा-कदा 'सोवियत रूस' जैसी रचनाओं में मिल जाती है। इस कविता में फासिस्ट शक्तियों के विरुद्ध सोवियत के लाल सेना के अभियान का बड़े ही ओजस्वी शब्दों में वर्णन किया गया है। कवि ने इस सम्पूर्ण पुस्तक में सोवियत के जनवादी पक्ष को लेकर उसके प्रति गहरी आस्था और सहानुभूति की अभिव्यक्ति की है।

गुप्त के ही समकालीन कवि गोपालदास 'नीरज' के काव्य में भी यत्र-तत्र मार्क्सवादी प्रभाव दिखाई देता है। उन्होंने 'अन्तर्ध्वनि' रचना में शोषित और दलित मानवता के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है। इतना ही नहीं कवि दलित मानवता के कष्टों को देख विद्रोह और क्रान्ति करने की बात भी करता है। इस चेतना के विकास क्रम में वैजनाथ सिंह 'विनोद' और नेमिचन्द्र जैन की रचनाओं का उल्लेख इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि विनोद जी मार्क्सवाद के प्रति आस्थावान थे । उनका काव्यसंग्रह 'अवरुद्धा' नाम से प्रकाशित हुआ है। जिसमें उनकी इस युग की रचनाएँ संग्रहित हैं। इस संग्रह की 'प्रलय ज्वाला' शीर्षक कविता में कवि शोषित वर्ग को बलपूर्वक अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है। नेमिचन्द्र जैन भी मार्क्सवादी विचारधारा के पोषक और नई पीढ़ी के एक उदीयमान कवि के रूप में सामने आए। सन् 1934 में लाल सेना के प्रशस्ती में लिखी गई 'लाल सैनिक से' शीर्षक कविता उनकी मार्क्सवादी निष्ठा और काव्य प्रतिभा का उत्तम उदाहरण है।

1.1.2 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में मार्क्सवादी चेतना

स्वातंत्र्योत्तर काल में राजनीति में अमूल-चूल परिवर्तन आए । 1952 तक का काल कम्यूनिस्टों के लिए एक प्रकार से संक्रान्ति का युग रहा, कम्यूनिस्टों के विचार, लेखन और भाषणों पर पाबन्दी थी तथा मार्क्सवादी विचारों का प्रचार प्रसार करने वालों को बन्दी बनाया जा रहा था । स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए कॉग्रेस, कम्यूनिस्ट और अन्य संघटनों ने मिलकर लड़ा था । किन्तु आजादी के बाद काँग्रेस की नीति बदल गई और उसने कठोर दमन नीति अपनाई । इसी समय 9 मार्च 1949 को देशव्यापी रेल्वे हड़ताल हुई । सरकार ने भयंकर दमन का सहारा लिया । 15 मई 1949 के क्रास रोड्स पर हजारों लोगों पर गोलियां दागी गई । सी.राजेश्वर राव के नेतृत्व में तेलंगाना सशस्त्र संघर्ष केन्द्र में आया और सारे देश में सशस्त्र किसान आन्दोलन का विकास हुआ । इन सारी परिस्थितियों के प्रभाव से 'नया सवेरा', 'नया पथ', 'जनवादी' आदि पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से नए विचार और कवि उभरकर सामने आए । सन 1947 में समझौते से मिली स्वतंत्रता और केन्द्र में अस्थायी सरकार की स्थापना पर जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने जनता के मन में उमड़ते - घुमड़ते सवाल 'दिल्ली में हलचल क्या है' को कविता का रूप दे दिया । इस कविता का स्वर आम जनता के मुक्ती की आकांक्षा का स्वर है -

"कोटी कोटी जन पूछ रहे हैं
दिल्ली में हलचल क्या है?
संधि-पत्र या मुक्ति हमारी?
महाक्रान्ति का फल क्या है?"[21]

आजादी के बाद काँग्रेस के दमन को देख कम्यूनिस्ट कह रहे थे कि आजादी की असली लड़ाई अब करनी है । इस दमन नीति पर भी कवियों ने कई व्यंग्यात्मक कविताएँ लिखी हैं । आजादी के बाद कवियों ने स्वदेशी शासन की दमन नीति पर व्यंग्य करते हुए शंकर शैलेन्द्र ने लिखा था -

"भगत सिंह इस बार न लेना काया भारतवासी की
देश भक्ति के लिए आज भी सज़ा मिलेगी फाँसी की
यदि जनता की बात करोगे, तुम गद्दार कहाओगे

---

[21].प्रगतिशील और समानान्तर साहित्य – रेखा अवस्थी, पृ.120.

बम्ब सम्ब की छोड़ो, भाषण दिया कि पकडे जाओगे

काँग्रेस का हुक्म, जरुरत क्या वारंट, तलाशी की ।"[22]

रामविलास शर्मा का लेखन स्वतंत्रतापूर्व ही नहीं, स्वतंत्रोत्तर काल में भी जारी रहा । इस काल में उन्होंने सामूहिक समस्याओं को लेकर 'आ गिया बैताल' के नाम से एक सुंदर व्यंग्यात्मक कविता लिखी । 'तुम और मैं' शीर्षक कविता में उन्होंने किसान-मज़दूर प्रजा पार्टी और सोशयलिस्ट पार्टी की नेताशाही पर मार्क्सवादी दृष्टि से सुन्दर व्यग्य करते हुए लिखा है -

"तुम तुंग हिमालय श्रृंग और मैं चंचल गति सूर सरिता

तुम खादी के हो गद्य काव्य, तो मैं डालर की कविता ।

प्रिय तुम हो विधानवादी ।

तो मैं भी समाजवादी ।

आओ भारत में सृष्टि रचे हम घोर अहिंसावादी ।"[23]

हिन्दी काव्य संसार में सुदर्शन जी एक भुक्तभोगी और सर्वहारा वर्ग के ओजस्वी गायक के रूप में उनका पदार्पण हुआ । मार्क्सवाद के सिद्धान्तों का उन्होंने परिश्रमपूर्वक अध्ययन किया । वे कवि होने के साथ-साथ कम्यूनिस्ट पार्टी और मज़दूर सभा के एक उत्साही कार्यकर्ता भी थे । इनकी रचनाएँ साम्यवादी पत्र-पत्रिकाओं में हमेशा छपती थी । मार्क्सवादी चेतना की दृष्टि से उनकी 'साहित्य और कला', 'डोले रहे सिंहासन सारे', 'सच्ची कविताएँ' आदि महत्त्वपूर्ण हैं । 'रोटी की लढ़ाई' शीर्षक पुस्तिका में कवि ने आल्हा के ढंग पर विश्वव्यापी कम्यूनिस्ट आन्दोलन का ओजस्वी वर्णन किया है । उनकी 'कम्यूनिस्ट कथा' नामक रचना भी है जो चार सौ पृष्ठों और आठ कांड़ों में है । इस ग्रंथ के कांड़ मार्क्स कांड, रूस कांड, भारत कांड, विश्व कांड, शहीद कांड तथा भविष्य कांड में 'रामचरितमानस' के अनुकरण पर दोहा-चौपाई शैली में लिखा गया है । इस ग्रंथ में कवि ने देश-विदेश के कम्यूनिस्ट आन्दोलनों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है । इनके समकालीन सरस वियोगी भी मार्क्सवाद में आस्था रखने वालों में से एक हैं । इनकी 'रणभेरी', 'चुनौती' आदि काव्यसंग्रहों में मार्क्सवादी चेतना दिखाई देती है ।

---

[22]. प्रगतिशील और समानान्तर साहित्य – रेखा अवस्थी, पृ.130

[23].तुम और मैं – जनयुग (पत्रिका), 7 दिसंबर, 1992, से हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना -जनेश्वर वर्मा द्वारा पृ.....पर पूर्वोद्धृत.

शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कई रचनाएँ स्वातंत्रोत्तर काल में लिखी गई हैं। सन् 1955 तक की उनकी रचनाएँ - 'मैं बड़ा ही जा रहा हूँ' नामक काव्यसंग्रह में संग्रहित हैं। इस काव्य-संग्रह में कवि शोषकों को क्षमा नहीं करना चाहता, कठोरता पूर्वक विषमता के मूल को नष्ट करके समाज नवनिर्माण के लिए मार्ग प्रशस्त करने की बात करता है । प्रगतिवादी कवियों में सुमन जी सहज काव्य के प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध हुए । उनके मुख्यतः चार काव्यसंग्रह प्रसिद्ध हैं - 'हिल्लोल', 'जीवन के गान', 'प्रलय सृजन' और 'विश्वास बढ़ता ही गया' । 'जीवन के गान' में उनकी प्रगतिवादी चेतना की अभिव्यक्ति हुई है । 'कलकत्ते का अकाल' 'यह किसका कंकाल पड़ा है' आदि कविताओं में पूँजावादी वर्ग के प्रति विद्रोह प्रकट हुआ है । 'मेरे स्वर में जीवन भर दो' में सामाजिक संतुलन दर्शनीय है । 'प्रलय सृजन' काव्यसंग्रह में 'अपने कवि से' शीर्षक कविता में उनकी दृष्टि समाजोन्मुखी है। 'बेघर बार', 'परीक्षा गुरु' में सामंती संस्कारों से पीड़ित जन-मानस का चित्रण है। 'सोवित रूस के प्रति', 'मास्को अब भी दूर है', 'चली जा रही है बड़ी लाल सेना' उद्‌बोधनात्मक गीत हैं। 'विश्वास बढ़ता ही गया' कवि के साहित्यिक साधना का प्रौढ़तम रूप और मार्क्सवादी चेतना की समग्र उपलब्धी है । जनवादी चेतना के प्रति कवि पूर्ण रूप से उन्मुख रहे और उनकी आगामी रचनाओं में यह दृष्टव्य है । विश्वंभर मानव का कथन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है, "प्रलय सृजन में निश्चित रूप से यह प्राचीन, जर्जर पूँजीवादी समाज को नष्ट करके नवनिर्माण के लिए अपेक्षित है।"[24]

शिवमंगल सिंह के समकालीन नवयुग के साम्यवादी गायकों में श्यामसुंदर तिवारी 'राजा' का नाम अपना विशेष महत्व रखता है। इनकी रचनाएँ 'ज्योति कण' शीर्षक काव्यसंग्रह के पूर्वार्ध में संकलित हैं। यह रचनाएँ संख्या में अधिक नहीं है किन्तु कवि ने जो कुछ लिखा वह पूरे अधिकार के साथ लिखा है। इस संग्रह में सरल और संगीतात्मक भाषा में मार्क्सवादी सिद्धान्तों की स्वस्थ और स्पष्ट अभिव्यक्ति दर्शनीय है। 'जीवन मरण' कविता के माध्यम से उनका आशावादी स्वर स्पष्ट होता है। शोषक सत्ता का नाश करके साम्य के आधार पर समाज का नवनिर्माण करने के लिए कवि में कितना उत्साह एवं आत्मविश्वास है यह उनकी 'जिन्दगी' नामक कविता से पता चलता है।

---

[24].नई कविता सीमाएँ और संभावनाएँ – गिरिजाकुमार माथुर, पृ.196.

मुन्नुलाल शर्मा 'शील' और महेन्द्र भटनागर की कई रचनाएँ स्वातंत्रपूर्व के साथ-साथ स्वातंत्र्योत्तर काल में भी दिखाई देती है । शील जी की 'अंगडाई' के बाद उनके दो काव्य-संग्रह 'एक पग' और 'उदयपथ' महत्त्वपूर्ण हैं, जिसमें मार्क्सवादी विचारधारा की गहरी छाप विद्यमान है। महेन्द्र भटनागर की दस-बारह काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके थे । जिसमें 'संतरण', 'जीजिविषा', 'बदलता युग', 'तारों के गीत', 'अभिमान', 'नई चेतना' आदि मार्क्सवादी चेतना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं । इस युग के मार्क्सवादी गायकों में शिवदुलारे शर्मा 'शिव' के 'जयघोष' काव्यसंग्रह में भी मार्क्सवादी विचारधारा को सृजनात्मकता का आधार बनाया गया और समाज की कई कुरीतियों और शोषण के स्तरों का वर्णन किया गया है। जब केरल में कम्यूनिस्ट सरकार की स्थापना हुई थी, तब कवि ने हर्ष प्रकट करते हुए जो कविता लिखी है वह इस संग्रह में संकलित है। शोषक वर्ग धर्म की आड में जनता का शोषण करता है अतः कवि शोषक धर्माचार्यों को संकेत करते हुए कहता है –

"कर्मों का फल दीन भुगतता' कह देना चाल है ।
मतलब के मतवालों यह केवल मायाजाल है ।।
तिनका भी चढ़ जाता ऊपर, आता जब तूफान है ।
बन्द पुजारी के मन्दिर में पत्थर का भगवान है ।"[25]

केदारनाथ अग्रवाल मार्क्सवादी कवियों में प्रमुख कवि माने जाते हैं । उनके काव्यसंग्रह 'नींद के बादल'(1947), 'युग की गंगा'(1947), 'लोक आलोक' (1957), 'फूल नहीं रंग बोलते हैं'(1965) आदि महत्त्वपूर्ण हैं । इनकी प्रारंभिक रचनाएँ छायावाद से प्रभावित हैं। इसलिए 'युग की गंगा' पूर्ण रूप से छायावादी लगती है। किन्तु कुछ कविताएँ प्रगतिवादी भी हैं । 'युग की गंगा' से लेकर 'लोक आलोक' में भी उनकी कई प्रगतिवादी कविताएँ भी देखने मिलती है । 'मज़दूर', 'सोने का देवता', 'डांगर', 'हथौड़े का गीत', 'किसान' आदि कविताओं में सामाजिक चेतना का विकास स्पष्ट है। 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' उनकी प्रौढ़तम कृति है। शोषित, श्रमजीवियों के प्रति सहानुभूति 'कानपुर' कविता में निखर उठी है। 'पैतृक संपत्ती' कविता में किसानों की दलित-पीड़ित दीनता मुखर है।

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी कवि हैं इसमें संदेह नहीं है, काव्य में अपने देश, काल, समाज और जनजीवन की सीमा संभावनाओं को तथा परिवेश को ईमानदारी के साथ

---

[25].हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना -जनेश्वर वर्मा, पृ.489.

प्रस्तुत करना उनकी युगीन चेतना का स्वयंसिद्ध प्रमाण है । प्रगतिवाद को सिद्धान्तपरक मानते हुए भी काव्य में अपने जीवन दर्शन को प्रतिपादित करते हुए अपने कथन, वस्तु और विषय का सफलतापूर्वक निर्वाह करना उनकी विशेषता है । 'खजुराहो के मन्दिर' शीर्षक कविता में केदार ने सामन्ती संस्कारों का तथा उनके भोग-विलास का खंडन किया है । इसके अलावा युगीन विषमताओं के प्रति काँग्रेस सरकार की नीति और उनके रामराज्य की कल्पना के प्रति भी आक्रोश प्रकट किया ।

नागार्जुन केदार से अधिक प्रगतिवादी और सशक्त कवि हैं । वे अन्य कवियों की भाँति किसी बौद्धिक सहानुभूति को लेकर काव्य रचना नहीं करते । कवि ने युगधारा की भूमिका में अपने को सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि बताया है । नागार्जुन के काव्य-संग्रह 'युगधारा'(1953), 'सतरंगे पंखों वाली'(1959), 'प्यासी पथराई आँखे'(1962), 'खून और झोली', 'ऐसे भी हम क्या ऐसे भी तुम क्या', 'खिचडी विप्लव देखा हमने', तालाब की मछलियाँ(1980), 'पूरानी जुतियों का कोरस' हजार हजार बाहों वाली(1981) आदि महत्त्वपूर्ण हैं । उनकी 'अकाल और उसके बाद', 'टूटे दनुज दल', 'मिटे अमंगल' में दरिद्रता-दीनता और जीवन की विषमताओं से मुक्ति की कामना प्रकट की गई है । 'प्यासी पथराई आँखे' उनका तीसरा संकलन है । इस संग्रह में कवि की प्रगतिवादी चेतना से पूँजीवादी, साम्राज्यवादी वर्गों के प्रति सजग है । 'दीन', 'वोल्गा', 'यमुना गंगा आज हो रही एक' कविताओं में अन्तरराष्ट्रीय एकता के प्रति भी उनकी जागरुकता प्रकट है । नागार्जुन ने मार्क्सवाद के प्रति अपना एक स्वतंत्र दृष्टिकोण विकसित किया था । भले ही वे सैद्धान्तिक रूप में मार्क्सवादी रहे हो और उन्होंने दृष्टि के रूप में अपनी रचनाओं में फलितार्थ भले ही किया हो, किन्तु मार्क्सवाद के नाम पर कई मार्क्सवादियों द्वारा किया जानेवाला विचारधारा के दुरूपयोग पर उन्होंने समय-समय पर अपनी रचनात्मकता के द्वारा प्रहार किया है । नागार्जुन ने ऐसा मार्क्सवाद के प्रति नहीं तो मार्क्सवाद को हथियार बनाकर अपनी स्वार्थसिद्धि करने वालों के प्रति कहा है । समाजवादी चीन की उन्होंने अपनी कविताओं में प्रशंसा की किन्तु वही चीन जब साम्राज्यवाद की राहों पर चलने लगा, तो नागार्जुन ने उसके इन कृत्यों की आलोचना एवं भृर्त्सना अपनी कविताओं में की है । इस सन्दर्भ में उनकी कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

"अब तो मुँह में दही जम गई

आती है उबकाई

बोलो फिर से कौन कहेगा

हिन्दी-चीनी भाई-भाई ।"[26]

गजानन माधव मुक्तिबोध की काव्य चेतना जितनी वैयक्तिक है , उतनी ही समाजोन्मुखी भी है। उनकी कविताओं में जीवन के प्रति व्यापक दृष्टिकोण, स्वस्थ सामाजिक चेतना एवं लोकमंगल की भावना दृष्टिगोचर होती है । अतः उन्हें आलोचक प्रायः प्रगतिवादियों एवं प्रगतिशील कवियों में स्थान देते हैं। इनकी रचनाओं में वैयक्तिक स्वर जितना गहन है उतनी ही गूढ़ उनकी सामाजिकता भी। व्यष्टि और समष्टि का संघर्ष सर्वत्र उनकी काव्यचेतना को आक्रान्त करता रहा है। मध्यवर्ग के प्रति उनका आक्रोश पूँजीवादी समाज के प्रति 'नाश देवता', 'दूर तारा' और 'अँधेरे' आदि 'तारसप्तक' में संग्रहित कविताओं में व्यक्त हुआ है। उनके कविता संग्रह 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में प्रगतिवादी चेतना अभिव्यक्त हुई है।

मुक्तिबोध की शुद्ध प्रगतिवादी चेतना पर आलोचनात्मक दृष्टि से श्री जगदीश कुमार ने प्रकाश डाला है उनके शब्दों में, "मेरे विचार में मुक्तिबोध के कृतित्व की मूल प्रेरणा प्रगतिवादी रही है...उदाहरणार्थ, एक निबंध में उन्होंने ऐसे जीवन दर्शन की आवश्यकता पर बल दिया है जिसमें कम-से-कम वे बुनियादी बातें तो हों जिन्हें जनसाधारण अपने हृदय में अनुभव करते हैं। जैसे अन्याय का प्रतिकार, मानव साम्य की स्थापना का प्रयत्न, विकृत स्वार्थवाद और भ्रष्टाचार का विरोध, सामाजिक संबंधों में प्रेम और त्याग की भावना, अहंकार की उग्रता का विरोध, अपने घर में सोफा सेट रखने के लिए बुद्धि को बेच देने तथा दोबारा बुद्धि के खरीदे जाने का विरोध, समझौता परस्ती के खिलाफ कड़ाई और साधारण भारतीय जनमत के प्रति भक्ति और अनुराग ।"[27]

'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित 'डूबता चाँद कब डूँबेगा', 'चकमक की चिंगारियाँ', 'क्षुब्ध सिंधु', 'चंबल घाटी', 'इस चौडे उँचे टीले पर', 'कल जो हमने चर्चा की थी', 'मैं तुम लोगों से दूर हूँ', 'मेरे सहचर मित्र', 'आत्मा के मित्र मेरे' आदि कविताओं में उनकी प्रगतिवादी भाव-क्रान्ति का प्रखर रूप मिलता है । पूँजीवादी सभ्यता के प्रति

---

[26]. अलाव – जनवरी-फरवरी 2011, संपा.रामकुमार कृषक पृ134

[27].नई कविता की चेतना – जगदीश कुमार, पृ.73.

मुक्तिबोध का दृष्टिकोण पूर्णतः मार्क्सवादी रहा है। 'पूँजीवादी समाज के प्रति', 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' आदि कविताएँ इस तथ्य को पोषित करती हैं। पूँजीवादी समाज में पले दार्शनिकों और बुद्धिजीवियों की सिद्धान्तवादिता पर भी जगह-जगह व्यंग्य किए गए हैं। मार्क्सवादी क्रान्ति हिंसात्मक होती है, इसलिए कवि 'नाश देवता' की वंदना करता है और यह मानता है कि बिना संहार के सृजन असंभव है। क्रान्ति के लिए सर्वाधिक मूल्यवान तत्व है - बलिदान की भावना। क्रान्तिकारियों को सुविधाएँ त्यागकर खतरे उठाने होंगे। बलिदान जैसी आदर्श एवं स्वार्थ सुखेच्छा जैसी निम्न भावनाओं के द्वन्द्व ने मुक्तिबोध की एक अन्तर्कथा 'इस चौडे उँचे टीले पर', 'चंबल की धारा में' जैसी अनेक रूपक कथाओं को जन्म दिया है।

मुक्तिबोध अधिक गंभीर और चिन्तनशील मनुष्य थे । इसी कारण उनकी काव्यचेतना इतनी उलझन भरी, अस्पष्ट और दुरुह हो गई है कि उसके संबंध में सभी विद्वान एक मत नहीं हैं। मुक्तिबोध काव्य के संबंध में परस्पर विरोधी मत प्रकट किए गए हैं। डॉ.शिवकुमार मिश्र ने उनके महत्व का आकलन करते हुए लिखा है, "वस्तुतः मुक्तिबोध का महत्व उनकी गहन अन्तर्दृष्टि और सूक्ष्म बौद्धिक आत्मानुभूति में निहित है। मध्यवर्गीय जीवन की अनेकानेक उलझनों को वे अपने काव्य में साकार करने में सफल रहे हैं। घोर व्यक्तिवादी होने पर भी उनकी सामाजिक चेतना ने उन्हें पथभ्रष्ट नहीं होने दिया है। अपने द्वन्द्व से लगातार जूझने की शक्ति दी है , जीवन और मनुष्य के प्रति उनके विश्वास को जीवित रखा है।"[28] वस्तुतः मुक्तिबोध के काव्य का अध्ययन करने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ.मिश्र ने मुक्तिबोध के काव्य की विशेषताओं एवं उनकी प्रगतिवादी चेतना को सही रूप में आत्मसात किया है।

शमशेर बहादुर सिंह 'दूसरा सप्तक' के कवियों में से हैं। प्रगतिशील कवि के रूप में शमशेर की कविताएँ स्वस्थ सामाजिक चेतना से पूर्ण हैं। कवि ने सन् 1931 से कविता लिखना प्रारंभ किया था। स्वतंत्रपूर्व काल में उनकी एक रचना 'कुछ कविताएँ' नाम से 1936 में प्रकाशित हुई थी। स्वातंत्र्योत्तर काल में उनकी 'कुछ और कविताएँ' (1961), 'चुका भी नहीं हूँ मैं' (1975), 'इतने पास अपने' (1980), 'उदिता अभिव्यक्ति का संघर्ष' (1980), 'काल तुझसे होड़ है मेरी' (1981) में प्रकाशित हुई। इन कविताओं में दलितो-पीड़ितों के प्रति सहानुभूति, मुक्ति और एकता के प्रति अडिग विश्वास, मानव व्यक्तित्व पर आस्था, मानवता

---

[28].नया हिन्दी काव्य – शिवकुमार मिश्र, पृ.271-72

के नवयुग के प्रति वास्तविक आकांशा, कर्मठता, दृढ़ता, आशा से ओतप्रोत, क्रान्ति की संतुलित वाणी सब कुछ उनमें बड़े ही साफ-सुथरे रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

'एक आदमी दो पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता' जैसी कविताएँ प्रगतिवादी सृजनशीलता की उपलब्धी मानी जा सकती है । शमशेर ने अपनी कविता के माध्यम से प्रगतिवादी चेतना का परिचय दिया है। समय-समय पर हो रहे आन्दोलनों पर भी कवि की लेखनी चुप नहीं बैठी, वरन् उनका साथ देने के लिए तत्पर तैयार हो जाते थे । इस संदर्भ में शंभु बादल ने 'शमशेर : विभिन्न वादों के आलोक में' शीर्षक लेख में जो कहा है, यहाँ उल्लेखनीय है , "शमशेर आरंभ से ही प्रगतिवादी चेतना, जिसका वैचारिक आधार मार्क्सवाद है, का परिचय देते रहे हैं। उन्होंने मनुष्य के प्रति आस्था रखते हुए उसके समुचित विकास के लिए सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के गुणात्मक परिवर्तन का पक्ष लिया, क्रान्तिकारी आन्दोलनों से अपने को भावात्मक रूप से संबध रखा। उन्होंने मज़दूरों, किसानों और सैनिकों के विद्रोही तेवरों को अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया। यदि कोई आन्दोलन में, संघर्ष में, विद्रोह में मारा गया, जेल में यातना झेलते हुए मरा तो उनकी कविता मुखर हो उठी । वस्तुतः उनकी कविता समसामायिक परिवेश में परिवर्तनकामी शक्तियों की संघर्षशीलता के प्रति पूरी तरह संवेदनशील रही। वे नस्लवाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद और अन्धराष्ट्रवाद के विरोध में हमेशा सजग रहे हैं ।"[29]

'काल तुझसे होड है मेरी' काव्यसंग्रह के 'बैल' शीर्षक कविता अपनी प्रतीकात्मकता के माध्यम से शोषण, उत्पीड़न की गाथा सुनाती है। इसी संग्रह में 'धार्मिक दंगों की राजनीति' नामक कविता में साम्प्रदायिक दंगों के कारण और उससे होनेवाले रक्तपात की गहरी तहकीकात करती दिखाई देती है। 'अकाल' पर बाबा नागार्जुन की कविता की तरह ही शमशेर ने भी कविता लिखी है। जहाँ नागार्जुन मानवीय यथार्थ चित्र उकेरते हैं, वहीं शमशेर अकाल के कारणों की गहरी पड़ताल करते हुए मार्क्सवादी कवि होने के नाते उन नारकीय स्थितियों को सामने रखते हैं और व्यवस्था के विरुद्ध हथियार उठाने के लिए विवश कर देते हैं। पूँजीवादी साम्राज्यवाद के इस नए दौर में कवि भूख, इस सबसे बड़े प्रश्न से मुठभेड करते हुए दहकता है और ज्वलंत सवाल छोड़ जाता है - "मृत्यु का यह नया रूप है स्पष्ट/ हमारे जीवन के बीच/ लय-ध्वनि स्वर-संकेत और संज्ञा से हीन अभूतपूर्व/ क्यों जन्मा

[29].समकालीन चुनौती -सुरेन्द्र प्रसाद सुमन, संयुक्तांक, 2-3 अक्तूबर 2010, मार्च 2011, पृ.49.

था मनुष्य/ बींसवी सदी के मध्यान्ह में/ यो मरने के लिए?/ झुलसा-सा पतझड़ का पत्र/ चिथड़ों के बादल-सा/ धूमिल संध्याओं में,/ हवा का निरीह कंप केवल !/ वीर बलिदान की सदी है यह !/ हमीं उठेंगे क्या?/ वीर बलिदान की सदी है यह नानाविध पूर्ण शक्तिशाली/ समृद्ध !/ सवर्ण-इतिहासों के सृष्टा/ हमीं बनेंगे क्या?/ अखिल उत्पादन के अमर अधिकारी/ विश्व राष्टों के संघ स्वाभिमान/ हमीं बढ़ेंगे क्या ?"[30]

शमशेर की 'वाम वाम वाम दिशा' और 'बात बोलेगी' आदि कविताओं में वामपंथ खुले रूप में आया। शमशेर वामपंथी और माओ के विचारों के समर्थक होते हुए भी जब चीन ने 1962 में भारत पर हमला किया था, उसकी कटु आलोचना की है। 'चुका भी हू मैं नहीं' में कवि ने युद्ध के सवाल पर लाल चीन की विस्तारवादी दृष्टि को गंभीरता के साथ कटघरे में खड़ा कर दिया है। चीनी आक्रमण पर बहुत सारे कवियों ने कविताएँ लिखी हैं। शायद ही इससे बेहतर कोई कविता हो। इस कविता में स्थित प्रश्न केवल कवि के ही नहीं बल्कि पृथ्वी तल पर रहने वाले अरबों मनुष्यों के भी हैं -

"इतिहास कितना बौना है
दो हजार साल में चीन के
अक्ल की दाढ़ नहीं निकली ।
क्या बुद्ध का नाम हिमालय के पार भी
लोग लेते हैं?
अगर तोफों के मुँह में जबान है
सच्चाई की ?
और बम्बार ही भाई-भाई को पहचानेंगे,
तो
तो-मार्क्स को जला दो। लेनिन को उड़ा दो।
माओ के क्यून को
प्रशांत महासागर में डूबा दो।[31]

---

[30]. प्रतिनिधि कविताएँ - समशेर बहादुर सिंह , राजकमल पेपरबैक, पृ.114

[31] चूका भी मैं हूँ नहीं - समशेर बहादूर सिंह पृ.54

शमशेर बहादुर सिंह ने 'यह शाम है' कविता में ग्वालियर के मज़दूरों के लाल झंडे, रोटियों के निशान और गोलियों से भूने गए उनके जुलूस का भावचित्र खिंचा है, जो मार्मिक है । पाब्लो नेरुदा पर लिखी केदार की कविता में अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा चेतना को अपने देश के उत्पीड़ित किसान मज़दूर की मुक्ति से जोड़ने का प्रयास किया गया है । नेरुदा के सम्बन्ध में कवि का कथन है -

"रक्त तुम्हारा, पूँजीवादी के कटु विरोध में
विद्रोही बन, जलते शब्दों की मशाल ले
भरी भीड़ में दौड रहा है सौ घोड़ो की ताकत लेकर ।"[32]

केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, मुक्तिबोध और शमशेर के ही समकालिक मार्क्सवादी कवियों में त्रिलोचन का भी नाम लिया जाता है । त्रिलोचन साहित्यिक क्षेत्र में निराला से अधिक प्रभावित रहे हैं । इनके तीन काव्यसंग्रह प्रकाशित हो चुके हैं - 'धरती'(1945), 'गुलाब और बुलबुल'(1956) एवं 'दिगन्त' 1957) । इसके अतिरिक्त 'ताप के ताए हुए दिन'(1980), 'शब्द'(1980), 'उस जनपद का कवि हूँ'(1981), 'अरघान'(1984), 'तुम्हें सौपता हूँ'(1985), 'फूल नाम एक'(1985), 'अनकहनी भी कुछ कहनी है' (1985), 'सबका अपना आकाश' (यह गीत संग्रह है,1987), 'अमोला'(1990) में प्रकाशित हुए हैं । इनकी सारी कविताओं में जनता के प्रति प्रतिबद्धता एवं पक्षधरता दिखाई देती है ।

कविता में समाज की विसंगतियों का वर्णन जनवादी लेखकों एवं कवियों ने किया है । जिनमें किसान, मज़दूर, वर्णभेद, नारी की दीन दशा का वर्णन मुख्य विषय रहा है। समाज के इस विषम परिस्थितियों ने त्रिलोचन के कवि हृदय को गहराई से स्पर्श किया है । त्रिलोचन साहित्य में कोरे आदर्श को नहीं स्वीकारते हैं, बल्कि वे यथार्थवाद के भी प्रबल समर्थक हैं । उन्होंने अपनी कविताओं में समाज की तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन किया है । भारत की आत्मा गाँव कहे जाते हैं । आज वह गाँव भूख से बेहाल होकर पेट की आग बूझाने के लिए शहर की ओर जा रहे हैं । कवि 'भोरई केवट घर' कविता में प्रत्यक्ष उस व्यक्ति वेदना का चित्रण करता है । सदियों से पीड़ित दलित एवं व्यवस्था का नरक भोगने को अभिशप्त जनता के प्रति कवि अत्यन्त सहानुभूतिशील है । हिन्दी काव्य जगत में ग्रामीण जीवन और किसान के ऊपर जितना त्रिलोचन ने लिखा है, उतना शायद ही किसी समकालीन कवि ने

---

[32].प्रगतिशील और समानान्तर साहित्य -रेखा अवस्थी, पृ.119.

लिखा होगा । खेतों में रात-दिन मेहनत करके इस धरती को सश्य-श्यामल बनाने वाले किसान के श्रम का चित्रण कवि ने जिस ढंग से किया है, वह अद्वितीय है -

"वे सींच रहे जग-जीवन
जग-हित में उनका तन-मन
वे फिर भी निर्बल-निर्धन
विश्वास न उनको अपना
वे अपनेपन से उन्मन
मिलकर वे दोनों प्राणी
दे रहे खेत में पानी ।"[33]

त्रिलोचन का कवि मन समाज में बोझ से दबे हुए जन को देखकर दुखी होता है । समाज की व्यवस्था को देखकर गरीब जनता के प्रति बेचैन होता है । संत कबीर के समान 'सुखिया सब संसार है, खावे और सोवे । दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवे ।।' कवि जनता के दुख को अपना दुख समझकर उसमें भाग लेता है और सोए हुए लोगों को जगाता भी है -

"देखा कहीं जो बोझ से दबते किसी को भी
नज़दीक जाके कांध लगाया यहाँ वहाँ
निश्चिंत पढ़के सोए किसी को कहीं देखा
जाते समय को देख जगाया यहाँ वहाँ ।"[34]

इसके अतिरिक्त स्वातंत्र्योत्तर काल में वीरेश्वर सिंह 'वीरेश' की कविताएँ जो तत्कालीन समय में पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थी । चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका' जी का 'बौछार' काव्य-संग्रह महत्त्वपूर्ण है । इस काव्य-संग्रह में कवि ने कृषक जीवन की पूँजीवादी विषमता जन्य परिस्थिति का चित्रण किया है । शोषित वर्ग के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति की धारा प्रवाहित होती दिखाई देती है । कवि ने इन कविताओं के माध्यम से श्रमिक वर्ग के आत्मसम्मान और उसके सामाजिक महत्व को रेखांकित करने का प्रयास किया है ।

---

[33].जन कवि - सम्पा.विजय बहादुर सिंह, पृ.143-44.

[34]. गुलाब और बुलबुल - त्रिलोचन, पृ.

इन कवियों के अतिरिक्त अन्य मार्क्सवादी कलाकारों में खेम सिंह नागर, साहब सिंह मेहरा, चन्द्रभाल ओझा, मानसिंह राही, राजीव सक्सेना, जवाहर चौधरी, देशराज, श्रीराम तिवारी, पन्नालाल शर्मा, कन्हैयालाल वर्मा, भगीरथ पटनायक, केशव कृष्ण वर्मा, मूलकृष्ण चतुर्वेदी आदि के नाम भी विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं, जिनकी कविताओं का आधार मार्क्सवादी विचारधाराजनित चेतना है।

1.2 मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का उद्भव और विकास

1.2.1 स्वतंत्रता पूर्व :

मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना रूसी क्रांति के प्रभाव स्वरूप आयी । मराठी काव्य संसार में केशवसुत ऐसे कवि है जो रूसी क्रांति के पहले ही मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित होकर कविता लिखते थे । मार्क्स और एंगेल्स का प्रसिध्द 'कम्यूनिस्ट घोषणा पत्र' (communist manifesto) 1848 ई. के आरंभ में संसार के सामने आया । 1885 ई. में केशवसुत का काव्य लेखन प्रारंभ हुआ। मराठी कविता को आधुनिकता के दहलीज पर रखने का श्रेय केशवसुत को जाता है । केशवसुत मार्क्सवादी नहीं थे किंतु उनकी 'तुतारी', 'मुर्तिभंजन', 'मजुरांवर उपास-मारीची पाळी' आदि कविता में मार्क्सवादी चेतना की झलक देखने को मिलती है। उदा -

"सर्वास देवा। बघतोस सारखा
होतोस का रे गरिबास पारखा
कांहीस सुग्रास सदन्न तू दिले
साधी आम्हां भाकर ही न का मिळे ?"[35]

कवि ईश्वर से पूछ रहा है कि हे भगवान तूने एक ओर पंचपकवान आदि हमेशा के लिए दिया है और दूसरी ओर दो वक्त की रोटी तक मयस्सर नहीं होती। तू तो सबके लिए समान है किंतु इन गरिबों के प्रति इतना निर्दय क्यों बना है। इस तरह का भेद-भाव क्यों

[35] मजुरावर उपासमारीची पाळी – हरपले श्रेय ,केशवसुत , पृ. सं. 100

करते हो ? केशवसुत का ईश्वर से विश्वास उठ जाता है तभी तो मूर्तिभंजन कविता में मूर्तिया फोडने की संपत्ति को लूटने की बात करते हैं -

"मूर्ति फोडा, धावा ! धावा, फोडा मूर्ति

आतील संम्पत्ति फस्त करा ! "[36]

मराठी काव्य संसार में सामाजिकता की नीव केशवसुत ने ड़ाली है । केशवसुत न ही पक्के मार्क्सवादी थे और नहीं मजदूर जीवन को अनुभव किया था किंतु उनमें शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति जरूर थी । इस संदर्भ में प्रा. मनोज तायडे का कथन है "यहाँ अनुभूति नहीं होगी किंतु सहानभूति अवश्य थी । उस समय तक की मराठी कविता में यह सहानुभूति नयीं थी यह निर्विवाद ! पलायनवाद को केशवसुत की कविता ने कभी स्वीकार ही नहीं किया।"[37]

मार्क्सवादी चेतना की सही शुरूआत और लेखन की परम्परा रूसी क्रांति के बाद 1925 से हुई है । भारत में कम्यूनिस्ट पक्ष की स्थापना 1925 में हुई । 1925 के बाद की मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना देखने को मिलती है ।

मराठी कविता में केशवसुत के बाद मार्क्सवादी चेतना की झलक आत्माराम रावजी देशपांडे उपाख्य कवि 'अनिल' जी के काव्य में देखने को मिलती है । मराठी काव्य में यह समय रोमांटिसिज्म का है । जिस प्रकार काव्य में 1918 से 1936 तक का समय छायावाद का है उसी प्रकार मराठी में रोमांटिसिज्म का । यह दोनो समानांतर चल रही थी, और साथ ही साथ इन दोनों की प्रवृत्ति एक जैसी दिखायी देती है । हिन्दी काव्य संसार में छायावादी कवि प्रेम और प्रकृति परक कविता लिख रहे थे उसी तरह मराठी में अनिल जी का लेखन हो रहा था । व्यक्तिनिष्ट प्रेम का अविष्कार करनेवाला कवि 1933 से मार्क्सवादी प्रभाव में आ गया । इनका 1940 में 'भग्नमूर्ती' मुक्त छंदात्मक प्रसिद्ध खंडकाव्य प्रकाशित हुआ। 1943 में 'निर्वासित चीनी मुलास' यह खंडकाव्य प्रसिध्द हुआ । वैयक्तिक सुख दुख में रमनेवाला कवि इन दो खंडकाव्य में आते आते गंभीरता से सोचने लगा । कम्यूनिस्टों के नेतृत्व में चीनी लोगों ने साम्राज्यशाही और वसाहतवाद के विरोध में जो लढ़ाई लढ़ी है उसकी प्रशंसा कवि ने की है । 1947 में अनिलजी का ' पेर्ते व्हा ' यह काव्य-संग्रह प्रसिध्द हुआ,

---

[36] हरपले श्रेय – केशवसुत पृ.110

[37] नारायण सुर्वे यांची कविता आणि काव्यदृष्टी – प्रा.मनोज तायडे पृ-15

जिस पर साम्यवाद का प्रभाव आईने जैसा दिखने लगा । इस अंतिम काव्य-संग्रह में कवि शोषण के विरोध में जलती मशाल लेकर चलने की, क्रांति लाने की बात करता है । शोषितों के प्रति उनकी जो संवेदनाएँ है उसे अपने हृदय में भर लेते हैं , उदा -

"हाल पाहून हळहळू
होवोत कोठेही
पिळवणूक पाडील पाळ आम्हा
असो कोणाचाही ।"[38]

अनिलजी 'बंड' कविता में शत्रु पर आक्रमण करके उन्हे धूल में मिलाने की बात करते हैं, उन पर आक्रमण करके जीत हासिल करने की और समता, साम्यवाद का अधिराज्य स्थापन करने की बात उन्होंने की है -

"किल्ले उडविन्यास त्याचे
क्षणार्दात अस्मानात
धुळीत मिळविण्यास तडाक्यात
साम्राज्ये अंधारयुगांची
स्थापायास अधिराज्य
समतेचे....."[39]

इनका अंतिम काव्य-संग्रह 'सांगति' है । इस काव्य-संग्रह में कवि पुन: प्रेम संसार में लौट आते हैं ।

अनिलजी के बाद मार्क्सवादी चेतना अनंत काणेकर की कविता में देखने को मिलती है । काणेकरजी का 1933 में 'चांदरात' यह काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ । इनका समय 'रविकिरण मंडल' का है । काणेकरजी पहले अपनी प्रियसी के प्रेम में लीन थे और बाद में कैसे मार्क्सवादी प्रभाव से नहीं बच पाए इसे विस्तार से देखते हैं -

"चल ग सजने राणामध्ये ।
चाफ्याचं फूल तुझ्या कानामध्ये ।।"[40]

---

[38] मराठी कविता : परंपरा आणि दर्शन- अरुण देशमुख पृ.137

[39] मराठी कविता : परंपरा आणि दर्शन- - डॉ. शुभांगी पातुरकर

और

"चुंबणार तुला तोंची मुख हालविलेस की
आणि बिंबधरा जागी चुबंले हनुलाच मी ।
फसलो जरि मी ऐसा धीर ना तरी सोडतो
स्वर्ग दोणच बोट उरला मजू वाटतो..... ।"[41]

पहली कविता में कवि अपनी प्रेयसी के साथ खेतों में जाने की और चाफा का फूल उसके कानों में लगाने की बात करता है । दूसरी कविता में कवि कहता है- मैं तुम्हारे अधरों को चूंबने ही वाला था कि तुम तनिक सी हिल गयी और मैने तुम्हारे ढूडी को चुम लिया । मैं फंस गया तो क्या हुआ धीरज खोनेवाला नहीं हूँ , क्योंकि मुझे पता चला है कि स्वर्ग पहुँचने के लिए सिर्फ दो अंगुलियों का अंतर मात्र रह गया है । काणेकर जी का 'चांदरात' काव्य-संग्रह 1930 में प्रकाशित हुआ जिस पर मार्क्सवादी विचारों का प्रभाव दिखायी देता है । 'कवने' शीर्षक कविता 30 अक्तुबर 1931 और 'दोन देवभक्त' कविता मार्क्सवादी चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, उदा -

"यंत्रशक्तिची प्रचंड घर घर । दमहि न घेता मजुर क्षणभर ।
वस्त्र विणेतसे त्यावर झरझर । रक्ताळति मग डोळे त्यांचे ।।"[42]

इस कविता में कवि मजदूर के प्रति सहानुभूति दिखाता है । बड़े-बड़े यंत्रों के वजह से मजदूर को एक क्षण भर भी विश्राम नहीं मिलता उसे उस यंत्र की तेजी के साथ किस तरह से काम करना पडता है इसका चित्रण उन्होंने किया है ।

काणेकर जी के बाद मराठी कविता जगत में कुसुमाग्रज आते हैं । इनका 'जीवनलहरी' काव्य-संग्रह 1933 में प्रकाशित हुआ । इन पर 'रविकिरण मंडल' का प्रभाव था, उसी समय कुसमाग्रज, जोगळेकर, केळकर, पोळ, खेर, माधव मनोहर इन कवियों ने मिलकर एक 'ध्रुवमंडळ' की स्थापना की । 'जीवन लहरी' काव्य-संग्रह में कवि प्रेम गीतों में रमा था । उदा -

"प्रीतीच्या मंत्राने

---

[40] मार्क्सवाद आणि मराठी कविता – वि.स. जोग पृ.358

[41] मार्क्सवाद आणि मराठी साहित्य – वि.स. जोग पृ.358

[42] मार्क्सवाद आणि मराठी साहित्य – वि.स. जोग पृ.358

फुलवू जागो जाग

आम्ही प्रेमी वेडे

सुखदायी फुलबाग"[43]

कवि कहता है कि हम प्रेमी पागल प्रीति के मंत्र से जगह-जगह पर फूलों का बगिचा खुलवाएगें और वह फूलों का बगीचा सुखदायी होगा । कवि अपने 'जीवन लहरी' काव्य-संग्रह में अन्य जगह पर लिखता है कि इस संसार में स्त्री के स्पर्श से बढ़कर और कोई सुख नहीं है,

उदा-

"स्त्रीच्या स्पर्शापरि ना

सुख दूसरे संसारी

दुर्बलतेहुनि कोमल

करूणा स्पद काय तरी !"[44]

प्रेमगीतों में रमनेवाले कुसमाग्रज विशाखा काव्य-संग्रह में आते-आते उनमें परिवर्तन दिखायी देता है । अपनी प्रेयसी को बाहों से चांदनी के हाथ हटाने को कहते हैं क्योंकि बदलता समय उन्हें ज्ञात है । यह समय क्रांति का समय है । प्रेयसी से यह भी कहते हैं कि हम नहीं बदलेगें तो यह समाज हमें कभी माफ नहीं करेगा, और हम इस समाज के अपराधी कहे जायेगें इसलिए अब बस हुआ हाथ हटाओं । उदा-

"काढ सके गळयातील

तुझे चांदण्याचे हात

क्षितिजांच्या पलीकडे

उभे दिवसाचे दूत

ओततील आग जगी

- - - - - - -

उजेडात दिसे वेडे

आणि ठरू अपराधी "[45]

---

[43] जीवन लहरी – कुसुमाग्रज पृ-47

[44] जीवन लहरी – कुसुमाग्रज पृ-16

कुसुमाग्रज 'विशाखा' काव्य-संग्रह में शोषक और शोषितों का चित्रण रूपक में करते हैं इसलिए इसे रूपक काव्य भी कहा जा सकता है। 'आहि - नकुल' इस कविता में वर्ग संघर्ष का अविष्कार दिखायी देता है। उन्होंने पूंजीपति वर्ग के लिए नाग के और शोषित वर्ग के लिए नकुल के रूपकों की योजना की है। नकुल जिसमें पूंजीवादी वर्ग के साथ संघर्ष करता है, पूंजीपति और मजदूर के इस संघर्ष में पूंजीपति का अंत हो जाता है। इनका दूसरा रूपक काव्य 'आगगाडी व जमीन' आगगाडी से तात्पर्य रेल है। आगगाडी यह पूँजीपति वर्ग का रूपक है और जमीन शोषित बहुजन समाज का। इस कविता में मजदूर वर्ग की संघ शक्ति से पूंजीपति वर्ग के नाश की कल्पना की है।

' हिमलाट ' इस कविता में सर्दी का झोंका (हिंम) महलों में रहनेवाले धनिक लोगों से डर कर भाग जाता है क्योंकि उनके पास मखमली के गरम कंबल है जिसमें हिम घुस नहीं पाता। किंतु झोपडियों में रहनेवाले उसके प्रकोप के शिकार हो जाते हैं।

उदाहरण-

"श्रीमंत महाली तिथे हिला ना थारा
मखमली दुलया देती मधुर उबारा
डोकावुन पळते कापत हीच थरारा।"[46]

इसी कविता के अंतिम चरण में कवि आर्थिक विषमता को नष्ट करने के लिए शोषित किंतू शक्तिशाली क्रांतिकारी वर्ग को इकजुट होकर संघर्ष करने का आह्वान करता हैं। मशाल जलाकर पूंजीपति का नाश करने की बात करता हैं ।

"ज्योतीतून धावत या तेज: कण सारे
या यज्ञातिल अन् सरणांतील निखारे
रे ढाळ नभा, तव ते ज्वालामय तोर
पेटवु द्या वणवा कणाकणांत मशाली
हिमलाट पहाटे पहा जगावर आली।"[47]

---

[45] विशाखा – कुसुमाग्रज पृ- 22

[46] विशाखा – कुसुमाग्रज पृ-22

[47] विशाखा – कुसुमाग्रज पृ-22

इस समय कुसुमाग्रज का सिर्फ एक ही लक्ष्य था वह साम्यवादी नवसमाज का । प्रेम, ईश्वर और प्रकृति में निष्ठा रखनेवाला कुसुमाग्रज अब साम्यवाद में निष्ठा रखता है । 'लिलाव' कविता में किसान पर होनेवाले अन्याय और अत्याचार का जमकर चित्रण किया है। इस कविता में साहूकार कर्ज वसूलनें के लिए किसान के घर जाता है और पैसे न मिलने पर उसकी झोपड़ी को नष्ट कर देता है । जब किसान की पत्नि भूखी होकर भी बच्चे को अपनी छाती से लगाकर दूध पिलाती है, तब खुला बदन देख साहूकार किस तरह से थैली में हाथ डालकर पैसे बजाता है। इसका चित्रण कुसुमाग्रज ने किया है -

"भूखे अर्भक अन् कवळूनी उरास
पदर टाकुनि त्या घेई पाजण्यास
ऊर उघडे ते तिचे न्हाहळोनी
थोर थैलितिल बाजवित नाणी.."[48]

अन्याय, अत्याचार और अमानुषता को देख कुसुमाग्रज का ईश्वर से विश्वास ऊठ जाता है और वह कहता है कि यह तीस कोटी ईश्वर है या दया के मुर्दे।

'तीस कोटी दैवतांच्या की दयेचे ह्ये मढे'

इस प्रकार 'विशाखा' काव्य-संग्रह में 'आहि नकुल हा काठोकाठ कठा भरा', 'आगगाडी व जमीन', 'हिमलाट', 'लिलाव', 'बळी' आदि कविताओं से यह ज्ञात होता है कि कुसुमाग्रज पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव पड़ा था । उनका अन्य एक काव्य-संग्रह 'किनारा' 1952 में प्रकाशित हुआ था जिसका उल्लेख स्वातंत्र्योंत्तर काल में होगा।

इस प्रकार मुख्य रूप से स्वातंत्र्यपूर्व काव्य में मार्क्सवादी चेतना केशवसुत, अनिल, अनंत कानेकर और कुसुमाग्रज की कविता में देखने को मिलता है।

1.2.2 स्वातंत्र्योत्तर मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का उद्भव और विकास

कुसुमाग्रज की कई कविताएँ स्वातंत्र्योंत्तर काल में भी प्रकाशित हुई हैं। उनका प्रसिध्द काव्य-संग्रह 'किनारा' इ. स. 1952 में प्रकाशित हुआ । इस काव्य-संग्रह में 'दोन याचक' और 'फेरीवाला' आदि एखाद दो कविता मात्र मार्क्सवादी चेतना से युक्त है ।

---

[48] विशाखा 'लिलाव'– कुसुमाग्रज पृ-61

तत्कालीन समय में समाज और राजनीति से साम्यवाद का प्रभाव हटते जा रहा था, और कुसुमाग्रज साम्यवाद विचारों से दूर जा रहे थे । इस संदर्भ में वि.स.जोग कहते हैं - "कुसुमाग्रज साम्यवाद की जकड़ से फिसल कर गांधीवादी-राष्ट्रवाद-अध्यात्मवाद के संमिश्र संस्कारों में जकड गये । इस समय साम्यवाद का प्रभाव समाज राजनीति से फिसल रहा था, इससे भी अच्छा कारण मीमांसा किसी भी एक जीवननिष्ठा को वें निश्चित रूप से स्वीकार नहीं किए थे । इससे अच्छा अदाहरण इस मध्यवर्गीय कवि के बारे में दे नहीं सकतें ।"[49] ईश्वर को मुर्दा कहनेवाला कवि स्वातंत्र्योंत्तर काल तक आते आते ईश्वर में प्रगाड विश्वास रखता है।

साम्यवाद के प्रभाव स्वरूप कुसुमाग्रज पर यह जरूर असर पड़ा है कि रविकिरण मंडल के आत्मनिष्ट-व्यक्तिनिष्ट-व्यक्तिवादी प्रेम कविता के जकड़ से कविता बाहर आ गयी । समय के अनुसार कुसुमाग्रज पर मार्क्सवाद का प्रभाव पड़ा है किंतु उन्होंने मार्क्सवाद को पूरी तरह से नहीं पचाया और न ही पक्के मार्क्सवादी बने । इस संदर्भ में वि.स.जोग कहते हैं - "साम्यवाद को कुसुमाग्रज ने अपनी जीवन निष्ठा कभी माना ही नहीं, नाही उन्होंने साम्यवाद का गहन अध्ययन कर के चिकित्सापूर्ण अपने व्यक्तित्व में पचाया है । इस मध्यमवर्गीय व्यक्तित्व पर तत्कालीन समय ने जितना प्रभाव और दबाव डाला उतनाही टिक पाया । उन पर राष्ट्रवाद का प्रभाव मजबूती से टिका ।"[50] मार्क्सवादी काव्य-चेतना की दृष्टि से कुसुमाग्रज के बाद मेर्ढेकर आते हैं । मराठी काव्य संसार में केशवसुत के बाद प्रखर और प्रसिध्द कवि मर्ढेकर ही है । यहाँ तक की काव्य का काल विभाजन करते समय मर्ढेकर युग तक नाम रखा गया है । साम्राज्यशाही महायुध्द के कारण उनके काव्य में राष्ट्र प्रेम और मानवतावाद के साथ-साथ पूंजीवाद का विरोध प्रखर रूप से दिखायी देता है ।

"सुख दु:खाचे गळे कापुनी

मळे पिकविले वर्षानी तरि

---

[49] मार्क्'सवाद आणि मराठी कविता – वि. स. जोग , पृ.358

[50] मराठी माती – कुसुमाग्रज , पृ.88

रवंत काढी कुढ्या मनाची

जुनाच भाकड-कडबा हा वरी ।"[51]

निम्न वर्ग की जो दयनीय दशा हुई है उसका जिम्मेदार यंत्रयुग को टहराते है -

"लावा दुर्बिन आकाशी । फोडा परमाणू-राशी

आम्ही अधाशी? उपाशी? । आम्हा नेणे ।।"[52]

इस प्रकार पूंजीवाद के विरोध में कविता लिखनेवाले मेर्ढेकर साम्यवादी नहीं है । इस संदर्भ में वि.स.जोग का कथन उल्लेखनीय है - "मात्र पूंजीवाद के प्रति क्रोध दर्शाने वाले मेर्ढेकर साम्यवादी न होकर साम्यवाद का मज़ाक उड़ाने वाले हैं ।"[53]

मर्ढेकर के समकालीन श्रेष्ट साम्यवादी कवि के रूप में प्रा. शरचंद्र मुक्तिबोध का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है । शरचंद्र मुक्तिबोध यह गजानन माधव मुक्तिबोध के छोटे भाई है । उनका 'नवी मळवाट' और 'यात्रिक' यह दो काव्य-संग्रह प्रसिध्द हैं । इनके कविताओं को पढने के पश्चात यह ज्ञात होता है कि इन पर मार्क्सवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव पड़ा था । कुछ विद्वान इन्हे पक्के मार्क्सवादी सिध्द करते हैं तो कुछ लोग मार्क्सवादी कहने से साफ इन्कार करते हैं । मुक्तिबोध ने खुद कबूल किया है कि उपन्यास लेखन की प्रेरणा यह साम्यवाद की देन है, और कविता लेखन में भी साम्यवाद का बहोत बड़ा हिस्सा रहा है । 'नवी मळवाट' के दूसरे संस्करण के प्रस्तावना में वे लिखते हैं - "शहर के मजदूर आंदोलन के केंद्र में रहते हैं । सर्वत्र दिखायी देनेवाला जीवन वैषम्य । मार्क्सवाद ने एक ऐतिहासिक दृष्टि दी है । मानवतावाद प्रत्यक्ष व्यवहार में लाने के लिए केवल वैयक्तिक श्रेष्टत्व और धार्मिकता का, अंत में कोई प्रयोग नहीं होगा । या फिर सिर्फ मानवता पर प्रेम करने से मात्र सुखी नहीं होगें । उस समय मानव जीवन परिवर्तन की आवश्यकता है, इसके लिए शास्त्र और शस्त्र है समाजवाद । मार्क्स ने जो सिध्दांत बताया है उसे प्रत्यक्ष जीवन में उतारने से मानव सुख के स्वप्न साकार होंगे ।"[54]

---

[51] नारायण सुर्वे यांची कविता आणि काव्यदृष्टी-प्रा.मनोज तायडे पृ-30

[52] यशवंत मनोहर-बाळ –सीताम मर्ढेकर पृ.49

[53] मार्क्सवाद आणि मराठी साहित्य -वि.स.जोग पृ -365

[54] शरतचंद्र मुक्तिबोध – नवी मळवाट की प्रस्तावना से.

मुक्तिबोध की कई कविताओं में मार्क्सवादी चेतना दिखाई देती है । 'मराठीचिये नगरी' जैसी लम्बी कविता में मुक्तिबोध ने यातना दुख, दारिद्र्य, अन्याय, समानता, क्रांति आदि पर उन्होंने बल दिया है। कवि महाकवि से कहता है कि गीत उन पर गाना चाहिए जो नवसृजन करते हैं, इससे श्रमिक वर्ग को उत्साह मिलेगा । गीत उन लोगों पर गाना चाहिए जिनके दो हाथ थकने के बावजूद पृथ्वी को अपने हाथों में लिए हुए हैं । कवि इस तरह का गीत गाने के लिए कहता है जिससे श्रमिक वर्ग के दिल में आग पैदा हो जाए -

"माना खाली पडलेल्या,डोळे मंद थिजलेले
मोडलेला कणा आणि फोल झाले वायदे
माना त्यांच्या वर कर,तळपू दे नवे डोळे
ताठ कणा करण्यास विजेचा संचार दे
कचेऱ्यांच्या कप्यांतून, गिरण्यांच्या पोटातून
- - - - - - - - - - - - -
पेटतील सारे जन असे ज्वालागीत गा!"[55]

'मराठीचिये नगरी' इसी दीर्घ कविता में कवि आगे कहता है गीत उन पर गाना चाहिए जो शोषित है, जो विषमता का दंश झेल रहा है, जो अपमानित है, जो श्रम करके मर रहा है और रात-दिन बिछू का दंश झेल रहा है । इन लोगों पर गीत गाने से या कविता लिखने से शायद वे जागृत हो जायेंगे। इसलिए कवि उन पर गीत गाने की बात करता है -

"गाणे हवे त्वेषाचे, वैषम्याच्या व्देषाचे,
गळून गळून स्वत्व मरणाच्या सुडाचें
गाने अपमानाचे, विंचवाच्या द्वंशाचे
अहोरात्र छळणाऱ्या पिशाचिनी स्मृतीचे"[56]

---

[55] शरतचंद्र मुक्तिबोध-यात्रिक पृ-55,56

[56] शरतचंद्र मुक्तिबोध-यात्रिक पृ-56

मुक्तिबोध को मार्क्सवादी जीवन दर्शन के सबसे करीब लानेवाली यह प्रसिध्द कविता है । मुक्तिबोध की कविता में जो क्रांतिकारी समाज है वह बहुजन समाज है । इस समाज को कवि संघर्ष के लिए तैयार रहने के लिए और सशक्त बनने के लिए कहता है -

"सशक्त व्हा, पाय रोवा, उद्दाचीच आण"[57]

मुक्तिबोध निम्न वर्ग के दुख को अपना दुख समझकर जीवन जिते हैं तभी तो वे लिखते हैं कि मेरा जीवन संघर्षरत है और संघर्ष में ही पूर्ण रूप से जिंदा हूँ -

"माझे जीवन संघर्षरत

संघर्षातच पूर्ण जिवंत" [58]

'यात्रिक' काव्य-संग्रह में 'दोन ज्योती' यह कविता मराठी साम्यवादी काव्य का भूषण है । इस कविता में निराशावाद को छोड़ कर कवि ने आशावाद को स्वीकार किया है । इस कविता से यह स्पष्ट होता है कि मुक्तिबोध की साम्यवाद पर कितनी निष्ठा थी । इस कविता में दो ज्योत है, एक काली काजल छोडनेवाली तो दूसरी लाल है । लाल रंग साम्यवादी है जो मुक्तिबोध का पसंदीदा रंग है । यह लाल रंग चेतना, गतिमानता, वर्गसंघर्ष, समाजवादी वास्तववाद मजदूर क्रांति और साम्यवादी समाज रचना का प्रतीक है ।

इस प्रकार मुक्तिबोध के 'दोन ज्योति', 'ठिणगी', 'मराठीचिये नगरी', 'रूधिराच्या लाल सड्यांतच', 'फोडासम दुखतो' आदि कविता में मार्क्सवादी चेतना प्रखर रूप से दिखायी देती है ।

मार्क्सवादी चेतना के विकास क्रम में मुक्तिबोध के बाद श्री य.द.भावे की रचनाओं को लिया जाता है । भावे का 'आद्रा' (1949) और 'हळवे भींग'(1951) इन दो काव्य-संग्रह के 'माझे पान' में जो भूमिका स्पष्ट की है वह साम्यवादी भूमिका से मिलती-जूलती है । भावे जी का मत है कि समाज जीवन से ही काव्य का निर्माण होता है और काव्य को वैचारिकता भी होती है यह वैचारिकता काव्य में प्रतीक के रूप में प्रकट होती है । इनके काव्य में जो रूपक है उसे हम उदाहरण के तौर पर 'विवस्त्र पांचाली', 'चोयट्या' आदि कविता को ले सकते हैं । 'चोयट्या' कविता में निहीत निर्जीव, शुष्क चोयट्या याने शोषित है ।

---

[57] मुक्तिबोधांची निवडक कविता –यशवंत मनोहर पृ-18

[58] मुक्तिबोध – नवी मऴवाट- पृ.73

'हळवे भींग' इस काव्य-संग्रह की भूमिका में कवि ने अपना मत प्रकट किया है - "नव कविता यह पुरोगामी है (अ) जो वैचारिक मिमांसा जिवन से अलग ही है वह मीमांसा निरर्थक तो होगी ही साथ में असिद्ध भी होगी । (ब) तत्वज्ञान दर्शन का मकसद आराम कुर्शी में लेटे-लेटे संसार के बारे में सोचना या अलग अर्थ निकालना इतनाही न होकर दुनिया या संसार को बदलना भी है ।"[59] भावे जी कार्ल मार्क्स के मत से सहमत हैं, उनकी प्रतिनिधी कविता के रूप में 'हसतो मार्क्स' कविता का परामर्श लिया है । भावे की कई कविताओं में मार्क्सवादी चेतना की झलक दिखायी देती है । उनकी 'हसतो मार्क्स' कविता बहुत ही प्रसिद्ध हुई है । इस कविता में कवि ने एक भिखारनी का वर्णन किया है ।... भिकारणी अमीरों के पास भीख माँगने जाती है और प्रेम से उन्हें पुकारती है । अमिर लोग उसकी आवाज अनसुनी कर देते हैं तब कवि के हाथ की मुठ्ठी क्रोध से अपने आप बंध जाती है और आंखों में खून चढने लगता है । तब कार्ल मार्क्स के गालों से किस तरह हंसी फूट पडती है -

"प्रेम भिखारिणीच्या आक्रंदनात ?
भिखारणीच्या मगरूरीच्या । धुंद घुरोळ्यात ?
वळतात मुठी, चढू लागतो रक्त डोळ्यात ।
शिरान शिरा उभ्या राहतात । द द दत्त ।
फुटतो हासू कार्ल मार्क्सच्या गालामधून"[60]

इस प्रकार तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति और पूंजीवाद का निम्ऩ वर्ग पर होनेवाले अन्याय को देख भावे जी के कवि मन पर जितना असर पड़ा उतना ही उनकी कविता में प्रकट हुआ है ।

इस विकास क्रम में भावे जी के बाद हम विंदा करंदीकर को ले सकते हैं । इनका 'स्वेदगंगा' काव्य-संग्रह इ. स. 1949 में प्रकाशित हुआ है । इनके कविताओं से लगता है इन पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव पड़ा है । मार्क्स्वाद का प्रभाव होते हुए भी इन्होंने एक ही समय में मार्क्सवादी विचार रहीत और मार्क्सवादी विचार सहीत कविताएँ लिखी है जो दोनों अपने आप में स्वतंत्र है । इनकी 'स्वेदगंगा' यह लम्बी किताब 1944 में प्रकाशित हुई है । इस कविता में कवि की मार्क्सवाद के प्रति जो निष्ठा है उसे दर्शाया है । कवि कहता है

---

[59] मार्क्सवाद आणि मराठी साहित्य -वि.स.जोग पृ.373

[60] मार्क्सवाद आणि मराठी साहित्य -वि.स.जोग पृ.375

कारखानों में जो मशिने चलती है वह मजदूरों के हड्डियों के आग से, पसीने के भाप से । जो सुंदर और रंगीन माल बनाता है । वह मजदूरों के खून से रंगी होती है -

"मजुरांच्या हाडांचा येथे जळतो अंगार सदा
मजुरांच्या घामाच्या वाफेवर फिरती ही यंत्रे
मजुरांचे पिंजुनिया स्नायु सूत इथे निघते
मजुरांच्या रक्ताच्या रंगाने ते सुंदर होते
- - - - - - - - -
घरघरणारी चक्रे म्हणती भीषण मंत्र वधाचे
- - - - - - - - -
श्रीमंतांचा स्वर्ग रचाया नरक बने मजुरांचा ।।"[61]

अंतिम पंक्ति में कवि कहता है कि पूंजीवादियों का स्वर्ग रचाने के लिए मजदूर अपना जीवन नरक बना रहा है ।

करंदीकर अपनी ' मुंबई ' इस कविता में निम्न वर्ग से पूछता है कि इतने भव्य ईमारतें हैं तुम फूटपाथ पर क्यों सोते हो ? भूख से बिलखते लोगो को देख कवि कहता है ... इतने सारे गोदामें जब अनाज से भरे हुए है तो तडफ-तडफ कर क्यों मरते हो ? इतने सारे मोटरे है तो फिर पैर घसीटते क्यों चलते हो? कपड़ों के इतने सारे कारखाने है तो फिर नंगे क्यों रहते हो?

"यह उंच हवेल्या ! का रस्त्यावर पडता ?
ही धान्यागारे ! का तळतळुनी मरता ?
हो शीघ्र वाहने ! रखडत का मग पायी ?
या प्रचंड गिरण्या ! वस्त्र तुम्हा का नाही ?"[62]

समाज में स्थित विषमता को देख कवि का मन दुखी हो जाता है । एक ओर भव्य इमारत है तो दूसरी ओर रहने के लिए झोपड़ी तक नहीं है । महँगाई इतनी बड़ गई है कि इन लोगों को दो वक्त की रोटी भी मयस्सर नहीं होती तब यह लोग विवश होकर भीख

---

61 स्वेदगंगा-विंदा.करंदीकर पृ.47

62 स्वेदगंगा-विंदा.करंदीकर पृ.47

माँगने लगते हैं तो टंकसाल और भव्य इमारत किस तरह से हंसती है इसका चित्रण उन्होंने ' टांकसाळ ती मनात हसते ' कविता में की है -

"महागाईचे पिवळे डोळे,
केस रेशमी, पिकलेले स्तन
बुभुक्षितांच्या भयाण तांडा
भीख मागतो दोन्ही वेळी
टांकसाळ ती मनांत हसते
मनात हसते उंच हवेली ,"[63]

विं.दा करंदीकर का जातक काव्य-संग्रह 1968 में प्रकाशित हुआ , इस काव्य-संग्रह में 1960 से 1965 तक की लिखी गई कविताएँ संकलित है। इस संग्रह में साम्यवाद से सम्बन्ध रखनेवाली कई कविताएँ दिखायी देती है। 'सुवर्णसुक्त'(1964) कविता महत्वपूर्ण है इस कविता में कवि ने पूंजीवादी पर्दे को फाड़ दिया है। कवि कहता है कि साम्यवाद में सारे वर्ण सुवर्णों में एकरूप हो जायेगें। -

"जेंव्हा ऋत्विजाचा उजवा हात सुवर्णासाठी पुढे होतो
तेव्हा यज्ञाची सुरूवात होते, आणि सांगता ही
सगळे वर्ण शेवटी सुवर्णात एक रूप होतील। "[64]

करंदीकर कहते हैं कि जब साम्यवाद का युग होगा उसमें सब शांती छाई हुई दिखेगी, वे साम्यवाद का तहे दिल से स्वागत करते हैं। साम्यवाद पर उनकी कितनी निष्ठा थी। यह उनके कुछ पंक्तियों से पता चलता है -

"अंगुलीत अनुशक्ति तर्जनीत यंत्रदळे
वैजयंति संस्कृतीची। भव्यकला कर्णफुले
आणिक तोंडात वेद। विजयोत्सुक क्रांतीचे।
डोक्यावर चिर-भूषण। साम्ययुगी शांतीचे ।।"[65]

---

[63] स्वेदगंगा-विंदा.करंदीकर पृ.42

[64] जातक-विंदा.करंदीकर पृ.123

[65] मृदगंध -विंदा.करंदीकर पृ.47

इस प्रकार 'स्वेदगंगा', 'मुंबई', 'समतेचे हे तुफान उठले', 'मानवानों आत यारे', 'मजूर', 'ती जनता अमर आहे' आदि कविताएँ मार्क्सवाद से नाता जोड़ती है।

मराठी काव्य संसार में गीत-काव्य एक महत्वपूर्ण प्रकार हैं , इसे भावगीत भी कहा जाता है। जब हम मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का विचार करते हैं। तब हमें शाहीर अमर शेख और लोक शाहीर अण्णाभाऊ साठे पर विचार करना अनिवार्य़ हो जाता है, क्योंकि वे दोनो पक्के मार्क्सवादी और कम्युनिस्ट पक्ष के सक्रिय सदस्य रह चुके हैं। ये दोनों गीत लिखते और गाते भी थे। गीतों की निर्मिती चिंतनशीलता से होती है। गिने-चुने शब्दों में अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने की क्षमता गीतकारों के पास रहनी आवश्यक है, साथ ही सीधे और सरल भाषा का प्रयोग करना ताकि सामान्य जनता आसानी से समझ सके । यह क्षमता और प्रतिभा शाहीर अमर शेख और शाहीर अण्णाभाऊ साठे में मौजूद थी।

अमर शेख की गीत रचना 1930 से जनता के सामने आयी है । उनका 'अमरगीत' (गीतसंग्रह) 'कलश' और 'धरती माता' (काव्य संग्रह) बहुत ही प्रसिध्द हूए है । अमर शेख समाजवाद को अपना समकालीन युग धर्म मान कर चलते थे । पूंजीवाद, सामंतवाद, साहूकार शाही, दलाल आदि के प्रति द्वेष, क्रोध इनके काव्य में दिखायी देता है। 'ब्रह्म', 'विष्णू', 'महेश' कविता में कविने किसान को रूद्र का अवतार बताकर किसान की तुलना भगवान विष्णू से करते हैं। अमर शेख जमीदारों से जमीन छीनने की और आराम से बैठे-बैठे खानेवाले शोषक को दफनाने की बात करते हैं -

"उघड नेत्र तो तिसरा भयंकर लालेलाल अंगार
ऐतखाउंचे कर निर्दालन होई रूद्र अवतार"[66]

शोषनमुक्त समाज निर्मित एवं वर्ग संघर्ष करने के लिए कवि निम्न वर्ग को आहवान करता है । किसानों और मजदूरों को एक होकर, हाथ में मशाल लेकर रक्त का गुलाल उडाने के लिए कहता है -

"शेतक़ऱ्यांनो या रे, घ्या एकीची हाती मशाल
कामगार या सारे, उधळा वरती रक्तगुलाल ।।"[67]

---

[66] शाहीर अमर शेख यांचे पोवाडे, लोकगीते व कविता – डॉ. अजीज नदाफ पृ.35

[67] शाहीर अमर शेख यांचे पोवाडे, लोकगीते व कविता – डॉ. अजीज नदाफ पृ.31

कवि सीर्फ किसानों और मजदूरों को ही लढ़ने के लिए नहीं कह रहा है बल्कि जितने भी इस संसार में शोषित है उन सब श्रमजीवियों को एक होकर लड़ने की और विजय पाने की बात करता है -

"जगामधील पिळले जानारे, सर्व साथिला घेऊ या रे
शक्ति आघाडीवर लढणाऱ्या , हाक तयांना देऊ एकीची
मानुसकीने जगण्यासाठी लढून विजयी व्हा रे ।।"[68]

अमरशेख इस व्यवस्था में परिवर्तन नहीं चाहते बल्कि पूरी व्यवस्था को ही बदल देना चाहते हैं । इस व्यवस्था रूपी ईमारत को गिराने के लिए सब को इकट्ठा होने के लिए संदेश देते हैं । वे कहते है कि यह इमारत बहुत पूरानी हो चुकी है इसे धक्का मार कर गिरा दो-

"जुनाट इमला झाला सारा पाडून टाका
देउनि धक्का
- - - - - - - -
मारा हाका जमवा लोका
लोक शक्तिचा साधुनी मोका
पाडून टाका"[69]

इससे पहले मराठी गीतों और पोवाडों में मार्क्सवादी तत्व कहीं भी दिखायी नहीं देते थे, इसकी शुरूआत अमर शेख ने की है । इन्होंने पोवाडा, भजन, आदि के माध्यम से अपने मार्क्सवादी विचोरों को हजारों लोगों तक गाकर पहुँचाया है । अमर शेख आशावादी है तभी तो 'मालन कामानं सुकली' कविता में लिखते है - सब मिल जुल कर क्रांति के गीत गायेंगे और सुख का झंडा फहरायेंगे । जो कली सुख गयी थी अब वह खिलेगी -

"चल मिळून मैदानी जाऊ ये
झेंडा सुखाचा मैदानी पाहु ये
गाणि मिळून क्रांतिची गाऊ ये
आली ज्वानी हसत ही आपली ग

---

[68] शाहीर अमर शेख यांचे पोवाडे, लोकगीते व कविता – डॉ. अजीज नदाफ पृ.31

[69] शाहीर अमर शेख यांचे पोवाडे, लोकगीते व कविता – डॉ. अजीज नदाफ पृ.32

आणि खुलली कळी बघ सुकली ।"[70]

इस प्रकार शाहीर अमरशेख कविता, गीत लिखने के बाद उसे लोगों तक पहुँचाते थे । वे अजन्म कम्युनिस्ट पक्ष के सक्रिय सदस्य थे और उन्होंने मार्क्सवादी विचारों का प्रचार-प्रसार गीत, काव्य और पोवाडा के माध्यम से किया है । मराठी काव्य में वे एक सशक्त मार्क्सवादी कवि के रूप में उभर कर सामने आते हैं ।

गीत काव्य की रचना करनेवाले दूसरे और महत्वपूर्ण कवि लोकशाहीर अण्णाभाऊ साठे है, जिन पर न सीर्फ मार्क्सवादी विचारों का प्रभाव था बल्कि वे कम्युनिस्ट पार्टी के अजन्म सदस्य थे । उन्होंने कुछ गीत मार्क्सवादी विचारों के प्रचार और प्रसार के लिए लिखे गये हैं । साठे जी ने ई. स. 1946 से कम्युनिस्ट पक्ष के प्रचार के लिए प्रत्यक्ष रूप से कार्य किया है । उनका शाहीर नाम से एक पोवाडा-संग्रह उपलब्ध होता है किंतु उसमें इ.स. वर्ष का पता नहीं है । इस काव्य-संग्रह की भूमिका में डांगे ने लिखा है और अंत में 16. 4.1952 लिखा हुआ है । इसी को सब इस सग्रह का प्रकाशन वर्ष समझ रहे हैं ।

इनके काव्य में शोषितों के प्रति सहानुभूति और विषमता के प्रति द्वेश दिखायी देता है । इनके काव्य में धार्मिक दंगा, मनुष्य का शोषण, निजामी राज्य हुकूमत के विरोध में संग्राम, दूसरे युध्द में रूस का गुनगान, मुंबई के मील-मजदूरों के हड़ताल आदि का चित्रण दिखायी देता है । अण्णाभाऊ साठे उन श्रमिकों को प्रणाम करते है जिनमें पूरे पृथ्वी को हिलाने की ताकत है । उन श्रमिकों को प्रणाम करते हैं जिनमें ब्रह्मांड का सीना तोड कर और समय की हड्डियों को तोड आकाश को भी झुकाने की क्षमता है -

"प्रारंभी मी आजला । कर ज्याचा येथे पूजिला ।
जो व्यापुनि संसाराला । हलवी या भूगोला ।।
ज्याला जगी तुलना नाही । अंत पातळाचा घेई ।
उर ब्रम्हांडाचे फोडी । काळाचे हाडे मोडी ।
आकाश खाली ओढी । तो मी आज वंदिला ।।"[71]

इसी काव्य-संग्रह में 'मुंबईचा गिरणी कामगार' यह पोवाडा मुंबापुरी के जाग्रत मजदूरों पर लिखी गयी हैं, यह वह समय था जब बाल गंगाधर तिलक को ब्रिटिश हुकूमत ने

---

[70] कलश-अमर शेख पृ.87

[71] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या- लोकवाङमय गृह पृ.28

कैद खाने में बंद किया था । यह वही समय है जब रूस में लेनिन के नेतृत्व में क्रांति सफल बनी थी, कवि ने इसका चित्रण कविता के आरंभ में ही किया है । किस तरह यहाँ के मजदूर छह महिनों तक हड़ताल करते है और अंत में इन पर गोलियाँ चलायी जाती है आदि का चित्रण उन्होंने किया है -

"मुंबईत संप जाहला । आणि वणव्यासम पसरला ।।
तो चौऱ्यांशी गिरणीला । ग्रासून मोकळा झाला ।।
कामगार एक जाहला । सहा महिने संप लढवीला ।।
चेव आला सरकारला । दडपण्या कामगाराला ।।
शस्त्रांचा खच लागला । ठायी ठायी राजरस्त्याला ।।"[72]

इसी कविता में आगे साठे ने मजदूर आंदोलन का पूरा इतिहास ही बता दिया है। मजदूर किस तरह से बोनस की माँग को लेकर हड़ताल करते है, किस तरह से मील को बंद रखा जाता है और मजदूरों पर गोलियाँ बरसायी जाती है इसका चित्रण इस कविता में किया है । इस हड़ताल में गणपत पानसरे, महादेव कुंभार, कृष्णा कदम, शिवचरण सुचित, तुकाराम, रघुनाथ, शंकर, दांबे आदि लोगों ने किस तरह से अपनी कुर्बानी देकर वीर हुए है इसका चित्रण भी इस लम्बी कविता में साठे ने बड़ी मार्मिकता से की है -

"कडाडाडा गोळी गर्जली । भेदूनी उर पुढ गेली ।।
सावरोनी ध्वजा आपली । मित्राच्या केली हवाली ।।
जाधव बैसले खाली । मृत्युने झेप घेतली ।।
जीवन ज्योत निमाली । त्या लाला ध्वजेच्या खाली ।।"[73]

इस लम्बी कविता में साठे ने हर संदर्भ का उल्लेख तिथि के साथ किया है जो घटना घटित हुई थी । इस कविता के अंत में कवि पूरे श्रमिकों को एक होकर लड़ने के लिए आह्वान करता है । कवि कहता है कि हे श्रमिक तुझमें इतनी शक्ति है कि यह पुरी मुंबई तेरे हाथ के तलवे पर खड़ी है । तेरे हाथ पौलादी है , यह सब लोग जो सुख भोग रहें हैं वह तेरे ही हाथों के कारण । अंतिम पंक्ति में कवि श्रमिकों को जागने और अपना भविष्य उज्ज्वल बनाने के लिए कहता है -

---

[72] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या- लोकवाङ्मय गृह पृ.13

[73] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या- लोकवाङ्मय गृह पृ.14

"वा कामगार तुझठायी अपार शक्ति । ही नांदे मुंबई तव तळहातावरती ।
ते हात पोलादी सर्व सुखे निर्मिती । परि तुला जगण्याची भ्रांती ।
बेकारी येत तुझवरती । म्हणे अण्णा साठे शाहीर ।
उठुनी सत्वर । उज्जवल राख आपुली कीर्ती ।।"[74]

मुंबईची लावणी कविता में साठे ने विषमता का चित्रण किया है । इस कविता में कुबेर अमीर किस तरह से सुख भोग रहे हैं और दूसरी ओर श्रमिक जो मिलता वही खाकर अपना पसिना बहा रहे है इसका चित्रण साठे ने अपनी कविता में किया है -

"मुंबईत उंचावरी । मलबार हिल इंद्रपुरी ।
कुबेरांची वस्ती तिथं सुख भोगती ।।
परळत राहणोर । रात दिवस राबनारे
मिळेल ते खाऊनी घाम गाळती।।"[75]

इस कविता के अंत में कवि लाल झेंडा लेकर क्रांति करने के लिए कहता है । कवि का मानना है कि बिना क्रांति के तो न्याय असंभव है इसके लिए एक मात्र उपाय क्रांति है । क्रांति से ही जीवन बदलेगा अन्यथा इसी अन्याय को सहते रहना पडेगा । -

"लाल झेंडा घेऊनी हाती । करायला इथे क्रांति ।
मजुरांची पिढी नवी पाऊल टाकती ।।
अण्णा भाऊ साठे म्हणे । बदलुनी हे दुबळे जिणे ।
होणार जे विजयी ते रण करती ।।"[76]

'शाहीर' काव्य-संग्रह में हर पोवाडा जीवन के हर क्षेत्र में साम्यवाद और साम्यवाद की भूमिका का विश्लेषण करनेवाला वैचारिक पद्य है । केवल यह पद्य ही नहीं बल्की अण्णाभाऊ साठे जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति के द्वारा उसे काव्य रूप देणे का प्रयास भी है। अण्णाभाऊ साठे ने अपनी कविता का विषय मुंबई का जीवन चुना है किंतु आह्वान पूरे शोषितों के लिए किया है । इनके कविता की आह्वान क्षमता बेजोड है । श्रमिकों को भड़का कर उन्हें क्रांति के लिए जागृत करने का कर्तव्य उन्होंने पूरा किया है ।

---

[74] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या- लोकवाङ्मय गृह पृ.17

[75] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या- लोकवाङ्मय गृह पृ.26

[76] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या- लोकवाङ्मय गृह पृ.27

अण्णा भाऊ साठे के बाद हमें मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना वंसत बापट की कविता में देखने को मिलती है । इनका 'बिजली' काव्य-संग्रह इ.स. 1952 में प्रकाशित हुआ है । इसके बाद 'सेतु' इ.स. 1957 और 'अकरावी दिशा' इ. स. 1962 में प्रकाशित हुआ है । इन दो काव्य-संग्रह की तुलना में 'बिजली' काव्य-संग्रह पर मार्क्सवाद का अधिक प्रभाव दिखायी देता है । इस काव्य-संग्रह में कूल 46 कविताएँ है जिनमें 'बिजली', 'देशाची हाक', 'स्वातंत्र्य कुठे स्वातंत्र्य', 'दिवाळी', 'तुला नव्या जगाची आठवण' यह पाँच कविताएँ मार्क्सवादी विचारधारा का प्रचार करनेवाली है ।

इ.स. 1960 के आस पास श्री नारायम सुर्वे की कविताएँ साम्यवाद का प्रकाश लेकर आ रही थी और व्यक्तिवाद का अंधकार धीरे-धीरे हटता जा रहा था । सुर्वे को एक मजदूर ने पाल-पोस कर बड़ा किया है । एक समय वे भी एक मजदूर थे, इसलिए वे मजदूर जीवन को उन्होंने बहुत करीब से जाना और अनुभव किया है । शोषण से ग्रस्त मनुष्य सुर्वे जी के कविता का केंद्र है । उनका पहला काव्य-संग्रह 1962 में 'ऐसा गा मी ब्रम्हा' प्रकाशित हुआ है । इस संग्रह में 'चार शब्द' यह पहली कविता है जो सुर्वे की मार्क्सवादीता को स्पष्ट कर देती है । इस कविता से लगता है कि साम्यवाद का सामर्थ्य गर्जता हुआ आ रहा है । कवि इस कविता में कहता है कि रोजी-रोटी का सवाल हर रोज का है कभी फाटक के बाहर तो कभी अंदर है, लेकिन है जरूर । कवि शोषक वर्ग को चेतावनी भी देता है कि मैं सीर्फ मजदूर ही नहीं हूँ बल्कि तेज़ धार-धार पनपनेवाला तलवार भी हूँ । अब मै थोडासा गुन्हा भी करने जा रहा हूँ -

"रोजीचा रोटीचा सवाल रोजचाच आहे
कधी फाटका बाहेर कधी फाटका आत आहे
कामगार आहे तळपती तलवार आहे
सारस्वतांनों । थोडासा गुन्हा करणार आहे"[77]

इस प्रकार आत्माविश्वास के साथ अपना परिचय वे मराठी कविता में देते हैं । कवि मजदूरों के जीवन में पल कर बड़ा होने के कारण उन्हें इसी जीवन से लिखने की स्फूर्ती

[77] निवडक नारायण सुर्वे- कुसुमाग्रज पृ.1

मिली है । सुर्वे के कविताओं में जो विश्व है वह मजदूरों का, उपेक्षितों का, भूके लोगों का, शोषितों के दु :खों का और यातनाओं का है, किंतु यह असहाय न होकर संघर्ष करनेवाला है ।

कवि अंत तक हताश और निराश नहीं होता क्योंकि उसे आनेवाले कल पर विश्वास है । शोषित उपेक्षितों के दरवाजे पर खजाने से भरा रथ लेकर आने का, विश्वास और स्वप्न इनकी कविता में दिखाई देता है । कवि 'चार शब्द' कविता में आगे कहता है रोटी तो चाहिए ही किंतु इसके अलावा और भी कुछ चाहिए, और इसके लिए मेरी दुनिया राजमुद्रा तयार कर रही है । मै शब्दों के हाथ में फूलों को भी सोंप रहा हूँ और खड्गों को भी । साम्यवादी समाजरचना का निर्माण तभी होगा जब श्रमिकों को हाथ में प्रभुसत्ता आयेगी इस तरह की आशा कवि करता है -

"रोटी प्यारी खरी आणखी काही हवे आहे

याचसाठी माझे जग राजमुद्रा घडवीत आहे

इथूनच शब्दांच्या हाती फूले ठेवीत आहे

इथूनच शब्दांच्या हाती खड़गे मी देत आहे ।"[78]

इसी संग्रह में 'येता का सांगती' कविता में कवि ने श्रमिक वर्ग का बेहद दरिद्र्य़ का चित्रण किया है । दरिद्र्य़ता की धूप ऐसी है जैसे चैत्र मास की धूप, ऐसे धूप में काम करनेवाले श्रमिक किस तरह से वे दास बन गये और किस तरह खुद को कर्पूर की तरह जलाकर दूसरों के भविष्य का निर्माण कर रहे हैं , इसका चित्रण उन्होंने किया है -

"दारिद्र्याचे उन । जैसा चैत्रमास ।।

झालो आम्ही दास । अगतीक ।।

कर्पूरा समान मी । जाळतो आयुष्य ।

निर्मितो भविष्य । दुज्यासाठी ।।"[79]

कवि आगे कहता है कि ह्रदय में पूनम का चाँद है किंतु हमारा जीवन अमावस की रात हो गया है । कवि कहता है इस अमावस की अंधेरे को दूर करने के लिए प्रकाश की ज्योत हाथ में लिए क्या मेरे साथ आएगें? यहाँ ज्योत से तात्पर्य साम्यवाद है -

---

[78] निवडक नारायण सुर्वे- कुसुमाग्रज पृ.1

[79] निवडक नारायण सुर्वे- कुसुमाग्रज पृ.7

"चाललो पुढेच । येता का सांगती

तेजाची दिवटी । धरोनिया ।।"[80]

क्रांतिकारी लोगों को बंदी बनाया गया तब सत्ताधारी कह रहे थे कि साले लेनिनवाले दिखते है, तब कवि कहता है कि कम-से-कम इन राक्षसों ने अब तो पहचान लिया है । लेनिन ने कहा था कि अब श्रमिक वर्ग जाग गया है, यही लोग इस पृथ्वी का रूप ही बदल देंगे । कवि को इस बात की खेद है कि हम अब तक यह काम पूरा नहीं कर पाए , इसलिए वह कहता है मैने अब तक तुम पर कुछ लिखा नहीं है -

"हे आता जागे झालेत

रूपच बदलणार आहेत पृथ्वीचे तू लिहिलेस

अजून शब्द आम्ही पुरा करू शकलो नाही

अजून तुझ्यावर मी काही लिहू धजलो नाही ।"[81]

सुर्वे का दूसरा महत्वपूर्ण काव्य-संग्रह ' माझे विद्दापीठ ' इ.स. 1966 में प्रकाशित हुआ । इस संग्रह में 'माझे विद्यापीठ' यह कविता साम्यवाद का सौंदर्यपूर्ण अविष्कार है । इस कविता के माध्यम से हम अनाथ नारायण सुर्वे के जीवन को जान सकते हैं । इसी संग्रह में 'कर्नपुत्र', 'मुबंई', 'लालबाग', 'पोस्टर' आदि कविताएँ साम्यवाद से गहरा नाता जोड़ती है । देश को आजादी मिलने के बाद भी पूंजीवादी प्रजातंत्र ने निम्ऩ वर्ग को दरिद्र्य़ के अलावा दिया ही क्या है, जो लोग रात-दिन दूसरों के लिए काम करते है, जो मुंबई के शिल्पकार है वे नरक समान गल्ली और घरों में अपना जीवन गुजार रहे हैं । इस सडे हुए संस्कृति ने उन्हे नरक के अलावा कुछ नहीं दिया है । श्रमिक श्रम करते-करते अपनी जिंदगी किस प्रकार मोमबत्ती के समान बुझा ले रहा है इसका चित्रण वे 'मुंबई' कविता में करते हैं -

"असे आम्ही लक्षावधी नारीनर दिवस असे ते वावरतो

राबता, खपता आयुष्य मेनबत्तीसम विझवुन घेतो ।"[82]

श्रमिक वर्ग किस तरह से अपना जीवन कर्ज के बोझ में बिताता है और अंत में भी कफन खरीदने के लिए कर्ज लेना पडता है इसका मार्मिक चित्रण कवि ने अपनी 'कर्जपुत्र'

---

[80] निवडक नारायण सुर्वे- कुसुमाग्रज पृ.7

[81] नव्या मानसाचे आगमन- नारायण सुर्वे- पृ.63

[82] माझे विद्यापीठ – नारायण सुर्वे ,पृ.35

इस कविता में किया है। वह मरणे के उपरांत उसके नाम का कुछ भी नहीं बचता सिवाय कर्ज के। उसके पिंड को कौवा तक नहीं छूता -

"वर्गणीच्या ताटीवरच गुंडाळून गेलो
पुढे आकोशती टाळ मागे आम्ही कर्जपूत्र
पुरे पुरून उरले कर्ज देने पुण्यवंत
कळो आले तेराव्यात पिंडा शिवला न काक... ।"[83]

सुर्वे की 'कार्लमार्क्स' यह महत्वपूर्ण कविता 'युगांतर' साप्ताहिक में 16-09-1968 के अंक में छपी थी। इस कविता में हम कवि के प्रतिभाशाली सामर्थ्य को देख सकते हैं। इस कविता में कवि सवाल करता है कि इस मंदी का कारण क्या है? इस दारिद्र्यता का गोत्र क्या है ? तब मार्क्स सामने आकर कहने लगता है कि मैं बताता हूँ और वह बोलता ही जाता है। यह कविता संवादात्मक शैली में लिखी गयी है -

"पुढे एका सभेत मी बोलत होतो
तर या मंदीचे कारण काय ?
दारिद्रयाचे गोत्र काय ?
पुन्हा मार्क्स पुढे आला, मी सांगतो म्हणाला
आणि घडाघडा बोलतच गेला "[84]

इस कविता के माध्यम से कवि यह दर्शाना चाहता है कि इन सारे प्रश्नों के जवाब मार्क्सवाद में हैं। इनके कविताओं के अध्ययन के पश्चात यह प्रतीत होता है कि सुर्वे मराठी साहित्य में सबसे सशक्त कवि के रूप में प्रकट होते हैं।

जिस वर्ष सुर्वेजी का 'माझे विद्यापीठ' काव्य-संग्रह प्रखाशित हुआ उसी वर्ष राँक काँव्हालो का कविता संग्रह 'शांभवी' 1966 इ.स. में प्रकाशित हुआ है। यह कविता संग्रह मार्क्सवादी चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस संग्रह के माध्यम से और एक मार्क्सवादी कवि सामने आया है। इस काव्य-संग्रह की कविताएँ मुख्यत 1946 से 1952 इस कालखंड में लिखी गयी है। कविने अपनी कविता में सामाजिक विषमता का चित्रण प्रखर रूप से किया है। काँव्हालो कहते हैं कि जो धनसंपत्ति इन पूंजीपतियों के पास है यह उनकी नहीं हैं, क्योंकि

---

[83] माझे विद्यापीठ –नारायण सुर्वे ,पृ.52.

[84] जाहीरनामा – ना.सुर्वे पृ.34

वह हमारे खून के कण-कण से बना हुआ है । इनके पास जो वैभव दिखायी देता है वह हमारे त्याग पर खडा है -

"धन संपत्ती नव्हेच यांची
अमुच्या रक्ताचा तो कणकण
यांचे वैभव नव्हेच यांचे
अमुच्या त्यागाची ती उभवण"[85]

कॉंव्हॉलो की कविता सीर्फ सामाजिक विषमता का ही चित्रण नहीं करती बल्कि क्रांति के माध्यम से निम्न वर्ग को न्याय दिलाने की बात भी करती है । कवि कहता है कि बिना क्रांति के हम इस परिस्थिति को बदल नहीं सकते इसलिए कवि क्रांति करने के लिए आह्वान करता है । इनकी कविताओं में बदले की भावना भी दिखायी देती है । श्रमिक खून पसीना एक कर फसल उगाते हैं तो चोर आकर लूट लेते हैं परिणामत : जो उपजाता है वही खाने को मोहताज बनता है । कवि कहता है कि जिन्होंने हमें लूटा है उन्हें लूटे बगैर कैसे शांत रह सकते हैं -

"घाम पेरूनी जे उगविले
चोरांनी ते लुटले
एकवेळ भूख हराया
चार न दाने उरले
लुटणार्यांना लुटल्यावाचून
कसे रहावे शांत"[86]

कॉंव्हॉलो की कविताओं को हम दो भागों में बांट सकते है - एक मार्क्सवादी प्रभाव से लिखि कविता और दूसरी प्रेम कविता । इनकी मार्क्सवादी प्रभाव से लिखी कविताओं में शोषणामुक्त समाज की स्थापना के लिए आकांक्षा है, इस प्रयास में कोई शत्रु बाधा डालता है तो उसे काट देने की बात करते है। कॉंव्हॉलो की 'कठीन्य हवे', 'जन्म नव्याने घेई ख्रिसता', 'झडेल', 'नौबत', 'इशारा', 'येणारच जर', 'तारा' 'थबकला आहे', 'याचक' आदि कविताओं में साम्यवाद अविष्कृत होता है ।

---

[85] मराठी कविता : परंपरा आणि दर्शन पृ.155

[86] मराठी कविता : परंपरा आणि दर्शन पृ.155-156

इसके अलावा और भी कवियों के कविताओं में मार्क्सवादी चेतना दिखायी देती है किंतु सबका विश्लेषण करना यहाँ संभव नहीं होगा, उन्हें संक्षिप्त रूप में समझ सकते हैं। मार्क्सवादी कवि के रूप में बाबा आमटे, शिवराम देवलकर, वामन इंगळे, सुरेश नर्गेसकर, प्रसाद सावंत, राजा-रजवाडे इनके नाम भी गिनाये जाते हैं। शिवराम देवलकर की कविताओं में झुग्गी-झोपडियों में रहनेवालो का चित्रण मिलता है। वामन इंगळे की कविता में पूंजीपति के विरोध में संघर्ष दिखायी देता है। सुरेश नर्गेसकर ने अपनी कविता में मार्क्स और लेनिन पर जो निष्ठा थी उसे उजागर किया है। इन सब की एक ही आशा है कि श्रमिक के ताकत से, आंसू और जखमों से नया जीवन ज़रूर खिलेगा।

निष्कर्ष -

हिंदी और मराठी में सन् 1918 के बाद की राजनीतिक परिस्थितियाँ अपने अंचल में मार्क्सवाद नाम के जिस नवीन जीवन-दर्शन को लेकर आई थी उसने राजनीतिक सीमाओं से आगे बढ़कर धीरे-धीरे साहित्यिक क्षेत्र में भी प्रवेश करना आरंभ किया । हिंदी और मराठी के कविताओं से यह प्रतीत होता है कि मार्क्सवादी चेतना रूसी क्रांति के प्रभाव स्वरूप ही आयी है । हिंदी और मराठी कविता मार्क्सवादी चेतना की गहराई स्वातंत्र्योत्तर काल की अपेक्षा स्वातंत्र्यपूर्व काल में हिंदी में सनेही मंडल के कवियों की तरह सशक्त मार्क्सवादी चेतना से युक्त कविताओं का अभाव मराठी में दिखायी देता है । गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' जैसे को पक्के मार्क्सवादी कवि मराठी में उभरकर सामने नहीं आए । इसका मतलब यह नहीं की मराठी में बिलकुल नहीं लिखा गया । मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना की सही शुरुआत स्वातंत्र्योत्तर काल में ही हुई है ।

प्रगतिवाद छायावाद के समानांतर चलनेवाली धारा है, क्योंकि छायावाद का आरंभ सन् 1918 से माना जाता है और 1918 से कई मात्रा में प्रगतिवादी कविताएँ भी लिखी जा रही थी । हिंदी और मराठी कविता में व्यक्तिगत, प्रकृतिपरक, प्रेमपरक कविताएँ लिखनेवाले कवि छायावाद के उत्तरार्ध में आते-आते उन पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव दिखायी देता है । किसी युग की समाप्ती एवं नए युग के आगमन की भूमिका निश्चित अवधि के पूर्व होती है । वैसे ही प्रगतिवाद का भी हुआ ।

हिंदा में सन् 1930 के आस-पास छायावाद के गर्भ से जिस नवीन सामाजिक चेतना युक्त साहित्यधारा का जन्म हुआ उसे सन् 1936 में प्रगतिवादी या प्रगतिशील साहित्य के नाम से पुकारा गया । विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, जनवाद आदि नाम से जो धाराएँ चली वैसी मराठी साहित्य में इन नामों से कोई धारा नहीं दिखायी देती किंतु वह प्रवृत्तियाँ उस समय की कविताओं के युग में पायी जाती है । हिंदी कविता के आधुनिक काल में प्रगतिवाद के युग में कविता और राजनीति की सीधी घनिष्ठता हुई, इसके विपरीत मराठी कवियों ने प्रगतिवाद को राजनीति से नहीं जोडा ।

हिंदी कविता में मार्क्सवादी चेतना सुर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', 'सुमित्रानंदन पंत', शिवमंगल 'सुमन', 'केदारनाथ अग्रवाल', 'डॉ. रामविलास शर्मा', रामधारी सिंह

'दिनकर', 'दुष्यंतकुमार', 'मुक्तिबोध', 'त्रिलोचन', 'गिरिजाकुमार माथुर, गोपाल सक्सेना 'नीरज', 'नागार्जुन', 'धूमिल' आदि की कविताओं में कम आधिक मात्रा में दिखायी देती हैं।

मराठी में मार्क्सवादी चेतना को पुष्ट करने में आत्माराम रावजी देशपांडे 'अनिल', अनंत काणेकर, विष्णु वामन शिरवाडकर 'कुसुमाग्रज', बाळ सीताराम मर्ढेकर, रावजी देशपांडे, विंदा करंदीकर, अमर शेख, अण्णाभाऊ साठे, वसंत बापट, वसंत वैद्य और नारायण सुर्वे आदि की कविताओं ने विशेष योगदान दिया है।

स्वातंत्र्योत्तर काल की हिंदी कविता में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर, त्रिलोचन, मुक्तिबोध ने तो मराठी कविता में शरतचंद्र मुक्तिबोध, अमर शेख, अण्णाभाऊ साठे, नारायण सुर्वे आदि कवियों ने अत्यंत प्रखरता से मार्क्सवादी कविता को आगे बढाने का काम किया है। इन लोगों ने मार्क्सवाद को न सिर्फ जीवन दर्शन माना बल्कि इसे अपने अंदर पचाया भी है।

द्वितीय अध्याय

हिन्दी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना

चेतना से तात्पर्य - चेतना सजीवों में रहनेवाला वह तत्व है, जो उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनाता है। चेतना मनुष्य की जीवन क्रियाओं को चलाने वाला तत्त्व है। चेतना स्वयं को और अपने आसपास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है। विज्ञान के अनुसार चेतना इकट्ठा अनुभूति है, जो मस्तिष्क में पहुँचाने वाली अभिगामी आवेगों से उत्पन्न होती है। 'चेतना' शब्द बडा व्यापक है। उसे 'बोध' या 'चैत्य' के समानार्थक शब्द के रूप में भी ग्रहण किया जा सकता है। चेतना मनुष्य की वह विशेषता है जो उसे जीवित रखती है और उसे व्यक्तिगत विषयों में तथा अपने वातावरण के विषय में व्यक्त करती है। मनुष्य चेतनायुक्त प्राणी है। चेतना मनुष्य को जीवि बनाती है। सचेत मनुष्य कोई भी क्रिया करने से पहले उसके परिणाम के बारे में सोचता है।

मार्क्सवादी चेतना के आधार बिंदु

मार्क्सवाद मूलत: कार्ल मार्क्स की विचारधारा है। सुविधा की दृष्टि से इसे तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

1. द्वंद्वात्मक भौतिक विकासवाद
2. मूल्य वृद्धि का सिद्धांत
3. सभ्यता के विकास की यात्रा

1. द्वंद्वात्मक भौतिक विकासवाद

मार्क्स के मतानुसार जगत् की उत्पत्ति तथा उसका विकास भौतिक शक्तियों के द्वंद्व से होता है। दो शक्तियों के संघर्ष से तीसरी शक्ति का उदय होता है। यह क्रम दिन-ब-दिन विकसित होता है। मार्क्स उत्पत्ति के पीछे अध्यात्मिक शक्तियों को अस्वीकार करते हैं। वे सृष्टि की उत्पत्ति नहीं उसका उत्तरोत्तर विकास हुआ है, ऐसा मानते हैं। मार्क्स आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक आदि को नहीं मानते वे द्वंद्वात्मक भौतिक विकास को महत्व देते हैं।

2. मूल्य पद्धति का सिद्धांत

मार्क्स किसी वस्तु के वृद्धि के लिए मूल पदार्थ, स्थूल साधन, श्रमिक का श्रम, और मूल्य वृद्धि मानते है । इस प्रक्रिया में पूँजीपति द्वारा मूल पदार्थ और मशिनें जुटाई जाती है । सामाजिक आवश्यकता के अनुसार श्रमिक वर्ग उत्पादन करता है परंतु पूँजीपति श्रमिक के श्रम और स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रखते केवल खुद का लाभ देखकर तिजोरियाँ भरने का काम करते है । लाभ की दिशा में श्रमिक और पूँजीपति में बँटवारा न होने के कारण द्वंद्व बढ़ता है । आज 21 वीं सदी के पहले दशक में मानवता का यह शोषण एक अभिषाप बन बैठा है मार्क्स के अनुसार किसान और मज़दूर शोषित है । मालिक और जमींदार शोषक है ।

3. मूल सभ्यता की विकास यात्रा

समस्त विश्व मानव को कार्ल मार्क्स ने दो भागों में बाँटा है । एक शोषक दूसरा शोषित वर्ग । वर्ण, जाति, धर्म, देश, संप्रदाय से उत्पन्न भेद को मार्क्स नहीं मानते । उन्होंने विश्व मानवता के इतिहास को चार भागों में विभाजित किया है ।

1. दास प्रथा युग 2. सामंती प्रथा युग 3. पूँजी व्यवस्था का युग 4. साम्यवादी व्यवस्था का युग ।

हिंदी और मराठी कवियों के काव्य में ये सभी सिद्धांत हमें देखने को मिलते हैं । वे मालिकों और जमींदारों को शोषक तथा किसान एवं मजदुरों को शोषित मानकर इस समस्या को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से हल करना चाहते है । वे वर्ग-संघर्ष से अचेत पडे हुए मजदूरों में चेतना भरना चाहते हैं । दास प्रथा को समाप्त कर पूँजीवादी व्यवस्था तथा सामंतशाही की बेड़ियाँ काटना चाहते है । हिंदी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना को हम निम्न मुद्दों के सहारे देख सकते हैं ।

2.1 ईश्वर और धर्म के प्रति मार्क्सवादी दृष्टिकोण

मार्क्स का दृष्टिकोण ऐतिहासिक भौतिकवाद विश्व दृष्टिकोण है। इसका मतलब यह कि अचेतन भौतिक पदार्थ, जो निरंतर गतिशील रहता है, विश्व के विकास का मूल स्त्रोत है। ईश्वर या विचार अथवा किसी चेतना ने जगत और मनुष्य को नहीं गढ़ा है। पदार्थ विरोधी तत्वों की एकता और संघर्षों से विकसित होता है, यह विकास निम्न से उच्चतर और सरल से जटिल स्थितियों की ओर है। हीगेल के अधिकार-सम्बन्धी दर्शन की आलोचना करते हुए मार्क्स ने जो लिखा है वह यहाँ उल्लेखनीय है, "अधार्मिक आलोचना का आधार यह है कि मनुष्य धर्म को बनाता है, धर्म मनुष्य को नहीं । दूसरे शब्दों में धर्म ऐसे मानव की आत्मचेतना

तथा आत्मानुभूति है जिसने या तो अभी तक अपना अता-पता नहीं पाया जाता है या जो उसे पाकर खो चुका है।"[87] साम्यवाद के धर्म संबधी दृष्टिकोण ने प्रगतिवादी साहित्यकारों को प्रेरित किया है । उनके मतानुसार ईश्वर वास्तव में पूंजीवादी व्यवस्था द्वारा पोषित एक आदिम कल्पना मात्र है । इसलिए उन्होंने इस संकल्पना का विरोध किया है । उनकी दृष्टि में ईश्वर और धर्म संबंधी प्रचलित मान्यताएँ वैष्यम्यपूर्ण समाज के स्थायित्व की साधक है । मार्क्सवाद धर्म और ईश्वर पर विश्वास नहीं करता, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद ही उसकी प्राणशक्ति है । मार्क्सवादी कवियों नें धर्म और ईश्वर को प्रगति विरोधी तत्वों के रूप में देखा है । इस संदर्भ में डॉ.रांघेय राघव का कथन है - "प्रगतिशील विचारक यही मानता है कि ईश्वर की आड में अर्थात ईश्वर के विभिन्न रूप गढ़कर जो मनुष्य ने विभिन्न सामाजिक प्रणालियों को शोषण भरा बनाकर न्याय कहा है, वह असत्य है । अत: ईश्वर के नाम पर जो ठगी चल रही है, वह बंद होनी चाहिए । प्रगतिशील विचारक किसी को ईश्वर की शक्ति में विश्वास करने से रोकता नहीं, वह स्वयं भी उसकी शक्ति को मान सकता है, परंतु वह शोषन के उस न्याय को नहीं मानता जो ईश्वर के नाम पर चालू रखा जा सकता है।"[88] यहाँ रांघेय राघव जी ने थोडी-बहुत गुंजाईश तो छोड़ी है किंतु अन्य मार्क्सवादी आलोचक ईश्वर और धर्म में विश्वास करने का विरोध करते है । सभी धर्मों में सामान्यत: यह विश्वास पाया जाता है कि ईश्वर या ऐसी ही कोई चेतना और सर्वशक्तिमान सत्ता संसार को जन्म देती है, उनका संचालन करती है । बुध्द ने स्वयं किसी ऐसी सत्ता को स्वीकार नहीं किया किंतु उनके अनुयायियों ने धीरे-धीरे बुद्ध को ही ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया।धर्म की दूसरी धारणा यह रही है कि इस जगत् से अलग और ऊपर एक अपार्थिव जगत् है । लौकिक जीवन बन्दी का जीवन है , इससे परे, स्वर्ग में या ईश्वर के साथ होने में मुक्ति है, यह तीसरी और सामान्य धारणा है । जनता धर्म को असहायता की इसी हालत में विश्वास इजात करती है मगर शोषक वर्ग इसका लाभ उठाने में जुटा रहता है। वह धर्म के नाम पर शोषण की क्रिया को उचित ठहराता है, प्रचार करता है कि उंच-नीच, शोषक और शोषित की खाई खुद ईश्वर ने बना रखी है। 'गीता' में कृष्ण का यह संदेश कि 'कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्' शोषक के शोषण का स्पष्ट संदेश है । बगैर श्रम फल की सोच किये कर्म करते जाने का विचार तभी उत्पन्न होता है, जब

---

[87] धर्म की मार्क्सवादी धारणा - गोरख पांडे, पृ.44

[88] आलोचना ,30 जुलै 1980 - संपा.- नामनर सिंह, पृ.32

कर्ता किसी दूसरे द्वार स्वार्थ-पूर्ति के लिए लगा दिया जाता है । कर्ता के पक्ष से यह क्रिया अमानवीय, निरुद्देश्य, अचिंतित क्रिया हो उठती है ।

भारत में शोषण का सनातन धर्म, जिसे कहा जाता है कि मनु ने प्रतिपादित किया, मनुस्मृति में चार वर्ग-वर्ण स्वार्थों के रूप में दिखाई पड़ते हैं । उदाहरण के लिए वर्ग वर्ण विभाजन इसलिए उचित ठहराया गया कि उसे ब्रह्मा ने अपने शरीर से (ब्राह्मण-मुख से, क्षत्रिय-बाहों से, वैश्य-जाघों से और शूद्र पैरों से) निर्मित किये । ब्राम्हण पठन-पाठन के सिवाय दूसरा काम नहीं करता मगर दूसरों के श्रम से उत्पन्न अन्न,वस्त्र आदि का उपयोग करने का उसे पूरा अधिकार है । क्योंकि शूद्रों का धन हरण करना उसका अधिकार है । इस प्रकार पूंजीवादी कल्पना से निर्मित ईश्वर और धर्म का मार्क्सवादी कवियों ने भी अपनी कविता में इसे प्रगति विरोधी तत्वों के रूप में देखा है ।

मध्यकाल में कबीरदास ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने धार्मिक ग्रंथ और धर्म के बुराईयों पर सीधे-सीधे बेहीचक प्रहार किया है, तो आधुनिक काल में बाबा नागार्जुन ने। पूंजीपति वर्ग निम्न वर्ग को ईश्वर भक्ति के जाल में फंसाकर किस तरह उनका शोषन करता है और उनकी खुद की रक्षा के लिए धर्मग्रंथों को ढाल बनाता है जो उनके हित में लिखी गई है इसका चित्रण नागार्जुन ने अपनी कविता में किया है ।

"छील रहे गीता की खाल
उपनिषदें हैं इनकी ढाल
उधर सजे मोती के थाल
इधर जमे सतजूगी दलाल
मत पुछों तुम इनका हाल
सर्वोदय के नटवरलाल"[89]

नागार्जुन ईश्वर को मानते हैं किंतु उस ईश्वर को नही जिसे पूरा विश्व मानता है। नागार्जुन उत्पादक को, श्रमिक को ही ईश्वर मानते हैं जिसने अपने श्रम से विश्व को बनाया उसी को वे प्रणाम करते हैं

"जल-थल-नभ तेरे सुखधाम / तू उत्पादक तत्व ललाम / तू ही दक्षिण तू ही वाम / कर्म-मर्म तू तू निष्काम / महानगर तू तू लघुग्राम / तू विराट तू अणु-आयाम / क्यों न करू मै

[89] तुमने कहा था - नागार्जुन पृ.18

तुझे प्रणाम / क्यों न जपूँ मैं तेरे नाम / मेरी सीता मेरे राम / मेरी राधा मेरे श्याम " पूंजीवाद ने अपने मुनाफे के लिए जो जाल बिछाया था उसको अब जनता भली-भाँति पहचान रही है। नागार्जुन की जनता को रोटी चाहिए जिससे पेट भरा जा सके ना कि धर्म

"हम हिन्दू नहीं है, न हम ईसाई हैं
हम तो आदिवासी हैं, गिरिजन हैं हम
हिन्दू हों चाहे इसाई, भूख तो सभी को लगती है.....
जो हमारी रोजी-रोटी का परबन्ध करेगा
हम उसी को अपना मानेंगे ....
हमारे बाप-दादा बुध्दु थे
हम लेकिन बुध्दु नहीं बनेंगे....."[90]

और

"जान लो भैया,
गरीबों की एक होती जात
उसी के हुकुम से
हिलेंगें एक-एक पात
किसी की सुनो नहीं
आलतू-फालतू एक भी बात। "[91]

भारत जैसे देश में धर्म लोगों पर इतना हावी है कि लोग सामान खरीदते समय, स्कूल में बच्चों का दाखिला करते समय भी यह देखते हैं कि वह अपने धर्म का है या नहीं। लोग उसी दुकान से सामान खरीदेंगे, उसी स्कूल में दाखिला करवायेंगे जो अपने धर्म का हो। इससे अल्पसंख्यक लोंगों पर बेरोजगारी की कुल्हाडी टूट पडती है क्योकि रोजी, रोटी, धर्म पर टिकी हुई है न की मेहनत पर। पेट भरने के लिए अपना धर्म और नाम किस तरह गलत बताना पड़ता है इसका चित्रण नागार्जुन ने अपनी 'तेरे खोपडी के अंदर' शीर्षक कविता में किया है - "चलो बाबाजी किधर ले चलूं ? / छीपी तालाब ? / बेगम पुल ? / कि इतने में / एक और युवक / इन कानों में, / फुस-फुसा के कह गया, / खबरदार यह मुसलमान है.. / इसके

[90] अपने खेत में - नागार्जुन पृ.42
[91] अपने खेत में - नागार्जुन पृ.43

रिक्शे पर कभी ना बैठना आप / वो कहने लगा / बाबा जी, हम अब चुटैया बी रखेंगे / आठ-दस रोज की / भूखमरी के बाद / हमारे अन्दर / यह अक्किल फूटी है ! / बाबा जी रूदराछ के मनके / अच्छी मजूरी दिला रहे है । / बाबाजी, / अब हम / चुटला बी रखेंगे माथे पे / अब हम चन्दन का 'टीका भी / रोज लगाते रहेंगे... / बाबाजी, अब हम / अपना नाम भी तो / परेम परकास बतलाते हैं। "[92]

जब हम हिन्दू धर्म की बात करते हैं तो इस धर्म में जितनी अंधश्रध्दा और अंध-विश्वास है शायद ही विश्व में और किसी धर्म में होगा। हिन्दू धर्म में चूहा, बिल्ली, सुअर, कुत्ता, शेर, बैल, गाय आदि पशुओं को जितना सम्मान मिलता है उतना निम्न जाति माने जानेवालों को नहीं मिलता, क्यों कि चूहा गणपति का वाहन है, तो शेर विष्णू का आदि। गाय की तो बात ही अलग है उसे तो गोमाता नाम से नवाजा जाता है। भारत देश में गाय और सुअर सांप्रदायिक दंगों का बहुत बड़ा कारण भी रह चुका है। न जाने आज तक कितने दलितों और गिरिजनों को सरे आम काट दिया गया, महिलाओं पर बलात्कार किया गया किंतु हिन्दू धर्मवालों को इसका तनिख भी दुख नहीं हुआ जितना गाय को काटने से होता है। गोमाता कहने और श्रद्धा रखनेवालों को नागार्जुन पूछते हैं -

"जिस किसी ने पहले-पहल,
गाय को माँ कहा
वो भैस-बकरी- भेड़ को
माता क्यों न कहा ?
X X X X
हमने अकसर -
पिछवाडे की गलियों में
विष्ठा भरा कागज
'गो माता' को चबाकर खाते देखा है
'गाय' आखिर है वो भी तो निरा, पशु
शायद नगरों के गलियारों में
अपने मुँह का जायका बदलने के लिए

[92] ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या - नागार्जुन, पृ.13

विष्ठा भरा अखबारी कागज चबाती है.....।"[93]

इसके अलावा भी नागार्जुन की 'पछाड दिया मेरे आस्तिक ने', 'तेरे दरबार में क्या चलता है ' आदि कविताएँ धर्म के प्रति मार्क्सवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है ।

केदारनाथ अग्रवाल ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हुए धर्म को शोषण का साधन मानते है। धर्म और ईश्वर की संकल्पना कैसे और कहाँ से शुरू हुई है इसे उन्होंने 'युग की गंगा' की भूमिका में स्पष्ट करते हुए किसान को ही ईश्वर के रूप में देखा है । वे इस सृष्टी और अनाज का निर्माता ईश्वर को न मानकर मेहनतकश वर्ग को मानते हैं - "भारतीय साहित्य के इतिहास के अध्ययन से इसकी पुष्टी होती है। एक समय ऐसा था, जब भारतवासी प्रकृति पर अपने ज्ञान की विजय नहीं कर सके थे, और वह अपने को धरती का मालिक नहीं समझते थे, तब वह प्रत्येक प्राकृतिक सत्ता को अपने कल्याण के लिए उद्बोधित करते थे। उस समय का संपूर्ण काव्य जिज्ञासा का काव्य है, उद्बोधन का काव्य है, वन्दना का काव्य है, और अपनी रक्षा की कामना का वृहत्तर काव्य है । धरती का कलेजा चीर कर जब भारतवासी अन्न उपजाते थे, तब वह उस अन्न को अपने श्रम का अन्न नहीं समझते थे, अपितु उस अन्न को माता धरती की ही देन समझते थे। धरती ईश्वर की थी, इससे अन्न ईश्वर का हुआ। अत: यही से ईश्वरीय काव्य की उत्पत्ति संभव हुई, जो क्रमश दार्शनिक और धार्मिक काव्य की परंपरा बनाता गया। दर्शन ने भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण किये और ईसी तरह धर्म ने भी अनेकानेक रूप पाये ।" [94]

इस सृष्टि का कर्ता ईश्वर न होकर श्रमिक है । धरती से उपजने वाला अनाज ईश्वर की देन न होकर किसान के रात-दिन मेहनत और पसीने का फल है । इसलीए केदारनाथ अग्रवाल ने 'धरती' कविता में कहा है कि इस धरती पर सिर्फ किसान का मात्र अधिकार है -

"नहीं कृष्ण की,
नहीं राम की,
नहीं भीम, सहदेव, नकुल की
नहीं पार्थ की,
नहीं रावण की, नही रंग की

---

[93] अपने खेत में - नागार्जुन पृ.20

[94] गुलमेहंदी - केदारनाथ अग्रवाल पृ.189-190

नहीं किसी की, नहीं किसी की

नहीं किसी की धरती है केवल किसान की । "[95]

इसी कविता में कवि किसान के मेहनत का चित्रण करते हैं - 'तप कर, / गल कर / जी कर / मरकर / मरकर / खपा रहा हैं । जीवन अपना / देख रहा है / मिट्टी में सोने का सपना ।' केदारनाथ अग्रवाल ईश्वर को पत्थरों की मूर्ति मात्र मानते हैं जिसे मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए शोषितों का खून चूसने के लिए बनाया है -

"वैभव की विशाल छत्र छाया में,

स्वर्ण-सिंहासन पर,

रक्खी देख मन्दिरों में पत्थरों की मूर्तियाँ।"[96]

केदारनाथ अग्रवाल की और एक 'अमीनाबाद' शार्षक कविता है, उसमें भी उन्होनें 'महावीर हनुमान' को पत्थर मात्र समझा है -

"महावीर जी पत्थर के हैं,

उनकी गठण बहुत साधारण

नहीं कला की अनुपम कृति है ।

अंग-अंग सिन्दूरी रंग से सना हुआ है ।"[97]

समाज में ईश्वर को माननेवाले धार्मिक लोग कैसे दिनभर अधर्म करते हैं, और नर-नारी को ठगने वाले हैं, दूसरों के संपत्ति को हरने वाले, और भीषण की हत्या करने वाले लोग भी स्वर्ग पहुँचने के लालच से ईश्वर के दर्शन के लिए लंबी कतार में खड़े रहते हैं । इसका चित्रण कवि ने 'चित्रकूट के यात्री' कविता में किया है। कवि की ईश्वर के प्रति जो विचार और दृष्टि हैं वह उनकी 'देवमूर्ति' कविता में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है । इस कविता में आले में रखी हुई छोटी सी देवमूर्ति चूहे के धक्के से गिरकर टूट जाती है तब कवि को थोडा भी दुख नहीं होता है। इनकी एक अन्य कविता 'देवताओं की आत्महत्या' भी कवि के धर्म और ईश्वर के प्रति दृष्टिकोण को उजागार करती है।

---

[95] गुलमेहंदी - केदारनाथ अग्रवाल पृ.55

[96] गुलमेहंदी - केदारनाथ अग्रवाल पृ.26

[97] गुलमेहंदी - केदारनाथ अग्रवाल पृ.41

धर्म सामाजिक चेतना का वह रूप है, जिसकी विशेषता है लोगों के मानस में उन पर शासन करनेवाली बाह्य और पार्थिव शक्तियों को अवास्ताविक और अपार्थिव रूपों में प्रतिबिंबित करना यह वस्तुत: एक ऐतिहासिक वस्तु है, जो सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न रूप लेता रहा है। आदिम समाज में धर्म के उदय का कारण था, प्राकृतिक शक्तियों के सम्मुख मनुष्य की असहायता, क्योंकि उस समय उत्पादक शक्तियाँ बहुत ही निम्न स्तर की थी। समाज में धर्म बना रहा,क्योंकि इसमे वर्ग-शोषण,अनुचित सामाजिक संबंध और गरीबी तथा अधिकार हीनता ने जनता के भीतर जो निराशा उत्पन्न की, उसने उसे अति प्राकृत शक्तियों की तरफ आशा से देखने के लिए प्रेरित किया । मनुष्य को यह झूठा विश्वास दिलाकर की उसके जीवन की सारी ज्वलंत आवश्यकताएँ दूसरे जगत में पूरी होगी,धर्म बाहरी शक्तियों पर उसकी निर्भरता को दृढ़ करता है और इस तरह उसकी सृजनात्मक क्षमता को नष्ट कर उसे निष्क्रिय बनाता है। मुक्तिबोध का धर्म और ईश्वर के प्रति जो दृष्टिकोण है वह उनकी 'कामायनी: एक पुनर्विचार' में लिखित इस कथन से स्पष्ट होता है - "पूंजीवादी समाज रचना की ह्रासावस्था में जब उस समाज-रचना की स्थिति आगतिक हो उठती है तब, वह धर्म का या रहस्यवाद का अथवा किसी-न-किसी प्रकार के वायवीय आदर्शवाद का पल्ला पकड़ता ही है। उसका प्रधान आकर्षण, वस्तुत: धर्म या रहस्य के प्रति होता है। जिस पूंजीवाद ने अपने उत्थान- काल में धर्म के मजबूत पंजों से जनता के मन को छूटकारा दिलाया, वहीं पूंजीवाद आगे चलकर अपने चरमराते ढांचे को थामने के लिए, धर्म या किसी-न-किसी दार्शनिक रहस्यवाद का सहारा लेता ही है। यह प्रक्रिया बहुत पहले से चालू है । यह आश्चर्य की बात नहीं है कि आज पश्चिमी साम्राज्यवाद रोमन कैथोलिक चर्च तथा अन्य गिरजाघरों की सक्रिय सहायता ले रहा है, विशेषकर साम्यवाद के विरूध्द अपने संघर्ष में तो चर्च आगे बढकर काम कर रहा है ।"[98]

मुक्तिबोध की 'एक अरूप शून्य के प्रति' शीर्षक कविता बहुत ही महत्वपूर्ण कविता है । इसमें वे ईश्वर को लक्ष्य कर कहते हैं -

"मात्र अनास्तित्व का इतना बड़ा अस्तित्व
ऐसे धुप्प अंधेरे का इतना तेज उजाला लोग-बाग,

[98] मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना - नंदकिशोर नवल- पृ196

अनाकार ब्रह्म के सीमाहीन शून्य के

बुल बुले में यात्रा करते हुए गोल-गोल

खोजते है जाने क्या ?

बेछारे सिफर के अंधेरे में

सफर भी खूब है।"[99]

उनकी एक अन्य कविता है 'सुनहलें बादल में जिन्न' जिसमें उन्होंने ईश्वर और धर्म-भावना पर करारी चोट की है। ईश्वर सुनहले बादलो में रहने वाला जिन्न है, जिसकी आखों के आभा से सारा पर्वत-प्रदेश जगमगाता रहता है । लेकिन वही घाटियों और दर्रों में उन कुलियों की ठठरिया फैली रहती है, जिनके कंधों पर चढकर धर्म प्राण लोग बद्रीनाथ यात्रा करते हैं। इस कविता में उस कमल का जिक्र है, जिसकी सुगंध में ज्ञान जाग्रत करने और धार्मिक जड़ता भगाने की क्षमता है। कविता की अंतिम पंक्तियों में धर्म और आत्मा का उपाहास इन शब्दों में किया गया है

"ज्यों-ज्यों उन कुलियों कि खुशियों का खात्मा

होता है, त्यों-त्यों यह पुण्यमयी होती है आत्मा"[100]

उन्होंने आत्मा के संपूर्ण धार्मिक और दार्शनिक प्रभा-मंडल को ध्वस्त करते हुए यह पंक्तियां लिखी है-

"देखों तो-

प्रतिफल तुम्हारा ही नाम जपती हुई

लार टपकाती हुई आत्मा की कुतियाँ

स्वार्थ-सफलता के पहाड़ी ढ़ाल पर

चढती है हांपती,

आत्मा की कुतिया

राह का हर कोई कुत्ता जिसे छेडता है, छेंकता

लेकिन, तुम खूब हो

सूनेपन के डोह में अंधियारी डूब हो"।[101]

---

[99] मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना - नंदकिशोर नवल- पृ.34

[100] भूरी भूरी खाक धूल - मुक्तिबोध पृ. 33

मुक्तिबोध की ईश्वर में आस्था बिल्कुल नहीं थी यह बात उनके कई कविताओं के माध्यम से स्पष्ट हो जाती है । नंद किशोर नवल ने इस संदर्भ में जो टिप्पणी दी है वह उल्लेखनीय है - "दुहराना व्यर्थ है कि मुक्तिबोध ने विश्वदृष्टि केवल पुस्तको से नहीं प्राप्त की थी, उसमें उनके जीवनानुभव और जीवन चिंतन का बहुत ज्यादा हाथ था। ज्यो व्यक्ति अपनी विश्वदृष्टि जिंदगी के कठिन अनुभवों से प्राप्त करेगा, वही मानवीय संवेदनाओं से पूर्ण और संकल्प की दृढता से युक्त होगा । उसे वाकई ईश्वर जैसी किसी फालतू चीज की जरूरत ना होगी ।"[102]इसके अलावा मुक्तिबोध के अन्य कविताँए 'ओ काव्यत्मन फणिधर','एक अरूप शून्य के प्रति', और 'स्वार्थ सफलता' शीर्षक कविताओं में धर्म, ईश्वर और आत्मा की बहुत ही तीखी आलोचना की है।

हिंदी के मार्क्सवादी कवियों की तरह मराठी कवियों ने भी ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हुए धार्मिक अंधश्रद्धाओं का खुलकर विरोध किया है । सुर्वे, अण्णाभाउ साठे, अमर शेख ने धर्म को शोषण का तंत्र माना है जो ईश्वर का भय बताकर शोषण किया जाता है। निम्न वर्ग उच्च वर्ग के विरोध में खड़ा न हो इसलिए उनके गरीबी का कारन पुनर्जन्म का पाप बताकर उनका शोषण किया जाता है। इस बात को मराठी के कवी भली-भांति जानते है। ये कवी इश्वर को मानते है किन्तु उस ईश्वर को नहीं जिसे अभिजात वर्ग मानते आया है, बल्कि उसे मानते हैं जो अपने मेहनत से इस सृष्टि का निर्माण करता है।

शाहीर अमर शेख ने अपनों कविताओं के माध्यम से ईश्वर और धर्म का विरोध करते हुए मानव श्रम को महत्त्व दिया । कवी ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि को श्रमिक में ही देखते हैं। क्योंकि वह श्रमिक ही है जो इस सृष्टि का निर्माता है। अमर ने “ब्रह्मा, विष्णु, महेश” की कविता के माध्यम से इस विषय पर अपना विचार प्रकट किया है-

" काळया आईचा सखा पुत्र तू –तू खरा घनश्याम

ब्रह्मा होउनी तूच निर्मिले निर्मियले जग सारे

दरीडोंगरी फोदुनी सगळे विश्व सजविले न्यारे

घाळुनिया घाम-राजा कुनबी हरे राम "

---

[101] मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना - नंदकिशोर नवल- पृ 34

[102] मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना - नंदकिशोर नवल - पृ.35

इस कविता के माध्यम से कवि ने उन मान्यताओं का खंडन किया जो इस सृष्टि का कर्ता ईश्वर को मानते है। उनकी अन्य कविता ' माझा देहचि धरती माता ' में देह की धरतीमाता में ही कुराण, गीता को देखकर उन्होंने धार्मिक ग्रंथों के महत्व को भी नकारा है। उनका मानना था कि मिट्टी का पुत्र यानी किसान यदि सुखी होगा तो सब दुनिया सुखी होगी। इसलिए उन्होंने लिखा है -

" माझा देहचि धरती माता
हा कुराण ही माझी गीता
यातच धन, ऋण शक्ति उपजल्या
बुद्धि भावना रूप जाहल्या। " [103]

अमर शेख ने भी कभी धर्म माना ही नहीं है। माना है तो वह सेवाधर्म, कलाधर्म जो निम्नवर्ग के काम आए। वे जीवन से जितना प्रेम करते थे उतना ही शब्द से। इसलि उनका एक ही सवाल था जीवन के बिना शब्द कौण-सा है ?

दुनिया जिस परमेश्वर को मानती है वह उस परमेश्वर को नहीं मानते थे। जनता जनार्धन मे ही उन्हें उनका परमेश्वर दिखता था। खुद अमर ने ही कहा है - " मैंने परमेश्वर नाम की शक्ति पर कभी प्रेम नहीं किया है , किंतु सश्रद्ध मनुष्य परमेश्वर से जितना प्रेम नहीं करता उससे ज्यादा प्रेम मैने सामान्य जनता पर किया है। " [104]

पोवाडे में गण लिखने की प्रथा थी , गण याने पोवाडे के शुरु में गणेशजी की वंदना या किसी और देवी-देवता का नाम लेकर ही पोवाडा लिखा या गाया जाता था किंतु लोकशाहीर अण्णाभाऊ साठे ने इस प्रथा को लताड़कर उसकी जगह पर श्रमिक की वंदना करते थे। श्रमिक को किस तरह अभिवादन करते थे उनकी कविता ' कामगार स्तवन ' में देख सकते है –

" प्रारंभी मी आजला। कर ज्याचा येथे पुजिला।
जो व्यापुनि संसाराला। हलवी या भूगोला।।
ज्याला जगी तुलना नाही। अंत पाताळाची घेई।
उर ब्रह्मांडाचे फोडी। काळाचे हाडे मोडी

---

[103] शाहीर अमर शेख यांचे पोवाडे, लोकगीते व कविता - संकलक- डॉ. अजीज नदाफ पृ.34
[104] शाहीर अमर-अण्णा - डॉ.माधव पोतदार पृ.162

आकाशा खाली ओढी । तो मी आज वंदिला ।। " [105]

साठे ने भी सृष्टि का निर्माता श्रमिक को ही माना है न की ईश्वर को । वह श्रमिक जो इस दुनिया का दाता है और इस दुनिया पर उसी की सत्ता है या होनी चाहिए ।

" ही तुझीच धरती माता, तू या विश्वाचा निर्माता ।

तुझी चराचरावर सत्ता , तू या जगताचा दाता । " [106]

धर्मांधता के कारण करोडों जनता की किस तरह दयनिय अवस्था हुई है उसे अण्णाभाऊ भली-भाँती जानते थे । इसी धर्मांधता के कारण ही समाज में उंच-नीच, जात-पात की प्रथा चल रही है और न जाने कितने दलित लोग अपमान के शिकार हो रहे है आदि का चित्रण उन्होंने अपनी ' जग बदल घालुनी घाव ' शीर्शक कविता में की है ।

नारायण सुर्वे ने भी ' जाहीरनामा ' , ' शीघवाला ' , ' उस्मान अली ' ऐसे कई कविताओं के माध्यम से धर्म और ईश्वर का विरोध किया है । जाहीरनामा कविता में तो वे धर्म को एक झबरीला कुत्ता मानते है जो गली-कुचों में टहलता है " धर्म एक कुलंगे हिंडते गल्लीबोळातुन " हर धर्म में स्वर्ग और नर्क की कल्पना की गई है । पूँजिवादी समाज ने धर्म को शोषण का हथियार अपनाया है । इस धारना को सामान्य जनता में इतना मजबुत बो दिया कि बैमानी , खून, पाप करने से मरनोपरांत नरक में जगह मिलेगी और इन चिजों से जो दूर रहता है उसे स्वर्ग । इन सिद्धातों का पालन वे खुद नहीं करते हैं तभी तो निम्न वर्ग का खून चूसकर यहीं पर स्वर्ग का अनुभव करते है । सामान्य जनता को मरनोपरांत स्वर्ग बताकर वे जीवित रहते है । इनके श्रम पर स्वर्ग का सुख अनुभव करते है । तथाकथित, अभिजात वर्ग ने जिस रास्ते जाने से स्वर्ग मिलने की बात करते हैं उस पर कवि सुर्वे ने थूँका है -

" म्हणतात हे बेतलेल्याच रस्त्याने गेलात तर

स्वर्ग मिळेल बेतलेल्याच चार खांबात

थू : । " [107]

धर्मग्रंथों का निर्माण विशिष्ट जाति, वर्ग के लोगों द्वारा रची गई है जिसे अपनी स्वार्थ की रोटी सेंकने के लिए इन ग्रंथो का अनुसरन करते और कराया जाता है । हिंदु धर्म का समाज ही धार्मिक ग्रंथों के संरचना पर चलता था । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ऐसे

---

[105] अण्णाभाउ साठे यांचे पोवाडे, व लावण्या - लोकवाङमयग्रह, पृ.21

[106] अमर शेख यांचे पोवाडे , लोकगीते व कविता - सं. अजीज नदाफ पृ.18

[107] माझे विद्यापीठ - नारायण सुर्वे , पृ.23

समाज को और उनके कामों को बाँट दिया गया है। जब कोई व्यक्ति दूसरा काम करता हो या इसके विपरित कोई परिवर्तन लाना चाहता हो उसे धर्मग्रंथ का प्रमाण देकर बताया जाता है कि यह कैसे गलत है। इन धर्मग्रंथों को ढाल बनाकर सदियों से निम्न वर्ग का शोषण करते आयें हैं। सुर्वे ' सुर्यकुलातील लोक ' शीर्षक कविता में कहते हैं कि इन पोथियों, रुद्राक्ष और ईश्वरों ने हमारा क्या भला किया है –

" ते रुद्राक्ष, ते पोथ्या, ते खुंटीवर टांगलेले देव
कालच म्हनालीस कुणीही भले केलेले नाही " [108]

सुर्वे ने कई चरित्र-प्रधान कथात्मक मार्मिक कविताओं की रचना की है। उनकी ' उस्मान अली ' नामक कविता इसी प्रकार की है उस्मान अली का परिवार किस तरह दंगों का शिकार होकर अपनी जान गवाँ बैठता है आदि का चित्रण उस्मान अली और कवि के संवाद के माध्यम से बताया गया है -

" चार महिनों में घर के
ग्यारह आदमियों को कब्र में दफनाके बचा हूँ
कभी इधर के दंगों में कभी हैदराबाद के
कब्र में दौड़ता रहा
माँ-बाप इसी झटके से गये " [109]

2.2 यथार्थ चित्रण

मार्क्सवादी साहित्य चिंतन के अंतर्गत सामाजिक यथार्थवाद को सर्वोच्च साहित्यिक एवं कलात्मक प्रतिमान के रूप में स्वीकार किया गया है। सामाजिक यथार्थवाद, यथार्थवाद के समूचे विकास क्रम में सर्वाधिक प्रगतिशील तथा जीवंत धारणा है, जो एक ओर उस प्रकृतवाद से भिन्न है जो मनुष्य को मूलत: आदिम वृत्तियों से अनुशासित तथा परिचालित मानते हुए उसके अब तक के समूचे बौध्दिक तथा भावात्मक विकास की उपेक्षा करता है। दूसरी ओर उस आलोचनात्मक यथार्थवाद से भिन्न है, जो अपनी जीवंत कला, वस्तुगत यथार्थ के ईमानदार चित्रण, उसकी अंतर्विरोधी, ह्रासशील तथा कुत्सित भूमिका के प्रति कड़ी आलोचनात्मक रूख अपनाने एवं जन सामान्य के प्रति संवेदनशील होने के बावजूद उस

---

[108] माझे विद्यापीठ - नारायण सुर्वे , पृ.25
[109] निवडक नारायण सुर्वे - सं. कुसुमाग्रज पृ.18

क्रातिकांरी, रचनात्मक, समाजवादी समक्ष से शून्य है जो वर्तमान विकृत यथार्थ को बदलने का न केवल रास्ता सुझाति है, बल्कि उस परिवर्तन को मूर्त भी करती है। यथार्थवाद दृष्टि उस भविष्य का रूप भी उद्घाटित करती है, जिसके बीज वर्तमान व्यवस्था में ही छिपे हैं ।

यथार्थपरक दृष्टि प्रगतिवाद का केंद्रीय मूल्य है। यह यथार्थ मानसिक संकल्पना नहीं है, बल्कि आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के संघात से निर्मित वस्तुगत सत्य है। साहित्य में यथार्थ चित्रण करने के लिए साहित्यकारों को 'प्रगतिशील लेखक संघ' ने हर घोषणापत्र में सुझाया है। लंदन में तैयार इस 'प्रगतीशील लेखक संघ' के घोषणापत्र में यह कहा गया था कि - "भारतीय साहित्य पुरानी सभ्यता के नष्ट हो जाने के बाद से, जीवन की यथार्थताओं से भागकर उपासना और भक्ति की शरण में जा छिपा है। नतीजा यह हुआ कि वह निस्तेज और निष्प्राण हो गया है, रूप में भी और अर्थ में भी। आज हमारे साहित्य में भक्ति और वैराग्य की भरमार हो गई है। भावुकता का ही प्रदर्शन हो रहा है, विचार और बुद्धी का एक तरह से बहिष्कार कर दिया गया है। पिछली दो सदियों में विशेषकर इसी तरह का साहित्य रचा गया है, जो हमारे साहित्य का लज्जास्पद काल है । इस सभा का उद्देश्य अपने साहित्य और दूसरी कलाओं को पुजारियों, पंडितों और अप्रगतिशील वर्गों के अधिपत्य से निकालकर उन्हें जनता के निकटतम संसर्ग में लाना, उनमें जीवन और वास्तविकता में लाना है, जिससे हम अपने भविष्य को उज्जवल कर सकें । हम भारतीय सभ्यताओं की रक्षा करते हुए अपने देश की पतनोन्मुखी प्रकृतियों की निर्दयता से आलोचना करेंगे, जिससे हम अपनी मंजिल पर पहुँच सके। हमारी धारण है कि भारत के नये साहित्य को हमारे वर्तमान जीवन के मौलिक तथ्यों का समन्वय करना चाहिए और वे हैं - हमारी रोटी का, हमारी दरिद्रता का, हमारी सामाजिक अवनिती का और हमारी राजनीतिक पराधीनता का प्रश्न ।"[110]

नागार्जुन की 'युगधारा', 'प्रेत का बयाण,' 'प्यासी पथराई आँखे', 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' और 'पूरानी जूतियों का कोरस' की कविताए यथार्थ की ठोस आधार भूमि पर रची गई है । नागार्जुन केवल कल्पना लोक में विचरण नहीं करते बल्कि यथार्थ की चट्टानों से टकराते हैं। समाज के पहरूए की भांति उनकी दृष्टि ने सामाजिक जीवन के प्रत्येक उतार-

[110] रेखा अवस्थी - प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य, पृ.317

चढाव का स्पर्श करते हुए यथार्थ को मूर्तिमान किया है। मज़दूरों और किसानों के हिमायती नागार्जुन प्रधानत : व्यंग्य कवि हैं । व्यंग्य की तेज चमक तथा यथार्थ की कर्कशता ने नागार्जुन की कविताओं को जनप्रिय बनाने में विशेष भूमिका निभाई है । नागार्जुन ने व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक विषमताओं के लिए जिम्मेदार लोंगों की बखिया उधेढी हैं । नागार्जुन के अधिकांश कविताएँ यथार्थ को साथ लेकर चलने वाली हैं । नामवर सिहं के अनुसार, "यथार्थ के वे रूप जिन्हें शिष्ट और सुरूचिपूर्ण कवि बीभत्स समझकर छोड देना ही उचित समझते हैं, नागार्जून की साहसिक कल्पना से काव्य का रूप प्राप्त करते हैं ।[111]"

नागार्जुन की कई कविताओं में संवेदना का केन्द्र गांव है । वस्तुत :नागार्जुन की गांव संबधी चेतना का एक ठोस और मजबूत वैचारिक आधार है । कृषक-जीवन और समस्याओं में उनकी सक्रिय और गहरी दिलचस्पी रही है । नौकरी के चक्कर में गांव का इन्सान गांव छोडकर शहर में बसने लगा है, और अपने परिवार के साथ शहर की बनावटी जीवन में अपने आप को ढाल रहा है । एक बार जो कोई शहर के रहन-सहन का आदी हो जाता है तब वह किस तरह से गांव की ओर नहीं लौटता है , इसका यथार्थ चित्रण कवि ने 'अपने बच्चों को' कविता में किया है -

"हमने सुना है
तुमने अपनी फेमिली को
कभी गांव-घर की ओर
झाकंने तक नहीं दिया है
यह कैसी शर्म की बात है।"[112]

गरीबी, महंगाई, भूख और भ्रष्टाचार ने किस तरह थैमान मचाया है और जिससे आम आदमी का जीवन तबाह हो रहा है। गोदामों में अन्न भरा हुआ है किंतु वह जनता तक नहीं पहुँच पा रहा है और जनता भूख से किस तरह परेशान है आदि का यथार्थ चित्रण 'अन्न – पचीसी' में दिखाई देता है -

---

[111] अलाव, संपा. रामकुमार कृषक, जनवरी-फरवरी 2011
[112] अपने खेत में - नागार्जुन पृ.47

"गोदामों में अन्न कैद है, पेट-पेट है खाली

भूख-पिशाचिन बजा रही है, द्वार द्वार पर थाली

दो चाहे हिंसा की देवी को गाली पर गाली

बलि पशुओं की ले रही है, खप्पर लेकर कालि

गोदामों में अन्न कैद है, पेट-पेट है खाली।"[113]

नागार्जुन की अधिकांश कविताओं में यथार्थ और व्यंग्य की छीटें मिलेंगी । मगर कुछ ऐसी कविताएँ भी है जो यथार्थ और व्यंग्य से भरी-पूरी हैं । नागार्जुन जितने सहज विनोदी स्वभाव के लगते हैं उतने ही वे अंदर से गंभीर होकर यथार्थ की अभिव्यक्ति करते हैं । केदारनाथ अग्रवाल ने 'सतरंगे पंखों वाली' की समीक्षा में लिखा था - "यह एक खास बात है कि रोमान्टिक स्वभाव पाकर भी नागार्जुन रोमांटिक नहीं लिखते । उनके रोमांटिक स्वभाव का परिचय तो मिल जाता है , किंतु वह यत्र-तत्र ही । इसका कारण है कि यह स्वभाव से युगधर्मी भी है, और यथार्थधर्मी भी, वह यथार्थ से आँखें तरेर कर आँखे मिलाते हैं और यथार्थ को पकड़ कर अपनी कविताओं में उसकी अभिव्यक्ति करते हैं । उन पर युग का गहरा प्रभाव है। वह जीवन को ग्रहण करते हैं और काव्य और कला को जीवन से ऊपर की चीज नहीं मानते । रोमांस भला ऐसे व्यक्ति के पास कैसे रूक सकता है ।"[114]

इस संदर्भ में नागार्जुन ने भी खुद कहा है कि "मेरे अंदर विक्षोभ तब फूटता है, जबकि लगातर बढ़ती हुई महँगाई के मारे लोगों को परेशान पाता हूँ.... परम मेधावी बालक और बालिकाँए गरीबी के चलते अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड देने को बाध्य हो जाते हैं, धूर्तों की जमात वर्ष के भीतर ही लाखों की रकम बटोर लेती है, मेहनत-मशक्कत की कमाई खानेवाला, रिक्शा मज़दूर महीनों फटी बनियान पहनता है.... किसान, खेतीहर, टीचर, किरानी... कौन नहीं है संकट का शिकार । ये वे नहीं है जो कवि -सम्मेलनों की अगली कतारों में बैठते हैं । यह विक्षुब्ध हैं । इन्हीं का विक्षोभ पूंजीभूत होकर मेरी रचनाओं में फूटता रहता है । प्राइमरी स्कूल का वह मास्टर मुझे कभी नहीं भूलेगा, जिसके परिवार का भूख के मारे सफाया हो गया था और अंत में स्वंय भी काल-कवलित हुआ । उसी की पीड़ा ने मुझसे 'प्रेत का बयान' जैसी

---

[113] पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन पृ.55

[114] कुरंजा संदेश 1 मार्च 2011, 31 अगस्त 2011 पृ.24

तिक्त रचना तैयार करवा ली थी । उच्च वर्ग के रहन-सहन के ढंग को, प्राचार्य और उच्च शिक्षाधिकारी की व्यक्ति केंद्रिकता को, नेताओं के बहुरियापन को मैने कभी क्षमा नहीं किया।"[115]

नागार्जुन की 'नाकहीन मुखडा' शीर्षक कविता एक ऐसे व्यक्ति पर लिखी गयी है जो जाड़े की रात में ठंड से ठिठुर कर गठरी बन गया है और दियासलाई से जला-जला कर बीड़ी पीता है और अंधेरे में डूबा है –

"गठरी बना गई

माघ की ठिठूरन

अद्‌भुत यह सर्वांग-आसन

सुलघ उठी माचिस की तीली

बीड़ी लगा धूंकने नाकहीन मुखड़ा।"[116]

इनकी एक अन्य कविता 'होती बस आँखे ही आँखे' भी इसी तरह की कविता है जिसे पढ़ कर करुणा उमड़ पड़ती है उस अपाहिज दीन-हीन के प्रति। 'खुरदरे पैर' गट्ठों वाले कलिश-कठोर पैर के रिक्शे वाले को देख कर लिखि गयी कविता है । कवि के आंखों से वे पैर टकराते है, उन पैरों की याद बराबर बनी रहती है "खूब गये दुधिया निगाहों में / फटी बिंवाइयावाले खुरदरे पैर / धंस गये कुसम-कोमल मन में / गुटठल घट्ठोंवाले कुलिश-कठोर पैर / दे रहे ये गति रबड़ विहिन ठूंठ पैडलों को / चला रहे थे एक नहीं , दो नहीं, तीन-तीन चक्र / कर रहे थे मात्र त्रिविक्रम वामन के पूराने पैरों को / नाप रहे थे धरती का अनहद फासला / घंटों के हिसाब से ढोये जा रहे थे।"

नागार्जुन ने 'देखना ओ गंगा मइया' इस कविता में उन मलाहों के नंग-धडंग बच्चों का चित्रण किया है, जो रेल के पुल के नीचे गंगा जी के जल में फेंके गये पैसों को पाने के लिए पानी में डुबकिया लगाते हैं । वे बच्चे एक अन्नी, दुअन्नी को नहीं बल्कि ऐसा लग रहा है कि

---

[115] विषकीट, नागार्जुन रचनावली, खंड-6, पृ.284-85

[116] सतरंगे पंखोवाली -नागार्जुन पृ.24

कौस्तुभ मणि को खोज रहे हो। कवि ने सहानुभूति के साथ गंगाजी से इन बच्चों को निराश न करने की अपील की है।कवि ने बच्चों की ओर से उनकी जरूरतो की लिस्ट भी पेश की है, क्योंकि कवि जानता है कि अभाव का जीवन जीने लायक नहीं होता है । इसलिए नागार्जुन कहते हैं -

" चंद पैसे/ दो-एक दुअन्नी-इकन्नी/कानपुर – बंबई की अपनी कमाई में से / डाल गये हैं श्रध्दालू गंगा मइया के नाम / मलाहों के नंग-धंडग छोकरे / दो-दो पैर/ हाय दो-दो / खोज रहे पानी में कौस्तुभ मणि! / देखना ओ गंगा मइया! / निराश न करना नंग-धंडंग चतुर्भूजों को।"

अकाल और उसके बाद कविता में उस घर की उस हलचल और उस खुशी का वर्णन किया गया है जो उस घर में अनाज आने पर होती है । इसके अलावा 'तुम्हे लाज नहीं आती' में कवि ने उस यथार्थ का चित्रण किया है जहाँ कोई मजदूर दिनभर मेहनत कर के पसीने से लतपत हो जाता है और घर लौटते समय ट्रेन में उच्च वर्ग के लोगों में आता है। कवि उन लोगों से पूछता है । दिनभर काम करके पसीना और मैले कपडों के से तुम्हे घीन तो नहीं आती ? 'लाल भवानी' कविता के माध्यम से तेलंगाना आंदोलन का तो 'हरिजन गाथा' में दलितों पर पर हुए हत्याकांड का यथार्थ चित्रण किया है ।

केदारनाथ अग्रवाल की यथार्थवादी दृष्टि उस भविष्य का रूप भी उद्घाटित करती है, जिसके बीज वर्तमान में छिपे हैं । सामाजिक जीवन के विविध अंतर्विरोधों के पार सत्य के वास्तविक रूप तक उनकी दृष्टि जाती है। उनकी कविताओं का व्यापाक कैनवास उनके युगदर्शन का परिचय है । इन्होंने सामाजिक, राजनीतिक औऱ आर्थिक यथार्थ को कहीं मार्मिक ढंग से तो कही व्यंग्य के माध्यम से चित्रित किया है। यथार्थवादी रचनाओं में 'युग की गंगा' इस संग्रह की सबसे अधिक रचनाएँ आ जाती है और इसीलिए कवि के काव्य में यथार्थ का स्वर सबसे ऊंचा हैं, जो कल्पना की आकाश चरित का निषेध करता हुआ काव्य जीवन को सशक्त प्रेरणा प्रदान करता है । यथार्थवाद सर्वत्र एक-सा नहीं है कहीं वह शैलीगत है, तो कहीं वस्तुगत । कहीं-कहीं इस यथार्थ को व्यंग्य के माध्यम से प्रेषित कर जनता की चेतना पर हावी सामंती संस्कारों का उपहास किया गया है। 'देवमूर्ति' शीर्षक कविता में कवि ने ईश्वर को

करुणा सागर समझने की भावना पर प्रहार करते हुए कहा है "छोटी सी देवमूर्ति / आले में रक्खी थी / बेचारी औचक ही / चूहे के धक्के से / दांसा के पत्थर पर / नीचे गिर टूट गई! / ताज्जुब है मुझको तो ! / करुणा के सागर के /अंतर की एक बूंद / भूमिपर न छलकी ।"

केदारनाथ अग्रवाल ने नागार्जुन के 'बांदा आने पर' शीर्षक कविता में किसानों का यथार्थ चित्रण किया है -

"गावों से आ- आ कर गहने गिरवी रखते

बढ़े ब्याज के मुंह में बर-बस बेबस घुसते,

फिर भी घर का खर्च नहीं पूरा कर सकते,

मोटा खाते, फटा पहनते,

लस्टम-पस्टम जैसे-तैसे भरते-खपते"[117]

इनकी अन्य कविता 'शहर के छोकडे'में शहर में रह रहे उन गरीब दारिद्र बच्चों का यथार्थ चित्रण किया है जो मैले,फटे, और बदबूदार कपडे पहनकर,सिर पर बिना तेल और कंगी के गल्ली में घुमते रहते हैं -

"शहर के छोकडे

मैले, फटे, बदबूदार वस्त्र पहने,

बिना तेल कंगी के

रूखे उलझाये बाल,

नंगे पैर, नंगे सिर

कीचड में लपटे तन,

गलियों में घूमते हैं ।

खाली जेब खोंचे के पास बैठ ।"[118]

---

[117] फूल नहीं रंग बोलते हैं - केदारनाथ अग्रवाल, पृ.85

[118] गुलमेहंदी- केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 44

'धरती' कविता में कवि ने किसान किस तरह भरी धूप में तपकर, गलकर अपना देहरूपी खाद मिट्टी में मिलाकर उस मिट्टी से सोना उगाता है इसका यथार्थ चित्रण किया है – "तप कर / गल कर, /जी कर /। मर कर / खपा रहा है जीवन अपना /देख रहा / मिट्टी में सोने का सपना ।"

कृषक जीवन में शोषण प्रच्छन्न रूप से चलता है, जब कि औद्योगिक समाज में शोषण एक स्थायी प्रश्न है। धनिक वर्ग अपनी पूंजी के बल पर मजदूरों का शोषण करता है तो श्रमजीवी अपनी मेहनत के आधार पर सर्वहारा वर्ग की स्थापना के लिए अपनी समानता और हकदार होने का दावा करता है। शोषण के कारण उनके सामाजिक जीवन में भी वर्गगत विरोध और संघर्ष चलता ही रहता है इसका यथार्थ चित्रण केदारनाथ अग्रवाल नें 'युग की गंगा' में किया है

"हम सब मजदूर बड़ी कड़ी मेहनत में पिसते हैं ।

कुत्ते से बदतर हम घिसते हैं रोटी के दीवाने ।।"[119]

मजदूर को मेहनत करके भी रोजी-रोटी के लिए कितना तड़पना पड़ता है जबकि पूंजीपति को बैठे-बैठे आराम से कैसे मिल जाता है इसका चित्रण उन्होंने 'डाँगर' कविता में किया है । सुखभोगी वर्ग का निष्क्रिय जीवन यह सिध्द करता है कि वे परजीवी है, मजदूर वर्ग के बल पर शक्ति संचय करते जा रहे हैं । धर्मशाला, विद्यालय, होटल, मंदिर, सिनेमा आदि सभी पूंजीवादी सभ्यता के उपकरण श्रमजीवी के उपकरण पर आधारित है । इसका यथार्थ चित्रण 'कानपुर' कविता में किया गया है -

"घाट, धर्मशाले, अदालतें
विद्यालय, वेश्यालय सारे
होटल, दफ्तर, बूचड़खखाने
मन्दिर, मस्जिद, हाट, सिनेमा
श्रमजीवी की उस हड्डी को

[119] युग की गंगा, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.

सभ्य आदमी के समाज ने

टेढ़ी करके मोड़ दिया है।"[120]

केदारनाथ अग्रवाल द्वारा सन् 1946 की परिस्थितियों का यह बहुत सही चित्रण किया है , यह यथार्थ जीवन को ठीक-ठीक समझने की क्षमता का सदृढ़ प्रमाण है। कानपुर के मजदूरों से लेकर बांद्रा जिले के किसानों तक से परिचित कवि केदार जनजीवन को रूमानियत की चादर से ढ़खा नहीं देते। 'जनता का जनजीवन' कविता में उन्होंने जनता का जीवन किस तरह अर्थविहीन तिथर-बीतर हो गया है इसका यथार्थ चित्रण किया गया है

"अधिकांश जनता का,

रद्दी की टोकरी का जीवन है ,

संज्ञाहीन, अर्थहीन ,

बेकार, चिस्फटे टुकड़ों सा पड़ा है ।

देरी है-एक दिन, एक बार, आग के छूने की,

राख हो जाना है।"[121]

ऐसा कतई नहीं है कि केदार ने सिर्फ किसान, मजदूर, और प्रकृति का मात्र यथार्थ चित्रण किया है, बल्कि उन्होंने राजनीतिक यथार्थ की कविताएँ भी बहुत सारी लिखी हैं,अंग्रेजों के बनाये शासनतंत्र की बागडोर जब काँग्रेसी नेताओं के हाथ आ गयी तब इस तंत्र को ब्रिटिश के प्रभुओं की लीक पर ही चलाया जा रहा था। प्रजातंत्र की सबसे बड़ी खामी यह है कि हम किसी उम्मीदवार को चुनकर असेम्बली या पार्लमेंट तो भेजते हैं किंतु वह ईमानदारी से काम नहीं करेगा तो उसे वापिस खींचने का अधिकार जनता के हाथ में नहीं है। इसका यथार्थ चित्रण केदार ने सन्1955 में बड़े दर्द से किया है

"दोष तुम्हारा नहीं हमारा है।

जो हमने तुम्हें इंद्रासन दिया....और असमर्थ है हम

इंद्रासन से-देश के शासन से ।"[122]

---

[120] फूल नहीं रंग बोलते हैं , केदारनाथ अग्रवाल, पृ.71-72

[121] गुलमेहंदी- केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 44

[122] कहे केदार - केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 137

मुक्तिबोध के काव्य में जो यथार्थ चित्रण दिखाई देता है वह नागार्जुन और अग्रवाल के यथार्थ चित्रण से भिन्न है। मुक्तिबोध ने हिन्दी काव्य संसार में यह सिध्द कर दिखाया है कि फैंटेसी का शैली में भी यथार्थ चित्रण किया जा सकता है । फैंटेसी का चित्रण यथार्थ की तरह कैसे करते थे, इस संदर्भ में नंद किशोर नवल का जो कथन है वह महत्वपूर्ण है - "इस संबंध में ज्ञातव्य है कि इस शैली की तरफ धीरे-धीरे बढ़े थे और य़थार्थ-बोध की परिपक्वता के साथ उनका ढंग स्वयमेव बदलता गया था । दूसरे, उन्होंने अपनी कविताओं में फैंटेसी का कई प्रकार का इस्तेमाल किया है । कहीं फैंटसी का स्पर्श हलका है, कही प्रगाढ़ कहीं वह सरल रूप में आती है, कही बहुत जटिल रूप में । उनकी फैंटेसी की शैली की सफलता उनकी इस क्षमता में निहित है कि वे जिस तरह यथार्थ को फैंटेसी में बदल सकते थे- उसी तरह फैंटेसी का चित्रण भी बिल्कुल यथार्थ की तरह कर सकते थे। उनका यथार्थ-लोक जैसे फैंटास्टिक है, वैसे ही उनका फैंटास्टिक लोक अत्यंत यथार्थ है।"[123]

मुक्तिबोध कहते हैं कि यदि व्यक्ति ईमानदारी से अपने को प्रकट करे तो वह 'वास्तविक जीवन' यानि समाज को ही प्रकट करेगा । लेकिन ईमानदार होना-प्राकृत होना-कठिन है । यदि साहित्यकार ईमानदार अथवा 'प्राकृत' न हुए, तो उनके लक्ष्य, वे सही ही क्यों न हों, उन पर आरोपित प्रतीत होंगे और उनका साहित्य कृत्रिम होगा। रामविलास शर्मा जैसे आलोचक मुक्तिबोध के काव्य में कहीं अस्तिवाद तो कहीं रहस्यवाद ढूंढने का प्रयास करते हैं किंतु इनके काव्य में जो है वह ज्यादातर यथार्थवाद ही है । यथार्थ अभिव्यक्ति की ईमानदारी से संबधित मुक्तिबोध ने खुद लिखा है "हम साहित्यकार जो पीड़ित मध्यवर्गीय श्रेणी से आए है , अपना विकल्प सामाजिक प्रगति और मानव-मुक्ति ही चुनते हैं , और इस पक्ष में कलाकार के मानव-व्यक्तित्व का हनन, सौंदर्य की उपेक्षा तथा व्यक्ति की अवहेलना नहीं दिखाई देती, क्योंकि उसी राह पर हमें सौंदर्य का साक्षात्कार होता है। हां,यह सही है कि यदि हम अपने साहित्य के द्वारा अपना पूरा प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सके, तो इसका अर्थ केवल यही है कि हमारी राह तो बिल्कुल सही है, किंतु उस पर जो चलनेवाले हम लोग है, उनमें कुछ खामी है । मेरे खयाल से यह खामी व्यक्ति विरूध्द समाज की खाम खयाली से संबंधित है । यदि हम काल्पनिक - विरोध करना छोड दे और अपने आपकी संपूर्ण ज्ञान-संवेदनाओं और संवेदन-ज्ञान

[123] मुक्तिबोध-ज्ञान और संवेदना, नंदकिशोर नवल, पृ.12

से ईमानदारी बरताते हुए अपने जीवनपक्षों को प्रबुध्द रूप से प्रकट करने लगे तो हम वास्तविक जीवन को ही प्रकट करने लगेंगे ।"[124]

मुक्तिबोध आगे कहते हैं - " आवश्यकता है, वस्तुत : प्राकृत होने की, क्योंकि हमारे संघर्ष भी प्राकृत है, करूणा और क्षोभ भी और हमारे लक्ष्य भी वे लक्ष्य और क्षोभ, जो हमें समस्त पीड़ित मानवता से एकाकार होने की तरफ प्रवृत्त करते हैं और उसके उद्धार का रास्ता ढूँढते हैं। लेकिन जहाँ हम प्राकृत नहीं हो पाते तो वहां हमारे अपने लक्ष्य भी, उनके सही होने के बावजूद ऊपर से थोपे हुए मालूम होते हैं , उससे हमारा साहित्य रिक्त या कृत्रिम मालूम होता है। इसके साथ उन्होनें यह भी कहा है कि "जो हम है और जैसा वस्तुत: हमारा जीवन है- उससे प्रबुध्द साक्षात्कार करना खेल नहीं। आज के जमाने में प्राकृत होना ही सबसे ज्यादा मुश्किल है। किंतु जो इस वास्तविक सत्य और यथार्थ के अधिकाधिक सेवा करेगा, और उसके लिए अनंत सौंदर्य की सृष्टि करेगा।"[125]

बंगाल के अकाल में करीब तीस लाख लोग मरे थे। यह भारतीय जनता के लिए न सहनेवाला और बहुत ही करुण स्थिति का खंड-दृश्य था। मुक्तिबोध ने अपनी कविता में निरंतर होनेवाली मानव-प्रगति का भव्य चित्र अंकित करने के बाद कहा -

"कवि, आज भी मानव

यहाँ पर मरे चूहे- सा उपेक्षित है ।

है बैलगाड़ी के अचानक राह में

दो भग्न पहियों- सा पराजित,

युध्द में टूटे हुए, उद्ध्वस्त पुल-सा

है विदारित।"[126]

मुक्तिबोध ने फैंटेसी के माध्यम से बहुत बड़े पैमाने पर यथार्थ चित्रण किया है। उनकी फैंटसी विराट कल्पना की ही देन थी, अपनी एक अधूरी कविता में मुक्तिबोध कहते हैं –

"कल्पना की दीप्ति में आगत खुला है।

---

[124] नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध, मुक्तिबोध, पृ.59

[125] नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध, मुक्तिबोध, पृ.60

[126] मुक्तिबोध-ज्ञान और संवेदना, नंदकिशोर नवल, पृ.191

वास्तविकता मूर्त है, ऊर्जस्वला है।

वास्तविकता को उठाकर देखने का चीमटा है कल्पना

वह परखने-निरखने का लेंस

सच-सही उसकों जमाना – साधना

है जरा मुश्किल।।"[127]

नंद किशोर नवल ने सही कहा है कि "फैंटसी की सृष्टि संवेदना के तीव्र दबाव से ही होती है और वह भ्रम न होकर भी वास्तविकता को प्रकाशित करनेवाली होती है।"[128]

मुक्तिबोध ने ' भूरी-भूरी खाक धूल ' कविता संग्रह में 'ओं अप्रस्तुत मन' के अंतर्गत तत्कालीन समय में भूख से पीड़ित बच्चों, माएँ, गाय़ों का जो यथार्थ चित्रण किया है वह बहुत ही मार्मिक ढंग का है -

"भोजन के समय कि कौर उठा

आये मुँह तक कि एक झटका...

अकस्मात दिखती है चारों ओर

अमल दिक्काल-दर्पणावालियाँ ही

उनमें उदास भूखीकी मुख-छवियाँ झलक उठीं

रास्ते के कागज खाती भूखी गायें वे,

घूरे पर अन्न बीनती गरीब माएँ वे,

गन्दे कड़ाह माँजते हुए बालक-चेहरे

हाय रे।"[129]

मुक्तिबोध ने तो 'कामायनी: एक पुनर्विचार' में यहां तक कहा है कि "वैज्ञानिक दृष्टिकोण, वस्तुत: यथार्थवादी दृष्टिकोण है, जो अपनी लक्ष्योन्मुखता के कारण ही तथ्य-संग्रह

---

[127] मुक्तिबोध-ज्ञान और संवेदना, नंदकिशोर नवल, पृ.273

[128] मुक्तिबोध-ज्ञान और संवेदना, नंदकिशोर नवल, पृ.273

[129] भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, पृ. 47

करता है । जिसकी जितनी बड़ी मनुष्यता होगी, निश्चय ही वह मनुष्य-जीवन के बारे में अधिक से अधिक ज्ञान रखेगा तथा उसे नवीन बनाता रहेगा ।"[130]

मूलत: साम्यवाद सामाजिक यथार्थ-परक दर्शन है । इसलिए मराठी मार्क्सवादी काव्य में यथार्थ चित्रण पर बल दिया गया है । मार्क्सवादी कवियों ने कल्पना और स्वप्निलता का तिरस्कार कर वस्तु-सत्य को महत्व दिया । वे वस्तु-सत्य को इसलिए महत्व देते हैं क्योंकि यह यथार्थ मानसिक संकल्पना न होकर सामाजिक, अर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों से निर्मित है । मार्क्सवाद ने इसी दृष्टि से कवि को जन-जीवन के अनुभवों और सत्यों के साथ संबंध कर दिया । फलत: देश में घटित सम-सामायिक घटनाओं और तजन्य परिवर्तनों का आलोच्य काव्य में चित्रण हुआ । इस प्रकार यथार्थवादी चित्रण-शैली और सामाजिक जीवन के यथार्थ में रुचि मार्क्सवादी काव्य की एक मुख्य प्रवृत्ति है । मार्क्सवादी दर्शन के प्रभाव से नूतन विषयों के अन्वेषी मराठी कवि तेजी से यथार्थ की ओर अग्रसर हुए। उन्हे समाज की तत्कालीन दुर्दशा और युगीन समस्याओं का समाधान समाजवाद में दृष्टिगोचर होने लगा। मार्क्सवादी काव्य के प्रथम चरण में कहीं-कहीं यथार्थ का साक्षात्कार भावात्मक स्तर पर न होकर बौध्दिक स्तर पर हुआ । जीवन में समता, स्वातंत्र्य की भावना या मुक्तिकामी चेतना का विकास और सामूहिक जीवन की सुख-शांती के लिए संघर्षरत होने की क्रांतिकारी चेतना का समग्र रूप उनकी सामाजिक यथार्थवादी भावना का समग्र रूप उनकी सामाजिक यथार्थवादी भावना में परिलक्षित है ।

नारायण सुर्वे की 'कुटुंब', 'मुंबई', 'कर्जपुत्र', 'कठीण होत आहे', 'गाणे', 'असा कसा दगड झालो', 'कबुतऱ्या', 'सर कर एकेक गड', 'दुवा', 'शीगवाला', 'व्हिजीट' आदि शीर्षक कविताएँ यथार्थ की ठोस आधार भूमि पर रची गई है । सुर्वेजी एक अनाथ बालक थे और इन्हें एक मजदूर ने पाला और पोसा है, इसलिए इन्होंने गरीबी, भूखमरी आदि को न सिर्फ नज़दीक से देखा है बल्कि भोगा भी है। सुर्वेजी भुक्तभोगी होने के कारण इनमें अभिव्यक्ति की सच्चाई है और यही कारण है कि कवि कभी कल्पनालोक में विचरण करते नहीं दिखायी देते हैं बल्कि यथार्थ की चट्टानों से टकराते हैं । इस संदर्भ में चंद्रकांत बांदिवडेकर का कथन

[130] कामायनी:एक पुनर्विचार, मुक्तिबोध, पृ. 37

महत्वपूर्ण है - “नारायण सुर्वे मराठी के श्रेष्ठ कवियों में स्वीकृत हुए हैं। एक अनाथ बालक बचपन में मजदूर के द्वारा पाला पोसा जाता है और किशोर अवस्था से ही उनकी शिक्षा दुनिया के खुले विद्यापीठ में होने लगती है। मुंबई फुटपाथ, झोपडपट्टी, मजदूरों का दारिद्र और उनके शारिरिक कष्ट, शोषितों की नरक यातनाएँ, देशी शराब में यातनाओं को भूलने का प्रयास करनेवाले लोग, विवशता की चरम सीमा तक पहुँची वेश्याएँ, पेट की आग बुझाने के लिए अपना बचपन और यौवन घोर परिश्रम में झोंक देनेवाले युवक, जीवन की मजबूरियों और तानाशाही पुलिस के बीच पिसते मनुष्य । यह था नारायण सुर्वे का यथार्थ। लेकिन यह भी अधूरा चित्र है । इसके बीच विवेक करते हुए जीवन जीने की जन्मजात प्रवृत्ति और मनुष्य के प्रति प्रगाढ़ आंतरिक लगाव इत्यादि असाधारण गुणों के आधार पर यह सर्वहारा बालक एक मराठी श्रेष्ठ कवि बन जाता है। नारायण सुर्वे की अभावग्रस्त जिंदगी का, उनके अपार कष्टों का, उनके जीवन संघर्ष का स्वरूप अलग से देखने की जरुरत नहीं है। उनके समूचे काव्य में इसका ठोस प्रतिबिंब मिलता है ।"[131]

नारायण सुर्वे यथार्थ से भाग कर कल्पना लोक में विचरण करनेवालों में से नहीं है बल्कि पैर जमाकर खडे होनेवालों में से है । उन्होंने जाहिरनामा कविता संग्रह के अंत में ’कविता और मैं’ शीर्षक से जो लेख लिखा है वह उनकी यथार्थ दृष्टि को उजागर करनेवाली है

“मनुष्य के बारे में और मनुष्य के लिए ही हम लिखनेवाले लोग है यह दायित्व मैं कभी भी नहीं भूला । इन करोडों लोगों से नाता तोडकर मैं अलग नहीं होना चाहता । यहीं लोग मेरे स्वप्न के विषय है । खुद मुझे जिते हुए बहुत सारे अच्छे और बुरे अनुभव आए है और इन अनुभवों का यदि मैं सजीव अविष्कार, उनमें स्थित संघर्ष, वैश्विक अनुभव इनका जिवंत, कलात्मक और यथार्थ रूप से चित्रण कर सका तो मेरे लिए यह बहुत है । इसीलिए संघर्ष के लिए पैर जमा कर खडे रहो, भागो नहीं बदलों ऐसा मुझे अनुभव ने ही सीखाया है ।"[132]

---

[131] कापडणीस, नारायण सुर्वे, पृ.5

[132] जाहीरनामा, नारायण सुर्वे, पृ.50

सुर्वे उन लोगों में से है जो यथार्थ की भवभूमी पर चलते हैं। भरपेट भोजन किया हुआ व्यक्ति चाँद को जब देखता है वह कई उपमाओं से या उपमाएँ देकर उसका चित्रण करता है। उसे चाँद झरोकों में से उदित होता दिखायी देता और साथ ही सीतारों से परे एक दुनिया दिखायी देने लगती है। किंतु किसी भूखे आदमी को वही चाँद रोटी की तरह दिखायी देता है। 'गाणे' शीर्षक कविता में कवि कहता है कि यदि हमारा भी पेट भरा होता तो हम भी किसी की याद करते -

"भरल्या पोटाने अगा पाहातो जर चंद्र
आम्हीही कुणाची याद केली असती "[133]

श्रमिक अंत तक श्रमिक ही रह जाता है और इनके बच्चों को श्रम विरासत में मिल जाता है। श्रम करनेवाले श्रमिक दूसरों के लिए साफ-सुथरे घरों को बनाते हैं किंतु खुद नरकतुल्य झुग्गी झोपड़ियों और गंदगी में रहते हैं। इन झुग्गी-झोपड़ियों में रहनेवालों को उस जमीन को हड़पने के लिए पुलिस के सहारे उन्हें वहाँ से भगाया जाता है। तब से ये लोग किसी तरह से अपना घर रूपी दुकान दूसरे नाली के किनारे सजाते हैं इसका चित्रण 'मुंबई' कविता में किया गया है -

"तोच मी, तेच आम्हीं, ह्या तुझ्या वास्तुशिल्पाचे शिल्पकार
तुझ्या सौंदर्यात हे नगरी दिसोंदीस घालीत असतो भर
नरकासम चाळीत राहून स्वच्छ करतो तुझे रस्ते
उठवले जातो कधी, दंडुकेवाले जसे उठवतात फिरस्ते
पुन्हा उचलतो संसार थाटतो दुजा बाजूच्या खाचरात
जगत आहोत ह्या संस्कृतिच्या सडत आलेल्या वारशात "[134]

निम्न वर्ग के बच्चों के जन्म से लेकर शादी-ब्याह और मरने के उपरांत अंतिम क्रिया की विधी तक के लिए उसे कर्ज लेना पड़ता है। किस तरह श्रमिक वर्ग कर्ज में पैदा होकर अंतत: कर्ज में ही डूबकर ही मर जाता है। इसका यथार्थ चित्रण 'कर्जपुत्र' कविता में किया गया है।

---

[133] माझे विद्यापीठ, नारायण सुर्वे, पृ.32
[134] माझे विद्यापीठ, नारायण सुर्वे, पृ 35

'कबुत़्या' शीर्षक कविता में एक लाईनमन तार जोड़ने के लिए खंबे पर चढता है और ऊपर बैठे कबुतर के साथ जो संवाद करता है उस संवाद के माध्यम से भी यथार्थ चित्रण किया गया है। जब वह खंबे पर चढता है तो उसे लगता है कि वह मनुष्यों से उँचा उठ गया है । पसीना हवा से जब पसीना सूखने लगता है तब वह सुख क्या और कैसा होता है यह कबुतर को समझनेवाला नहीं । तार जोडनेवाला लाईनमन खंबे पर चढने और उतरने में ही अपना जीवन कैसे बरबाद करता है इसका मार्मिक चित्रण इस कविता में किया गया है -

"आयुष्य बरबाद झाले आपले

खांबावर चढण्या-उतरण्यात,

तारा जोडन्यात,

अंगातला घाम वाळवण्यात,

खांबावर बसून लाईनी चढवतो ना रे,

तेंव्हा मानसांपासून कितीतरी वर असतो

आभाळावर पसरल्यासारखा वाटतो मीच मला

अशावेळी, घामातली मस्ती तुला कळायची नाही । "[135]

हमारा देश कृषिप्रधान देश है और दूध उत्पादन में विश्व में अग्रसर है किंतु आज इस पूँजीवादी व्यवस्था के कारण किसी भी शहर में दूध आसानी से नहीं मिलता जितनी आसानी से शराब मिलती है । शराब का नाम लेते ही हम तक पहुँचा देनेवाले लोग किस तरह तैयार होते हैं इसका यथार्थ चित्रण 'सर कर एकेक गड' कविता में किया गया है। कवि व्यंग्य में कहता है कि हमने सुना है कि दूध से नहानेवाला भगवान भी आज देशी दारू से नहा रहा है -

"दुधाचं दुकान विचारलं तर,

'आ' वासून बघतात,

देशी विचारा,

तरंगत दारावर पोचवतात.

---

[135] नव्या मानसाचे आगमन, नारायण सुर्वे, पृ 18

दुधानं अंघोळ करणारा आपला देवसुध्दा

देशीतच अंघोळ करतो बाबा। "[136]

बहुत बडी संख्या में श्रमिक काम की तलाश में मज़दूर अड्डे पर बैठ जाते हैं ताकि कोई मालिक आकर काम पर ले जाए । ये लोग रोज अलग-अलग ढंग के काम पर लग जाते हैं । इनमें से कुछ लोग ईंट पर ईंट रचते हुए घर बनाने का काम करते हैं , कुछ लोग गड्डा खोदने का, कुछ लोग गंदे नाली में उतरकर कचरा निकालते है , कुछ लोग सड़क बनवाने के काम में लग जाते है । इस तरह ये श्रमिक शहर/महानगर को विकसित करने में लगे हुए है । ये सब इस महानगर के शिल्पकार होते हुए भी शहर के लोग इन्हें परायों की तरह क्यों और कैसे देखते हैं इसका यथार्थ चित्रण 'बिगारी नाका' कविता के माध्यम से किया गया है -

“कळत नाही त्यांना

शहरातील लोक

परक्यासारखे का वागतात?

इतके करुनही

ते असे उद्धट का होतात ?"[137]

‘व्हिजीट’ कविता में शहर से एक सरकारी डॉक्टर गाँव आता है तब उस गाँव के लोग इलाज के लिए लंबी कतार में खडे हो जाते हैं । कूल मिलाकर देडसो लोग हैं जिनमें से तीस बच्चें हैं जिनके दांत किडे और कपडे मैले है। पुरुष सत्तर है, कुछ को जॉनडिस है तो कुछ को क्षय और नसबंदी के लिए एक भी तैयार नहीं है । स्त्रियाँ पचास है उनमें कई लोगों को ऐनिमिया, क्षय, नाक का टपकना है और हर घर में पाँच-पाँच बच्चे हैं यह भी कुटुंब नियंत्रण के लिए तैयार नहीं है। डॉक्टर भत्ता और भाडे के पैसे जेब में डालकर बस पकड लेता है। इस प्रकार गाँव के लोगों में अशिक्षा और अज्ञान के कारण कितना अंधकार छाया हुआ है इसका यथार्थ चित्रण इस कविता में किया गया हैं ।

---

[136] नव्या मानसाचे आगमन, नारायण सुर्वे, पृ24

[137] नव्या मानसाचे आगमन, नारायण सुर्वे, पृ30

इनकी अन्य कविता 'कुटुंब' में कवि ने जो यथार्थ चित्रण किया है वह हर पाठक को सोचने पर मज़बूर कर देती है। इसमें एक ऐसा परिवार है जो कपडे के अभाव में रात को सोते समय कपडे उतार कर नग्न सो जाते है और सुबह होते ही वही कपडे पहन कर बाहर की दुनिया में अपनी इज्जत बचा रहे हैं।

लोकशाहीर अण्णाभाऊ साठे की कई कविताओं में संवेदना का केंद्र मजदूर है। श्रमिक जीवन चाहे वह किसान हो या मिल मज़दूर उनकी समस्याओं का यथार्थ चित्रण इनके पोवाडा और लावणी के माध्यम से हुआ है। किस तरह पूँजीपति, सरकार और साहूकार लोगों ने मजदूरों का शोषण किया इसका चित्रण 'मुंबई गिरणी कामगार' में किया है -

"गिरणी मालक भांडवलदार / तसेच सरकार / बेदरकार / कदर
मजुरांची मुळी न करता / पिळून शोषित होते रक्ता
गाजवीत वरती आपली सत्ता ।।जी।।"[138]

इसी कविता में साठे ने मिल मजदूरों का भूक-हड़ताल करना और उस हड़ताल में कई लोगों की मृत्यु हो जाना आदि का चित्रण किया है। हड़ताल करते समय जाधव, गणपत पानसरे, विठू कृष्णा कदम, शिवचरण सुचित, बाबू रघुनाथराव, शंकर दाबे, दामाजी केशव आदि वीरों पर गोली चलाकर किस तरह से पूँजीपति सरकार ने हड़ताल, आंदोलन का गला घोंट दिया इस दमनकारी नीति का यथार्थ चित्रण इनकी कविता में दिखायी देता है। आगे इस कविता में श्रमिक वर्ग का वह यथार्थ चित्रण किया गया है जो रात-दिन मेहनत कर महानगर के सुखों का निर्माण करते हैं किंतु उन्हें सुख नाम की चीज़ तक पता नहीं हैं। ' दुनियेची दौलत सारी' शिर्षक कविता में उस किसान का चित्रण है जो अपनी मेहनत से फसलरूपी सोना उगा रहा है। किंतु साहुकार उसे बैठे-बैठे हड़प रहा है।

उनकी अन्य कविता 'मुंबईची लावणी' में सामाजिक विषमता का वह यथार्थ रूप दिखाई देता है जो एक वर्ग रेल से सफर कर रहा है तो दूसरा विमान से और तीसरा वर्ग वह है जो हाथगाडी को ढकेलते-ढकेलते थक जा रहा है।

---

[138] अण्णभाऊ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या - लोकवाङमयगृह, पृ.13

'कथा मुंबईची' कविता में मुंबई शहर में स्थित निम्न वर्ग जो कभी मज़दूरी करते दिखायी देते है तो कभी काम की तलाश में मारा-मारा फिरते हुए। गरीबी यहाँ तक छाई हुई है कि पेट की आग बूझाने के लिए कोई भीख माँगता है तो दूसरा सर्कस का खेल दिखाता है। उसी नगर में चार पैसों के लिए जेब काटनेवाले चोर आदि का यथार्थ चित्रण इस कविता में हुआ है -

"इथं मानूस भवऱ्यावाणी फिरतो ।।

इथं दिसती उंच माड्या, लांब झिपऱ्या शेंड्या दाढ्या

इथं मोकळ्या जागेत गाढवावाणी

खुशाल लोळती कैक झोपड्या

कोण फिरतो देऊन इथे, कमरेला चिंध्यांच्या तिड्यावर तिड्या

कोण भीख मांगतो इथं टेकीत काठी मारीत उड्यावर उड्या"[139]

यथार्थ के प्रति वे कितने सजग थे इसका प्रमान उनका उपन्यास फकिरा की भूमिका में दिये कथन से स्पष्ट होता है " प्रतिभा को वास्तव की जरुरत होती है, कल्पना को भी जीवन के पंख होना आवश्यक है। अनुभूति को सहानुभूति का साथ मिले तो हम क्यों लिखते हैं इसका पता ही नहीं चलता । जिनके बारे में मैं लिखता हूँ वे मेरे मनुष्य होते हैं । "[140]

अण्णाभाऊ साठे ने ' काळा बाजार' पोवाडे के माध्यम से महँगाई का यथार्थ चित्रण करते हुए उसके कारणों को भी बताया हैं। साहूकार लोग माल को दबाकर रखते हैं और बाद में उसे दूगने दाम पर बेचकर नफा कमाते हैं । इस काले बाज़ार से लोगों का शोषण कैसे किया जा रहा है इसका चित्रण उन्होंने किया है -

'काळ्या बाजाराचा रोग आला / मागं लागला / गोरगरिबाला /

सुखाचा घास मिळना झाला / काळ हा आता बिकट आला /

वरती वरती बैसले चोर नफेबाज / करिती ते आपुले काज'

म्हणती देशात आमुचे राज।

---

[139] लोकवाङमयगृह, पृ.31

[140] शाहीर अमर-अण्णा, पोतदार, पृ.54

सारा माल ठेवितो दाबून / विकती चोरुन / दामदुपटीनं /

नियंत्रण कायदा दिला उडवून / किमती मनसोक्त घेती अडवून /

काढीती लोकानांच बडवून ।।"[141]

शाहीर अमर शेख ने ' बेडकी आणि तरणी' कविता के माध्यम से यौवन को दो आने में बेचनेवाली युवतियों का यथार्थ चित्रण किया है ।

“दोन आण्याला विकते यौवन

डबक्याकाठी अभिमानाने

यौवन कसले हाड कातडे

कुतरडे चघळित असलेले”[142]

1965 में चीन ने साम्राज्यवाद की नीति अपनाकर भारत पर आक्रमण किया था। चीन काल होकर किस तरह छूरा लेकर भारत पर वार कर रहा था इसका यथार्थ चित्रण अमर शेख ने ' बर्फ पेटला' कविता के माध्यम से किया है -

"घडू नयेत ते आजला घडते

स्वातंत्र्याचे बाळ रांगते

स्वतंत्र विहराया धावते

बंधू चिनी सुरा घेवुनी काळ होऊनी आला ।।"[143]

अमर शेख ने भी साठे की तरह 'नरक ही खुजा' कविता में अकाल, मँहगाई, भूखमरी, बेरोजगारी और काला-बाज़ार आदि के कारण सामान्य जनता किस तरह पिसी जा रही है इसका यथार्थ चित्रण किया है-

“ओझ्यानि करांच्या जीव जिकरिस येतो

दुष्काळ अजगरागत पिच्छा पुरवितो

अन् काळया बाजाराची काळी छाया

महागाई त्याची बहिण पसरवि माया

---

[141] शाहीर अमर-अण्णा, पोतदार, पृ.213

[142] कलश- अमर शेख, पृ.22

[143] बर्फ पेटला, संकलन, अजीज नदाफ, पृ.41

मग उपासमारी, बेकारी, पिळवणूक"[144]

इसके अलावा 'मी', 'चरित्र माझे' आदि कविताओं के माध्यम से अमर शेख ने यथार्थ चित्रण किया है। अमर कल्पलोक में विचरण करनेवाले कवि नहीं थे वे हमेशा सत्य की खोज में रहते थे। उन्हें सत्य बहुत प्रिय था। जिस दुनिया में श्रम को किमत नही दी जाती उस दुनिया को आग लगाने की बात करते हैं -

"सत्य पळाले जगातुनी या

लावा या जगताला आग

श्रमास नाही कवडी किंमत

मानुस हिंमत झाली खाक..."[145]

2.3 सामंतो, महाजनों और पूंजीपतियों के प्रति रोष, घृणा तथा व्यंग्य

हिन्दी मार्क्सवादी कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से जमींदार, सामंत, पूंजीपति, भ्रष्ट राजनीतिक लोगों द्वारा हो रहे शोषण का डटकर विरोध किया है । अंग्रेजों के शोषणनीति का एक पक्ष जमींदारी व्यवस्था थी । जमींदारी व्यवस्था को भारत में निरंतर जारी रखते हुए जमींदारी की सहायता से इस विशाल देश पर अधिपथ्य जमाना और अपना उल्लू सीधा करने के लिए भारत को कृषिप्रधान देश के रूप में देखने में ही उनका फायदा था । राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेज, नगरों में पूंजीपति और गांवों में जमींदार, जनता का अमानवीय शोषण कर रहे थे। आजादी के बाद राष्ट्रीय नेताओं ने गाँव के जमींदार, सामंतों को समाप्त करने की योजना बनाई किंतु उनको उतनी सफलता नहीं मिली जितनी मिलनी चाहिए थी । जमींदार अपनी पूरानी परंपरा को चलाना चाहते हैं और जोर-जुल्म से किसानों का शोषण करते हैं ।ये धनपिपासु जबरदस्त अहंकारी और विलासिताप्रिय होते हैं । लगान वसुल करना, किसानों को बेगारी से इन्कार करने पर उनकी की पिटाई करना, उनके घरों को जलाना, उनपर झूठे इल्जाम लगाना, झूठे मुकदमें दायर करना, पुलिस कर्मचारियों को रिश्वत देकर उनके माध्यम से विविध हथकंड़े अपना कर किसानों का शोषण करते हैं । नागार्जुन की कई

---

[144] शाहीर अमर-अण्णा, पोतदार, पृ.123

[145] अमर अण्णा, डॉ. माधव पोतदार, पृ.123

कविताएँ इन सभी बातों को बखूबी प्रकट करती है । आजादी के बाद किसान, मजदूर, शासन और जमींदार सभी के चित्र स्पष्ट करते हुए 'बीते तेरह साल' कविता में कवि ने स्पष्ट कहा है -

"लाख-लाख श्रमिकों की गर्दन कौन रहा है रेत,

छीन रहा है कौन करोडों खेतिहरों के खेत

बलिहारी कागजी खुशी की क्यों न बजाए बीन,

फूटे बाँध से बालू बोले हम भी है स्वाधीन,

अश्वमेध का घोडा निकलता चित है चारो नाल

कौन कहेगा आजादी के बीते तेरह साल।"[146]

नागार्जुन ने अपनी कविताओं में किसी को नहीं बक्शा, वे प्रगतिवादी कवि होने के कारण उन्हे देश और जनता से असीम प्यार है। संपूर्ण देश के दुख और दर्द का चित्रण उनकी कविताओं में हुआ है । जमींदार और सामान्य जनता के बीच के अंतर को कवि इस प्रकार चित्रित करता है -

"शादी क्या है, वैभव का यह उन्मत प्रदर्शन

रेशम की यह चकाचौंध, मणिमुक्ता का उद्दीपन

पास- पड़ोस उजागर है, बिजली लेती अंगडाई

बिजली की ट्यूबों से भास्कर क्या पंडाल सजा है

कौण कहेगा इसे रात, बस योंही एक ही बजा हैं।"[147]

जमींदार और सामान्य जनता के बीच इतनी विषमता होने के बावजूद भी कवि को विश्वास है कि अब समय परिवर्तित हो रहा है। नौकरशाही और जमींदारियाँ समाप्त हो चुकी हैं । कृषकों पर जमींदारी द्वारा जो आज तक अन्याय-अत्याचार हुए है वे समाप्त हो जाएंगे । किसान और जमींदारों को अपनी-अपनी भूमि मिलेगी जो अब वे जो बोंयेंगे वह उन्हें प्राप्त हो जायेगा । इस प्रकार सुख और समृध्दि फिर से धरती पर आएगी । कवि नागार्जुन 'लाल भवानी' शीर्षक कविता में लिखते हैं -

---

[146] हजार-हजार बाहोंवाली, नागार्जुन, पृ.120

[147] प्यासी पथराई आँखे, नागार्जुन, पृ.120

"सेठ और जमींदारों को नहीं मिलेगी एक छदाम
खेतखान-दुकान मिले सरकार करेगी दखल तमाम
खेत मजूरों और किसानों में बँट जाएगा
नहीं किसी कमकर के सिर पर बेकारी मँडराएगी
नौकरशाही का यह रद्दी ढाँचा होगा चूरम-चूर
'सुजला-सुफला' के गायेंगे गीत प्रसन्न किसान मजूर"[148]

सामंती शोषण के अंतर्गत ही सामंत, पूंजीपति, और राजनीतिक लोगों का समावेश होता है। साम्राज्यवादी शासन ने भारत के सामंतों को अपना दूर्ग बनाया था। आजादी के बाद पूंजीवादी शासकों ने साम्राज्यवादियों से संबंध तोड़े और सामंती दूर्ग को छिन्न-भिन्न कर दिया। साम्राज्यवाद और सामंतवाद से समझौता यह पूंजीवादी नीति का ही एक अंग था। उन्हें यह समझौता सन् 1947 में न दिखा सन् 1982 में दिखा। नागार्जुन लगातार इस दिशा में सचेत रहे हैं। इस संबंध में उनकी कई कविताएँ महत्वपूर्ण हैं। स्वाधीन भारत में उपनिवेशवादी प्रवृत्ति कायम रखने में निर्बल की भूमिका प्रमुख रही है। जवाहारलाल नेहरू के प्रधान मंत्रित्व के कारण ब्रिटन की महारानी के गमन, आगवानी के लिए भारत सरकार का तत्पर होना नागार्जुन जैसे जनकवि को क्रोध दिलाता है।

मार्क्सवादी कवियों ने पूंजीवादी लोगों के प्रति घृणा का भाव व्यक्त करते हुए मजदूर, मेहनत कश वर्ग के प्रति सहानुभूति जतायी है। कृषक जीवन में शोषण प्रच्छन्न रूप से चलता है, जब कि औद्यौगिक समाज में शोषण एक स्थायी प्रश्न है। औद्योगिक संस्कृति में जो पूंजी की बाजार में दौड़ धूप होती है, उसका मूल आधार अर्थ पर आधारित जीवन-विधान है। उनकी आर्थिक व्यवस्था में पूंजीपति और मजदूर दोनों ही समान रूप से प्रतिद्वंदी है पर समभागी नही हैं। धनिक वर्ग अपनी पूंजी के बल पर मजूदरों का शोषण करता है तो श्रमजीवी मेहनत के आधार पर सर्वहारा वर्ग की स्थापना के लिए अपनी समानता और हकदार होने का दावा करता है। कवि नागार्जुन ने समय-समय पर पूंजीपतियों पर प्रहार किया है। पूंजीपति जो कृषकों, मजदूरों पर अन्याय-अत्याचार करते हैं उनके श्रम का उचित मूल्याकंन नहीं करते, जिसके कारण उनका श्रम उपेक्षित रह जाता है। कार्ल मार्क्स ने भी यही कहां था कि, "श्रमिक पूंजीतंत्र के लिए जितना ही अधिक उत्पादन करता है उतना ही कम उसे

[148] प्यासी पथराई आँखे, नागार्जुन, पृ.118

अपने उपभोग के लिए मिलता है । जितना ही अधिक बाह्य मूल्य निर्मित करता है, वह खुद उतना ही अधिक मूल्यहीन हो जाता है, अनादूत होता है । वह सुंदर वस्तुओं का उत्पादन तो करता है, किंतु खुद कुरूप होता जाता है। उसके उत्पादन जितने सभ्य बनते है, श्रमिक खुद उतना ही बर्बर बनता है । श्रम क्रमशः ताकतवर बनता है और श्रमिक क्रमश: शक्तिविहिन । श्रम जितना ही पुष्ट होता चलता है, श्रमिक उतना ही अकुशल होता जाता है श्रम से सौंदर्य की उत्पत्ती होती है, किंतु श्रमिकों के लिए कुरूपता । यद्यपि श्रम को बदला जा सकता है, किंतु श्रमिकों के एक भाग को क्रूरतम शारीरिक श्रम की ओर धकेला जाता है तथा दूसरे भाग को मशीन बना दिया जाता है।"[149] इसलिए मार्क्सवादी कवि पूंजीवादी व्यवस्था को सामाजिक विषमता का मूल कारण मानता है। उसी के कारण ही सामाजिक विकृतियाँ निर्माण होती है, इन पूंजीविदियों का चित्र खीचते हुए कवि नागार्जुन लिखते हैं -

"खादी ने मलमल से अपनी साठ- गांठ कर ली है।

बिडला, लाला डालमिया की तीसों दिन दीवाली है।।"[150]

नागार्जुन सामाजिक विषमता का मूल स्त्रोत पूंजीवादी सभ्यता और संस्कृति को मानते हैं , इसलिए उसे नष्ट करने की भी बात करते हैं। उनका मानना है कि एक ओर भूख से तडपती अभावों में पिसती कृषक- श्रमिक जनता है तो दूसरी ओर उनके श्रम के फल को हडप कर ऐश्वर्य और भोग विलास में डूबे मुट्ठी भर लोग । नागार्जुन विषमता की स्थिति को देख तड़प उठते हैं और वह तडप कविता के माध्यम से फूट पडती है -

"जमींदार है, साहूकार है, बनिया है, व्यापारी है

अंदर-अंदर विकट कसाई बाहर खद्दरधारी है

सब घुस आए, भरा पड़ा है भारत माता का मंदिर

एक बार जो फिसले अगुआ फिसल रहे है बार-बार ।"[151]

नागार्जुन 'धन-कुबेरों' को 'धन पिशाच', 'कुबेरे के छोने' आदि नामों से पुकार कर उनके प्रति घृणा प्रकट करते हैं -

---

[149] प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रूप, डॉ. रवीरंजन, पृ.135

[150] इस गुब्बारे की छाया में , नागार्जुन, पृ.63

[151] इस गुब्बारे की छाया में, नागार्जुन, पृ.63

"अंदर पीति भोज के टेबुल बाहर घिरी कनाते

धन पिशाच मुस्काते हैं घुल के करते हैं बातें ।"[152]

नागार्जुन ने पूंजीपतियों की व्यंग्य के माध्यम से धज्जिया उड़ायी हैं । एक कविता में पूंजीपति स्त्री पर व्यंग्य करके अपने घृणा को अभिव्यक्त किया हैं -

"चुल्लु में लेकर झांका तो बोला ठाकुरिया का पानी

देखों बड़ी कार से उतरी, बैठ गई मोटी सेठानी

चलने दो दस-बीस कदम, बस थक जायेगी

जहाँ बेंच है मुश्किल से वापस आयेगी

पूछो जाकर किस चक्की का रानी जी खाती है आटा

यह लो जमूहाई लेकर वह खींच गई कैसा सन्नाटा ।"[153]

केदारनाथ अग्रवाल ने भी अपनी शेकडों कविताओं के माध्यम से श्रमिक वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए सामंतों, महाजनों, पूंजीपतियों के प्रति घृणा का भाव व्यक्त किया है। श्रमिक सुंदर वस्तुओं का उत्पादन तो करता है किंतु वह खुद कुरूप हो जाता है। वह पूंजीतंत्र के लिए जितना ही अधिक अत्पादन करता है उतना ही कम उसे भोगने को मिलता है। इस व्यवस्था में पूंजीपतियों की यही चाल है कि धनिक और धनिक बने, गरीब और गरीब बनता जाए । मार्क्सवादी कवि उन तमाम ताकतों के वर्ग- चरित्र से अच्छी तरह वाकिफ है जिनके कुचक्रों के कारण श्रमजीवी वर्ग व्यवस्था का नरक भोगने के लिए अभिशप्त है। 'कहे केदार खरी' में केदारनाथ अग्रवाल कहते हैं-

"जानता हूँ मैं तुम्हारे,संकटों को जानता हूँ

सर्वनाशी शोषकों को, कंटकों को जानता हूँ

स्वार्थ सेवी पेदुओं को वंचकों को जानता हूँ

मानवी स्वाधीनता के भंजकों को जानता हूँ ।"[154]

---

[152] प्यासी पथराई आँखे, नागार्जुन, पृ.34

[153] पुरानी जुतियों का कोरस -नागार्जुन पृ. 33

[154] कहे केदार खरी खरी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.88

उत्पादन और वितरण की मौजुदा पूंजीवादी प्रणाली में ये सर्वनाशी शोषक जँहा कम से कम काम करके केवल पूँजी के बलबूते पर अधिकाधिक मुनाफा कमाते हैं वही श्रमिक वर्ग को हाडतोड़ मेहनत करने के बावजूद दो वक्त की रोटी तक मयस्सर नहीं होती । इसका चित्रण 'डांगर' कविता के माध्यम से किया गया है। इस कविता में केदार ने पूंजीपति को 'स्वार्थ सेवी' के रूप में प्रतीपादित करते हुए उस पर करारा व्यंग्य किया है

"ये कामचोर / आरामतलब / मोटे तों दियल भारी भरकम

हट्टे-कट्टे / सब डाँगर ऊंघा करते हैं, / हम चौबीस गंटे हांफते है।"[155]

सुख भोगी वर्ग का यह निष्क्रिय जीवन यह सिद्ध करता है कि वे परजीवी है, मजदूर वर्ग के बल पर शक्ति संचय करते जा रहे हैं । जिन मेहनत कशों के बल पर धन का संचयन करते हैं उसी धन के सहारे वे लोग धर्म, पंचायत, को अपने आधिन करके निन्म वर्ग का शोषण करते हैं । उसी धन से और धन कमाने के चक्कर में निम्न वर्ग को पैसा ब्याज से देकर उनका खून किस तरह से पूंजीवादी चुसते हैं इसका चित्रण केदार ने'गाव का महाजन' कविता में व्यंग्य के माध्यम से किया है -

"वह समाज के त्रस्त क्षेत्र का मस्त महाजन,

गौरव के गोबरगणेश-सा मारे आसन,

नारियल-से सिर पर बाँधे धर्म-मुरैठा,

ग्राम-बधूटी की गौरी - गोदी पर बैठा,

नागमुखी पैतृक सम्पत्ति की थैली खोले,

जीभ निकाले, बात बनाता करुणा घोले

ब्याज-स्तुति से बाँट रहा है रूपया-पैसा,

सदियों पहले से होता आया है ऐसा ।"[156]

औद्योगिक संस्कृति की यह अर्थिक कुटिलता है कि वह सर्वहारा वर्ग की उन्नति को हर कदम पर नोच डालता है। श्रमजिवियों के सहअस्तित्व की संस्कृति पूँजीवादी को मान्य नहीं है

---

[155] गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.50

[156] फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.82

एसे आर्थिक तंत्र के कारण एक ओर पूंजीपति सशक्त बनता जा रहा है, तो दूसरी ओर मजदूर निरंतर अभाव का जीवन व्यतीत कर रहा है । केदार ने 'रनिया' कविता के मध्यम से पूँजीवादी मानसिकता का चित्रण किया है जो हमेशा यही सोचता है कि व्यवस्था न बदले किंतु रनिया दुखी और अभाव की जिंदगी जी रही है इसलिए व्यवस्था परिवर्तन चाहती है -

"रनिया कहती है, जग बदले

जल्दी बदले-जल्दी बदले।

मैं कहता हूँ कभी न बदले

कभी न बदले-कभी न बदले।"[157]

प्रगतिवादी चेतना पूंजीवादी शोषण, दमन और अत्याचार से इतनी आक्रांत है कि उससे विमुख होकर अपनी समष्टि चेतना के बल पर विश्वस्त होकर स्वस्थ, गतिमान सक्रिय जीवन की आकांक्षा से पुरोगामित है । पूँजीवादी और राजनीतिक लोगों का घनिष्ठ संबंध है, अधिक मात्र में तो पूँजीवादी ही राजनैतिक लोग है जो दोनों मिलकर गरीब जनता को लूट रहे हैं । केदार ने अपनी राजनीतिक कविताओं में बहुत तरह के प्रयोग किये हैं जैसे खुसरों की शैली का आधार बनाकर लिखा था -

"दुख ना गयो, दरिद्र ना छूटै,

चोरबाजारी दिन –दिन लूटै

धीरज धनुही फुसफुस टूटै,

ऐसि राज का भंडा फूटै।"[158]

सामाजिक जीवन की सारी उलझनें शोषक और शोषितों मे पाई जानेवाली असमानता के कारण ही है । गिरे हुए जीवन और उनके मूल्यों का स्वार्थी समाज या पूँजीवादी-वर्ग से क्या उध्दार होगा ? सर्वहारा-वर्ग जो जनहित के लिए, सामूहिक जीवन को दृष्टि में रखकर मेहनत करता है, वही मानवीय संस्कृति का पथ प्रशस्त कर सकता है । उनकी वर्गवादी चेतना ही ऐसी तनाव भरी है कि वह अपने शोषक समाज और उनके पददलित

---

[157] गुलमेंहदी - केदारनाथ अग्रवाल पृ.49

[158] कहे केदार खरी खरी - केदारनाथ अग्रवाल , पृ.95

संस्कारों को समान कर मानवता के दिशा-दर्शन कराने में सक्षम है "मैं कलेजा शोषकों का फाडता हूँ / सूद खोरों को, / मिलों के मालिकों को, भूमि के ह्रदय धरणी धरों को, / मैं प्रलय के साम्यवादी आक्रमण से मारता हूँ। / और उनके अपहरण की, / दिग्विजयनी सभ्यता को, / सर्वहारा की नवोदित सभ्यता से जीतता हूँ।"[159]

सर्वहारा-वर्ग की चेतना जन सामान्य की है, उसमें किसी एक वर्ग का एकाधिपत्य नहीं हो सकता। मार्क्सवादी चेतना से युक्त मुक्तिबोध ने अपनी कई कविताओं में पूंजीपति और उनका साथ देनवाले को घृणा की दृष्टि से देखा है। पूंजीवाद अपना स्वार्थ साधने के लिए लाखों मजदूरों का किस तरह से शोषण करके अपना उल्लू सीधा करते हैं इसे मुक्तिबोध ने 'कामायनी एक पुनर्विचार' में बताया है -"पूंजीवाद अपने मुनाफे के लिए किसी की परवाह नहीं करता - नीति, संस्कार, संस्कृति, आर्दश, इत्यादि सब हट जाते हैं । केवल मुनाफा उसका लक्ष्य है । यह मुनाफा बहुसंख्य जनता के शोषण से ही प्राप्त हो सकता है, भले ही वह शोषण कानूनी शोषण हो या गैर-कानूनी बेईमानी से प्राप्त धना इस धन से फिर कारोबार बढ़ाया जाता है, व्यवसाय बढाए जाते हैं , उद्योग स्थापित किये जाते हैं कम से कम पूंजीवादी यह सोचता है जनता के सुख-शांति-विनाश से प्राप्त धन फिर व्यावसायिक औद्योगिक निर्माण में लगाया जाता हैं।"[160]

अपनी अधिकांश कविताओं में मुक्तिबोध ने पूँजीवाद पर कठोर प्रहार किया है । कविताओं के माध्यम से पूँजीवाद के अमानवीय रूप को उजगार किया है, उससे समाज में फैलनेवाली अलगाव की भावना का चित्रण किया है और उसे खत्म करने वाली सामाजिक शक्ति की ओर भी संकेत किया है। 'पूँजीवादी समाज के प्रति' कविता में उन्होंने पूँजीवादी व्यवस्था के सारे तामझाम को उसके शोषणकारी रूप को छिपाने का साधन कहा था और यह आकांक्षा प्रकट की थी कि उनका आक्रोश जनता के आक्रोश से मिलकर नष्ट कर दे 'सुखे कठोर नंगे पहाड़' उनकी एक जोरदार कविता है जो पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतीक है । कवि ने मजदूर नेता से यह आग्रह किया है कि वह उन पहाड़ों को अपने बाहु-बल से उठाकर इतिहास

[159] फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.77-78
[160] कामायनी: एक पुनर्विचार, मुक्तिबोध

के समुद्र में फेंक दे। कविता में पूंजीवादी व्यवस्था के मायावी रूप का यह वर्णन देखने लायक है - “मार्ग तिलस्मी, है जादुई देस...। / निज अंध गुहा की छत में तांत्रिक ने, असंख्य / आत्माएँ लटका दी, चिमगादड़ के समूह- सी उलटी ...।/ लटका नीचे सिर, ऊपर करके घृणित पैर/ढीले फैलाकर रात्रि-श्याम, / असगुनी पंख /उलटी लटकी हैं / पराजिता दयनीया, आत्माएँ असंख्य ! / भूखे स्यारों की मलिन देह / में अगिन मानवात्माएँ कर दीं । हाय! कैद। / जो इधर-उधर पशु रहे घूम / मुख को नत कर, वे श्वान और / अति वृध्दसिंह ।”[161]

‘भविष्यधारा’ उनकी एक लंबी और उल्लेखनीय कविता है जिसका विषय भी पूंजीवाद ही है। इस कविता में एक वैज्ञानिक है जो कवि भी है। वह पूंजीवादी व्यवस्था के उच्छेदन के लिए समीकरण के कुछ सूत्र अविष्कृत करता है, जिन्हे पूंजीपति-वर्ग चुराकर जला देता है । मुक्तिबोध कहते हैं कि वह कब तक ऐसा करेगा इतिहास की गति रूकती नहीं उसे पुन: अविष्कृत करेंगे । मुक्तिबोध को पूरा विश्वास है कि एक दिन पूंजीवाद का समूल जरूर नष्ट होगा । ‘अंत: करण का आयतन’ कविता में कवि को वर्तमान पूंजीवादी विश्व में दोनों प्रकार के दृश्य दिखाई पडते हैं - ध्वंस के भी और निर्माण के भी, और निराश होने की जगह वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इन परस्पर विरोधी शक्तियों के संघर्ष की प्रक्रिया में ही विश्व का क्रांतिकारी रूपांतरण होता है । "गगन में, भूमि पर, सर्वत्र दिखते हैं /तडप मरते हुए प्रतिबिंब जग उठते हुए धुति-बिंब। / दोनोंकी परस्पर-गुंथन। / या उलझाव लहरीला, व उस उलझाव में / गहरे बदलते जग का चेहरा । "[162]

पूँजीवादी समाज में अमानवीकरण की जो प्रक्रिया चलती रहती है, उसका बहुत ही सशक्त वर्णन मुक्तिबोध की ‘ओ अप्रस्तुत श्रोता’ कविता मे देखने को मिलता है। इसमें उन्होंने पूंजीवादी व्यवस्था को एक अंधेरे-कारखाने के रूप में चित्रित किया है और कहा है -“हां अंधेर कारखाना यह। जिसकी लाल भड़क बेताब धमनभट्टी में/झोंक, खुद ही को रोज / आत्महत्या

[161] भूरी भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध , पृ.278
[162] चाँद का मुँह टेढा है, मुक्तिबोध, पृ 174-75

करता है व्यक्ति/ किंतु वह मरता नहीं/ वरन,/वह पुनर्जन्म पा / विकसित करता नया / एकदम नया पेट, धड,सांग, पुंछ और फंख / और फिर उड़ता फिरता चरता फिरता / खूब बोलता फिरता ।"[163]

पूंजीवाद के इस कारखाने में ही वे सारे धारदार औजार तैयार होते हैं, जो मस्तिष्क और ह्रदय के आर पार हो जाता है । मुक्तिबोध ने सिर्फ पूंजीपतियों से ही घृणा नहीं की है बल्कि उनका साथ देनेवाले, अपनी आत्मा को बेचनेवाले मध्यवर्ग से भी घृणा की है, जो कभी लेखक, पत्रकार, कवि आदि के रूप में कविता में आते हैं। 'जिन्दगी का रास्ता' शीर्षक लंबी कविता में मुक्तिबोध ने मध्यवर्गीय बुध्दिजीवियों का उल्लेख इस तरह से किया है

"यश लोलुप व्यक्ति की तेजोमयी सत्ता
आधुनिक आदमखोर रावण के घर पर
भिश्तीगिरी करती है,
पूंजीवादी उल्लू के साहित्यिक पट्टे
राजनैतिक रात में ऊंचे किसी छप्पर का आसरा लिए हुए
चीखा करते हैं... ।"[164]

आज मध्यवर्ग से आनेवाले अनेक ऐसे साहित्यकार हैं जो पूँजीवादी सरकारी और गैरसरकारी प्रतिष्ठानों के जरिए पूंजीवादी विचारधारा और संस्कृति के प्रचार में लगे हैं। इन सब पर भी मुक्तिबोध ने प्रहार किया है । जब जनता पूंजीवादी सत्ता से विद्रोह करती है, तो मध्यवर्गीय बुध्दिजीवी उस भयंकर प्रलय का सामाजिक रूप देखकर पूंजीपतियों के आंगन में खडे होकर उनसे अपनी प्राण-रक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं । मुक्तिबोध ने कविता के जरिए यह बतलाया है कि पूंजीपतियों को अपना ईमान बेचकर साथ देने से क्या परिणाम हुआ है -

"श्वेत - वस्त्र सभ्यता
का एक हाथ, एक पैर
भुतही हवा के किसी स्पर्श से
मर गया

---

[163] भूरी भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध , पृ.47-48
[164] भूरी भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध , पृ.196-97

कि यों आधे चेहरे को मार गया लकवा,

आधा होंठ फूलकर लटक गया एक ओर,

विद्रूप कि भयानक व्यंग्य-हास हंसकर ।"[165]

'अंधेरे में' इस कविता में मुक्तिबोध ने कई स्थलों पर मध्यमवर्गीय बुध्दिजीवियों का जिक्र किया है, और उन्पर तीखी टिप्पणी भी की है। काव्य नायक को जो जुलूस दिखलाई पड़ता है उसमें - "बैंड़ के लोगों के चेहरे / मिलते हैं मेरे देखे हुओं से। / लगता है उनमें कई प्रतिष्टित पत्रकार / इसी नगर के ।"[166]

इसी तरह मराठी कवियों ने भी अपनी कविता के माध्यम से जमींदारों, पूँजीपतियों और भ्रष्ट नेताओं पर कभी हल्के, कभी तीखे तो कभी व्यंग्यों के द्वारा प्रहार करते हुए उनके प्रती घृणा का भाव व्यक्त किया है। इन कवियों का मानना है कि इस देश में असमानता यदि टिकी हुई है तो इसका कारण यहीं लोग है । शाहीर अमर शेख, लोकशाहीर अण्णाभाऊ साठे और नारायण सुर्वे का जीवन मजदूरी का था । वे बचपन से मजदूरी करते आने के कारण इस विषमता का सूत्र कहाँ छिपा है वे अच्छी तरह से जानते हैं । निम्न वर्ग अपने श्रम से वस्तुओं का उत्पादन तो करता है किंतु पूँजीपति उसी वस्तु का उपभोग करने का मौका उन्हें नहीं देता। किसान, मजदूरों का रक्त पिकर ऐश्वर्य का उपभोग करनेवालों को कवि खत्म करने की बात करते हैं तो कभी तलवार हाथ में लिए धमकाते हैं ।

निम्ऩ वर्ग का शोषण करनेवालों साहूकार, पूँजीपतियों को साठे ने 'माझी मैना गावावर राहिली', कविता में चोर, हरामी आदि के उपनामों से नवाजा है। इस कविता में मुंबई में स्थित शोषण के माध्यम से पूरे निम्न वर्ग का चित्रण दिखायी देता है। साठे ने सामंत, महाजन और पूँजीपतियों को जितने अपशब्दों का प्रयोग किया है उतना मराठी और हिन्दी में किसी ने नहीं किया ।

"पैदास इथ भलतीच चोरांची, ऐतखाऊंची ।

---

[165] मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना, नंदकिशोर नवल, पृ.53

[166] अंधेरे में - मुक्तिबोध पृ.228

शिरजोरांची। हरामखोरांची। भांडवलदरांची । "[167]

उनकी अन्य कविता ' कालाबजार ' में भी नफाखोर साहूकार को चोर कहकर घृणा का भाव व्यक्त किया है -

"वरती वरती बैसले चोर नफेबाज।"[168]

अमर शेख ने भी अपनी कविता के माध्यम से पूँजीपतियों को कसाई, निर्लज्ज, नीच की संज्ञा देकर उनके प्रति घृणा का भाव व्यक्त किया है -

"हे धनिक कसाई त्याहुनही अति नीच

निर्लज्ज करावी अधमकृती त्यांनीच

मिळवण्या नफा बाजारपेठ हवि त्यांना

लष्करी योजना पेटविती युध्दांना"[169]

उनकी अन्य कविता 'तांबडं फुटल' में कवि अपने पत्नी का शोषण करनेवाले साहूकार, सामंतों को बैलों के पैरों तले रगड देने की बात करते है ।

"गेलि बाई एळ चल गाडी जुंपू

क्रांति गीत गात बैलं दापू

दुस्मान तुडवू गं टाचेखाली

गाडी जुपायची एळ झाली"[170]

अण्णाभाऊ साठे और अमर शेख का एक ही मकसद था वह है गुलामी से मुक्ति । इन दोनों में भाषिक स्तर पर मात्र अंतर है, अण्णा की भाषा समझाने के ढंग से है तो अमर शेख की आक्रमक। अमर की तरह अण्णा सामंतो, पूंजीपतियों, साहूकारों को बेशरम, निर्लज्ज, कसाई, नीच की संज्ञा देकर उनका तिरस्कार नहीं करते । अण्णा भी घृणा करते हैं किंतु जोश में आकर अपशब्दों का प्रयोग कर प्रहार नहीं करते । करते भी है तो आक्रमक तेवर से नही -

---

[167] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या- लोकवाङमयग्रह पृ.23

[168] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या- लोकवाङमयग्रह

[169] शाहीर अमर-अण्णा - डॉ.माधव पोतदार, पृ. 130

[170] अमर शेख यांचे पोवाडे, लोकगीते व कविता -सं. डॉ. अजीज नदाफ, पृ.33

"भांडवल शाहीचा चिवट केणा ।

वर-वर छाटलाय तरी जाईना

अन् जराशीबी शेती पिकू देईना

उपटुनी मुळी, घाल पायदळी"[171]

अण्णा ने इस कविता में शोषकों को 'चिवट केणा' कहा है। चिवट केणा एक घांस का प्रकार है जो खेतों में उगता है। यह केणा दूसरी फसल को बढने नहीं देता इसे ऊपर-ऊपर काटने पर फिर से उगता है। यहाँ के केणा पूँजीपति का प्रतीक के रूप में प्रयोग किया गया है। इसलिए कवि इसे जडों से उखाड फेंकने की बात करता है ।

नारायण सुर्वे की कविताओं में भी कई स्थानों पर हमें शोषितों का पक्ष लेकर शोषकों से घृणा का भाव दिखाई देता है। शोषकों के प्रति कवि घृणा इसलिए करता है कि बचपन से मजदूर के रूप में कार्य करने का कारण, पसीना बहानेवालों पर किस तरह से अन्याय होता है इसे वे भली-भाँति जानते हैं ।

खुद सुर्वे ने 'कविता श्रमाची' की भूमिका में कहा है - " हजारों मजदूर अपनी रोजी-रोटी पाने के लिए बडी आशा से मुंबई जैसे महानगरों में आते हैं । पेट की आग बुझाने के लिए जो भी, जैसा भी काम क्यों न हो करते हैं । किंतु इन श्रमिकों के पास गुजारा करने के लिए बेचने लायक कुछ नहीं होता श्रम के अलावा । श्रमिक के श्रम करने के बावजूद भी अपनी प्राथमिक सुख-सुविधाएँ पूरी नहीं कर पा रहे है। मिल मालिकों के शोषण के कारण इनको बस इतना ही मिलता है जितना वे खाकर जिंदा रह सके और उन्हीं के मिल मे काम कर सके। ऐसी स्थिति में इनके पास दो ही रास्ते हैं - एक मिल का और दूसरा श्मशान का । " [172]

अभावों में पिस रहा मजदूर दिन-ब-दिन गरीब ही होता जा रहा है और अमीरों का शोषण चक्र गतिशील । शोषण की वास्तविकता ने कवि को पूँजीपतियों के प्रति घृणा, तिरस्कार का रुख अपनाने के लिए मजबूर कर दिया है -

"पर एक मेला साहूकार ढेला

---

[171] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या- लोकवाङमयग्रह पृ.21

[172] कविता श्रमाची, भूमिका से -नारायण सुर्वे

हिसकावून घेतो बाई सोन्याचा गोळा"[173]

सन् 1962 में युगांत साप्ताहिक विशेषांक में ' महाराष्ट्राच्या नावानं' नाम से सुर्वे की कविता प्रकाशित हुई थी । उसमें कवि लिखता है कि इस धरती के महान पुत्र हलधर को साहूकार शाही ने किस तरह से धरती का बोझ मात्र बना दिया हैं इसका चित्रण इस किया गया है -

"असा थोर माझा हलधर

राबवुन घेई साहूकार

धरणीचा पुत्र हा थोर

धरणीला झाला भार " [174]

इस प्रकार अमर शेख का पूँजीपतियों के प्रति आक्रोश और बदला लेने की भावना दिखाई देती है, तो साठे की नरम और गरम के बीच की। वही सुर्वे की कविता में बौद्धिक संघर्ष की।

2.4 नारी के प्रति प्रगतिवादी दृष्टिकोण - (स्त्री और प्रेम का चित्रण)

प्रगतिवादी कवियों का ध्यान नारी के सोचनीय स्थिति की ओर भी आकर्षित हुआ। सामंती व्यवस्था में नारी का महत्व उपभोग्य वस्तु से अधिक नहीं रहा था। प्रगतिशील कवियों ने उसे योनि-मात्र मानने वालों का विरोध किया। रीतिकालीन एवं छायावादी अवधारणायें स्त्री के प्रति एक रहस्यात्मक व भोग्य दृष्टि को ही पुष्ट करती रही । इन दोनों मानकों को ध्वस्त करते हुए प्रगतिशील दृष्टि से स्त्री को सहज मानवीय गरिमा से पुष्ट करने का कार्य मार्क्सवादी कवियों ने किया हैं । मार्क्सवादी काव्य चेतना स्त्री को देवी, माता, दासी और भोग्या की भूमिका से खारिज करके उसे पुरूष के समकक्ष, समानधर्मा और मानवीय गरिमा से युक्त करती है । इस तथ्य की पुष्टि जवाहरलाल नेहरू के उस वक्तव्य से भी होती है जो उन्होंने बनारस के 'रत्नाकर रसिक मंडल' व्दारा आयोजित एक अभिनंदन समारोह के बारे में दिया है "यह एक अजीब बात है कि देश को मानव रूप में मानने की प्रवृत्ति को कोई रोक नहीं सकता। हमारी आदत ही ऐसी पड़ गयी है और पहले के संस्कार भी ऐसे ही हैं । भारत

[173] निवडक नारायण सुर्वे- सं कुसुमाग्रज पृ.57

[174] सनद - नारायण सुर्वे पृ.103

भारत माता बन जाती है एक सुंदर स्त्री बहुत ही वृध्द होते हुए भी देखने में युवती, जिसकी आँखों में दुख और शून्यता भरी हुई, विदेशी और बाहरी लोगों द्वारा अपमानित और प्रताड़ित और अपने पुत्र-पुत्रियों को अपनी रक्षा के लिए अन्तस्वर से पुकारती हुई । इस तरह का कोई चित्र हजारों लोगों की भावनाओं को उभार देता है और उनको कुछ करने और कुर्बान हो जाने के लिए प्रेरित करता है । लेकिन हिन्दोस्तान तो मुख्यत: उन किसानों और मजदूरों का देश है, जिनका चेहरा खुबसूरत नहीं है, क्योंकि गरीबी खूबसूरत नहीं होती । क्या वह सुंदर स्त्री, जिसका हमने काल्पनिक चित्र खड़ा किया है, नंगे बदन और झुकी कमर वाले, खेतों और कारखानों में काम करने वाले किसानों और मजदूरों का प्रतिनिधित्व करती है ?या उन थोड़े से लोगों के समूह का प्रतिनिधित्व करती है, जिन्होंने युगों से जनता को कुचला और चुसा है, उस पर कठोर रिवाज लाद दिये हैं और उसमें से बहुतों को अछुत तक करार दे दिया है? हम अपनी काल्पनिक सृष्टि से सत्य को ढकने की कोशिश करते हैं और असलियत से अपने को बचाकर सपनों की दुनिया में विचारने का यत्न करते हैं।"[175]

रीतिकाल से लेकर छायावादी काल तक की कविताओं में स्त्री का वर्णन रंभा, उर्वशी, मेनका के रूप में और श्रृंगारिक व भोग्या के रूप में चित्रित करते थे। इनके स्त्री सौंदर्य के मानदंड पतली कमर, रंगे होंठ, सुंदर भौंह, उन्नत उरोज आदि थे किंतु प्रगतिशील कवियों ने इन मानदड़ों को नकारते हुए कहा है कि मजदूरी करनेवाली, पसीना बहानेवाली मेहनतकश स्त्री का भी सौंदर्य होता है । इस तथ्य की पुष्टि 10 अप्रैल 1936 को लखनऊ में संपन्न हुए 'प्रगतिशील लेखक संघ' के पहले अधिवेशन में प्रेमचंद का अध्यक्ष पद से दिये गये उद्घाटन भाषण से होता है - " उपवास और नग्नता में भी सौंदर्य का अस्तित्व संभव है, इसे कदाचित वह स्वीकार नहीं करता। उसके लिए सौंदर्य का तात्पर्य सुंदर स्त्री से है - उस बच्चोंवाली गरीब रूप-रहित स्त्री में नहीं, जो बच्चे को खेत की मेड़ पर सुलाए पसीना बहा रही है, उसने निश्चिय कर लिया है कि रंगे होठों कपोलों और भौंहों में निसंदेह सुंदरता का वास है । उसके उलझे हुए बालों, पपड़िया पड़े हुए होठों और कुम्हलाए हुए गालों में सौंदर्य का प्रवेश कहाँ ? सौंदर्य का प्रवेश कहा है इसी भाषण में आगे कहते है - पर यह संकीर्ण दृष्टि का दोष है । अगर उसकी सौंदर्य देखनेवाली दृष्टि में विस्तृति आए तो वह देखेगा कि रंगे होठों और कपोलों की आड में

[175] प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रूप से उध्दत, डॉ. रवीरंजन, पृ.16

रूप-गर्व और निष्ठुरता छिपी है तो इन मुरझाए हुए होठों और कुम्हलाए हुए गालों के आंसुओं में त्याग, श्रध्दा और कष्ट - सहिष्णुता है । हां, उसमें नफासत नहीं, दिखावा नहीं सुकुमारता नहीं।"[176]

मार्क्सवादी कवियों की स्त्री भोग का उपकरण मात्र न होकर व्यक्तित्व से संपन्न मानवी है। वह श्रम से स्वतंत्रता अर्जित करती है। उसका प्रेम संबंध जाति-पाँति और धर्म के बंधनों से मुक्त है। नागार्जुन के कविता की स्त्री गहरी संवेदना से जुड़कर यथार्थ की ऐसी आत्मीय छवि प्रस्तुत करती है जो जन-जन को नितांत अपनी और दैनिक रागात्मकता से जुड़ी प्रतीत होती है । इनकी कविता की स्त्री मेहनत करनेवाली भी है - 'बहुत दिनों के बाद अब की मैं जी भर सुनपाया। धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान।' उनके दृष्टि में नारी अबला नहीं हैं वह अन्याय और अत्याचार का विरोध करने में पुरूषों से कम नहीं है । इसका चित्रण नागार्जुन ने 'दररव्तों की सघन बगीचे में' की है । जो एक आदिवासी स्त्री दुश्मनों को मौत के घाट उतारने की खसम खाती है -

"दसियों फौजी जीपें गुजरीं
किसी को मेरी गंध तक न मिली
कसम खा रखी है
दुश्मनों पर घात लगाती रहूँगी....
कि पीठ से बंधा शिशु रो उठा
उसे गोद में लेकर बैठ गयी.....।"[177]

नागार्जुन की संपूर्ण कविता कें केद्र में पत्नी है जिसे याद करते हुए उनका सहज अनुरागी ह्दय अपने गांव के परिजनों, पुरजनों, बाग-बगीचों, खेतों और गवई गांव की चन्दवर्नी धूल को याद करता है। शिवकुमार मिश्र ने ठीक ही लिखा है - "प्रेम कविताएँ नागार्जुन ने उसके सारे आयामों को मूर्तिमान करते हुये लिखी है। उनके यहाँ प्रेम महज स्त्री पुरूष संबंधों के राग को ही अंतिम मानकर नहीं रह गया है, वरन् उसके आगे वात्सल्य,

[176] प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य -रेखा अवस्थी, पृ.326
[177] फूल नहीं रंग बोलते हैं - केदारनाथ अग्रवाल

अंचल, देश-देश के जन, देश की धरती मनुष्य और मनुष्य मात्र तक में व्याप्त है । यह सबकुछ नागार्जुन में एक बड़े विस्तार और गहराई के साथ प्रकट हुआ है ।"[178]

उनकी स्त्री चुडी, बिन्दी, सिंदूर बिछुए आदि से परहेज नहीं करती। वह भारतीय परिवेश की एक परंपरागत स्त्री है किंतु कवि उसे अपने संवेदना में एक पत्नी, माँ और स्त्री का सम्मान देता है। वह कहीं भी कवि की विकसित चेतना से हीन या असहाय नहीं है। वह कवि की मनोजगत की उच्छृंखला की प्रतीक स्वप्नसुंदरी उर्वशी, रम्भा या मेनका भी नहीं है वरन् कवि की संवेदना का अनिवार्य एवं अविभाज्य अंग है, 'सिंदूर-तिलकित भाल' कविता में प्रवासी कवि का आत्मलाज कवि की पत्नी के प्रति प्रेम एवं उसकी व्यापक संवेदना और आत्मसंघर्ष को व्यक्त करता है । "घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल / याद आता है तुम्हारा सिंदूर तिलकित भाल / कौन है वह व्यक्ति जिसको चाहिए नही समाज / कौन है वह एक जिसकों नहीं पड़ता दूसरों से काज / चाहिए किसकों नहीं सहयोग / चाहिए किसको नहीं सहवास / कौन चाहेगा कि उसका शून्य से टकराये यह उच्छ्वास ?"[179]

अपने गांव, देश से दूर पड़े हुए नागार्जुन जब अपनी पत्नी का सिंदूर तिलकित भाल याद करते हैं तब काम-क्रीड़ा का उत्साह उतना नहीं प्रदर्शित करते हैं जितनी पत्नी के प्रति बढ़ती आयु का स्नेह एवं ग्रामीण लोकजीवन के लगाव व्यक्त करते हैं ।

नागार्जुन के काव्य में स्त्री जिस व्यापक सौदंर्यबोध के साथ प्रतिष्टित है वह अतुलनीय है, कवि का सौदंर्यबोध और काव्यगत संवेदना जो स्त्री को संपूर्ण परिवेश के साथ सहज भाव से प्रतिष्ठित करता है। जो वायवीय कल्पनाओं के बजाय यथार्थ की ठोस जमीन पर पूरी इंसानी संवेदनाओं से साक्षात्कार कराता है। 'दंतुरित मुस्कान' कविता में वे अपने पुत्र की दंतुरित मुस्कान को देखते हुए पत्नी के प्रति अथाह कृतज्ञता से भर जाते हैं

"यदि तुम्हारी मां न माध्यम बनी होती आज

मैं न सकता देख, मैं न पाता जान

---

[178] समकालीन चुनौती, जुलाई-सितंबर, 2010, पृ.76

[179] सतरंगे पंखोवाली, नागार्जुन, पृ. 48

तुम्हारी दंतुरित मुस्कान।"[180]

दाम्पत्य प्रेम व वात्सल्य की दुनिया से अलग हटकर कवि जब स्वंतत्र दृष्टि से स्त्री चरित्रों पर विचार करता है वहाँ उसकी 'स्त्री' पक्षधरता खुलकर सामने आती है। आज के पूंजीवादी दौर में स्त्रियों की नित नई भूमिकाओं को खुले ह्रदय से स्वीकारते हैं। इसके प्रति उनके मन में कोई वितृष्णा नहीं है, 'विज्ञापन सुंदरी' नामक कविता में कवि कहता है - "रमा ले मांग में सिंदूरी छलना/फिर बेटी विज्ञापन लेने निकलना / तुम्हारी चाची को यह गुर कहां था मालूम? / गलाती है तुम्हारी मुस्कान की मृदु मध्दिम आंच / धन- कुलिश हिय कुबेर के छौनो का क्या खुब / कर लाई से क्योर विज्ञापन के आर्डर"[181]

यहाँ कवि विज्ञापन सुंदरी को पतित समझकर घृणा नहीं करता बल्कि उसके हाथ न हुए पीले, विधिविहित पत्नी की किसी का हो न सकी कहकर उसकी विविशताओं से आहत है। दूसरी तौर पर वह क्या खुब कहकर उसे शाबासी देना, प्रोत्साहित करना कवि की लज्जा को छिपाने का प्रयास मात्र है । नागार्जुन की 'पाषाणी' कविता में यदि बलात्कार से दुषित पत्थर बन गई अहिल्या का चरित्र है तो 'भिक्षुणी' कविता में बौद्ध धर्म के संघवाद से पीड़ित एक नारी की सहज प्रेम भावना दिखाई देती है। वह भगवान बुध्द के सुंदर रूप को देख कर सोचती है – "कितना मनोरम है तुम्हारा यह मुखड़ा।/ काया यह तुम्हारी कितनी सुडौल है। / भले ही कुछ दिन / सुलभ रहा जिसको तुम्हारा यह बाहुपाश। / अंकुरित यौवन धन्य वह यशोधरा"[182]

भिक्षुणी अपने अस्वभाविक बंधनों से मुक्त जीवन से त्राण चाहती है कोई एक होता जिसको अपना वह समझती भूख मातृत्व की मिटा देता वह। इससे स्पष्ट होता है कि प्रगतिशील कवियों ने स्त्री को अस्वाभाविक बंधनों से मुक्त करने की दिशा में कविताएँ लिखी ।

---

[180] सतरंगे पंखोवाली, नागार्जुन, पृ. 50

[181] समकालीन चुनौती, जुलाई-सितंबर, 2010, पृ.78

[182] युगधारा, नागार्जुन, पृ.6

केदारनाथ अग्रवाल की 'आग और बर्फ की वसियत' कविता में बेटा उस मशाल से निकलनेवाला धुएँ का प्रतीक है जो गर्व से गगन में जाता है और शून्य में खो जाता है और उसका किसी को दुख नही होता है । बेटी मशाल के आग का प्रतिक है जो धरती पर रहती है -

"मशाल का बेटा धुआँ
गर्व से गगन में गया
शून्य में खोया, कोई नहीं रोया
मशाल की बेटी आग
यह धरती पर रही चुल्हे में आयी
नसों में समायी।"[183]

केदारनाथ अग्रवाल ने 'जमुन जल तुम' नामक प्रेम कविताओं के अपने संग्रह की भूमिका में कहा है "मूलत: मै पत्नी-प्रेमी रहा हूँ और मेरी प्रेम की कविताएँ उन्हीं के प्रेम और सौंदर्य की कविताएँ है । कहीं-कहीं कुछ कविताएँ ऐसी झलक दें जाती है, जैसे कि मैं उनके अलावा भी दूसरी नारियों से घनिष्ट रूप से संबंध रहा है । बात ऐसी नहीं है। जो मैं ऐसा लिख गया हूँ वह केवल पारंपारिक काव्य संस्कार का परिणाम है, जो घर की चार दिवार से बाहर पहुँच गया है । आगे उन्होनें कहा है - "पहले परिकीया प्रेम का उदात्तीकरण कर दिया जाता था। राधा के प्रति कवियों का प्रेम-वर्णन इसी का उदाहरण है । कृष्ण के प्रति मीरा का प्रेम इसी प्रकार का है। मैंने अपने प्रेम को इस प्रकार के परकाया प्रेम के उदात्तीकरण से अलग रखकर सरल सहज और खुले रूप में स्वकीय प्रेम को मानवीय प्रेम के रूप में प्रस्तुत किया है।"[184]

इस संदर्भ में अशोक त्रिपाठी ने ' कैफियत के बाद ' शीर्षक से लिखे लेख का कुछ अंश उल्लेखनीय है । "प्रगतिशील होने का मतलब यह तो नहीं है कि हम जिंदगी की असलियत से दूर केवल राजनीतिक नारेबाजी और शोषण तथा अन्याय का विरोध करने

[183] फूल नहीं रंग बोलते है, नागार्जुन, पृ.47
[184] जमुन जल तूम, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.15-16

वाली कविताएँ ही लिखे मजदूरों और शोषितों पर ही कविताएँ लिखें। अपनी पत्नी, बच्चों, माँ, बहन, भाई, मित्र आस पास की प्रकृति पर कविताएँ न लिखे, उनके सौंदर्य के प्रति आँख मूंद लें और जो लोग इस एकांकी धारा के विरूद्ध जीवन को संपूर्णता के साथ चित्रित करने के उद्देश्य से प्रेम और सौंदर्य की कविताएँ भी लिखे उनके बारे में यह कहा जाय कि अपनी सक्रिय भूमिका के प्रति उनका विश्वास घटने लगा हैं। ऐसा कहने वालों और ऐसा सोचने वालों को अपनी सोच को पुन: संशोधित करने को जरूरत है।"[185]

'हे मेरी तुम' शीर्षक कविता में केदारजी ने स्त्री प्रेम के महत्व को रेखांकित किया है, बिना स्त्री प्रेम के जीवन कैसे बूझता हुआ दीपक है इसका चित्रण वे करते हैं "हे मेरी तुम, / बिना तुम्हारे।/ जलता तो है दिपक मेरा। / लेकिन ऐसे / जैसे आंसू। / की यमुना पर / छोटा-सा। खद्दोत, टिमकता, क्षण में बुझता।"[186]

प्रेम के प्रति पूंजीवादी दृष्टिकोण जहाँ विलासितापूर्ण होता है, वहाँ सर्वहारा दृष्टिकोण संघर्षपूर्ण । लेनिन ने बतलाया कि सर्वहारा-वर्ग के लिए मुक्त प्रेम का मतलब होता है प्रेम के मामले में भौतिक चीजों का खयाल करने के विचार से मुक्ति, भौतिक चिंताओं से मुक्ति, धार्मिक पूर्वग्रहों से मुक्ति, पिता का रोक-टोक आदि से मुक्ति, समाज के पूर्वग्रहों से मुक्ति, अपने परिवेश के संकुचित परिस्थितियों से मुक्ति, जबकि पूंजीवादी वर्ग के लिए उसका मतलब होता है, कि प्रेम में जो कुछ संजीदा है उससे मुक्ति, बच्चे के जन्म के कार्य से मुक्ति, व्यभिचार की आजादी आदि । मुक्तिबोध ने प्रेम के प्रसंग में स्वकीया और परकीया-प्रेम को नहीं, बल्कि उसके वर्गीय सारतत्व को महत्व दिया है । 'नई कविता: एक दायित्व' शीर्षक से अपने लेख में वे अपना दृष्टिकोण इस प्रकार स्पष्ट करते है - शृगांर और रोमांस पक्ष भी इससे खाली नहीं । यह जग जाहिर है कि पति पत्नि के अलावा भी अन्य स्त्री के साथ प्रेम का व्यवहार कर सकता है किंतु जब स्त्री इस तरह करने लगे तब आफत आ जाती है। मुक्तिबोध की एक कविता 'किसी से' में पति पत्नी के साथ इसलिए क्रूरता के साथ पेश आता है कि वह अन्य पुरूष से प्रेम करती है । 'नीम-तरू के पात' शीर्षक अपनी एक प्रगीतात्मक कविता में

---

[185] कैफियत के बाद, अशोक त्रिपाठी, जमुन जल और तुम ,पृ.7

[186] फूल नहीं रंग बोलते है, नागार्जुन, पृ.56

उन्होंने कहा है कि 'बेचैन कोमल आत्मा की वासना श्रीमंत है ।' काम जब प्रेम भावना से संयुक्त हो जाता है , तो वह वस्तुत: श्रीमंत हो जाता है । इसी कारण प्रेम में यौन-तुष्टि से अधिक महत्व सत्य, विश्वास और त्याग जैसे मूल्यों को प्राप्त है। मुक्तिबोध का प्रेम समाज की समस्याओं से दूर भागनेवाला नहीं बल्कि मनुष्यता का प्रेम था। इस संबंध में नंदकिशोर नवल का कथन महत्वपूर्ण है - "मुक्तिबोध की प्रेम-संबंधी अन्य कविताएँ इस बात का प्रमाण हैं कि उनका प्रेम उनके लिए जीवन और समाज की कठोर और विरूप समस्याओं से बच निकलने का मार्ग नहीं था। इसने उन्हे शेष विश्व से अलग कर आत्म केंद्रित नहीं बनाया बल्कि उनके आत्म का ऐसा विस्तार कर दिया कि उसमें संपूर्ण मनुष्यता समा गयी । अंत में प्रेम और क्रांति उनके लिए एक-दूसरे के पर्याय हो गए।"[187]

'जब प्रश्नचिन्ह बौखला उठे' शीर्षक कविता में कवि के मन में भौतिकता के पक्ष से भाववादी चिंतन-प्रणाली को लेकर प्रश्न उठे थे। उसके बाद तो जैसे उसकी आँखों के सामने एक नई दुनिया खुल गई। इस नई दुनिया में कवि की प्रेमिका भी बेहतर भविष्य के लिए किए जा रहे संघर्ष से एकाकार हो जाती है । रचनावली में मुक्तिबोध ने अपनी प्रेमिका को क्रांति का रूप प्रदान कर दिया है -

"युग के निर्माण-प्रवाहों की
इतिहास-प्रक्रियाओं में रह ।
विकसित होते नक्षत्रों की।
ब्रह्मांड प्रक्रियाओं में वह
आदिम-प्रकाश मेघों से लिपटे
नूतन ग्रह सी
सम्मुख तुम अवतरित हुई ।"[188]

---

[187] मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना - नंदकिशोर नवल पृ.341

[188] मुक्तिबोध रचनावली - पृ.4

ये पंक्तियाँ इस बात का सबुत हैं कि प्रेमिका का यह रूपांतरण कोई मिथक नहीं, बल्कि यथार्थ है। प्रेमिका को क्रांति का रूप तब प्राप्त हुआ है, जबकि वह इतिहास की प्रक्रियाओं से जुड़ी है और युग-निर्माण के लिए संघर्ष के पथ पर आगे बढ़ी है।

'मालह-निर्झर की झर-झर कंचन-रेखा' मुक्तिबोध की एक महत्व पूर्ण लंबी कविता है जिसके पूर्वार्ध में उन्होंने माधुर्य की स्थापना की है और उत्तरार्ध में प्रेम-वर्णन किया है। इस कविता में अपनी जटिल और गुंथी हुई भाव और विचार-धारा के अनुरूप मुक्तिबोध ने अपने प्रेम के संबंध में ढेर-सी बातें कह दी है। इसके अलावा भी 'सही हूँ या गलत, मैं कमल तोडकर लाऊंगा', 'मुझे पुकारती हुई पुकार ' आदि शीर्षक कविताएँ प्रेम और स्त्री के प्रति मार्क्सवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है ।

पुरुष प्रधान समाज में नारी शताब्दियों से प्रताड़ित एवं उपेक्षित रही । वह आर्थिक परावलम्बन का अभिशाप अनवरत झेलती रही। पुरुष ने नैतिकता और सामाजिक मर्यादा का समस्त दायित्व जैसे उसी के कंधों पर रख दिया था। वह पुरुष के संकेतों पर नाचनेवाली कठपुतली या वासना-तृप्ति और संतानोत्पत्ति का साधन-मात्र समझी जाने लगी। संसार को आगे ले जाने में स्त्री का बहुत बडा दायित्व है किंतु उसे कभी मनुष्य माना ही नहीं गया। स्त्री हमेशा गुलाम की जिंदगी जीती आ रहीं है । हितोपदेश मित्रलाभ 116 में कहा गया कि

"पिता रक्षति कौमार्या भर्ता रक्षति यौवने
पुत्रश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्य महर्हते"

यानी स्त्री हमेशा गुलाम ही रहेगी और एक उधार की जिंदगी जीती रहेगी। और उसे अपने तरीके से जीने के लिए कोई अधिकार नहीं दिया गया। वह रात-दिन मेहनत करती है, वह जब तक जीती है, तब तक उसके तीन मालिक बदल जाते है । पहला मालिक पिता है क्योंकि जन्म से लेकर कौमार्य तक पिता की ही जागीर होती है । दूसरा मालिक उसे मिलता है पति देवता के रूप में, तब उसे पति के मर्जीनुसार ही रहना पड़ता है एक दासी बनकर । तीसरा मालिक बेटा है जिसे अपने जिस्म से, अपने रक्त से, अपने गर्भ से बडे यत्न से पालती है । बेटा जवान होते ही माँ का मालिक बनता है । उसके मर्जी पर ही माँ का जीवन निर्भर हो जाता है। इस तरह उसकी गुलामी का सिलसिला जारी रहता है । दास और सामंती युग में तो

उसकी ऐसी ही सोचनीय स्थिति रही और वह दासी का जीवन व्यतीत करती रही। पूंजीवादी युग में स्त्री को पुरुष का दास न कहकर उसका साथी कहा गया, जिसे यह उपदेश दिया गया कि परिवार की रक्षा के लिए उसे एक पुरुष के अतिरिक्त और किसी की ओर नहीं देखना चाहिए।

पूँजीपति धन के प्रलोभन से निर्धनों की पत्नि-पुत्री-माता-बहनों आदि पर आँखे गड़ायें रहते है और वे बेचारी लोभ-वश अपना आत्म-समर्पण कर देती है। पूँजीवादी पद्धति में वैवाहिक संबंध प्रेम पर आधारित न होकर संपत्ति पर आधारित होता है। पूँजीपति लोग नारी की सामूहिकता और स्वतंत्रता की बात सुनकर भयभीत हो जाते है। मार्क्स का कहना है कि पूँजीपति अपनी स्त्री का उत्पादन के साधनों पर सामूहिक नियंत्रण की बात सुनते ही उसके मन में स्त्री के सार्वजनिक उपयोग का भ्रम उत्पन्न हो जाता है।

साम्यवादी समाज में स्त्री भी समाज का एक महत्वपूर्ण अंग मानी जाती है। उसे केवल पुरुष के भोग और मनोरंजन का साधन नहीं समझा जाता। पुरुष को प्रमुख और स्त्री को गौण बना देना उसे स्वीकार नहीं है। सभी क्षेत्रों में दोनों को समान अधिकार है। विवाह संबंधों की स्वतंत्रता तो वहाँ है, परंतु पूँजीवादी समाजों के यौन-व्यभीचार को श्रेयस्कर नहीं समझा जाता।

मराठी साहित्य में मार्क्सवादी कवियों ने स्त्री को अबला न मानकर सबला माना है। उसे एक मनुष्य, व्यक्ति मानते हुए पुरुषों के साथ संघर्ष करनेवाली शक्ति के रूप में देखा गया है। नारायण सुर्वे की कविता की स्त्री पुरुष की सहचरणी है जो मेहनती विश्व की सभासद है। वह पुरुष के सुख-दुख को बाँट लेनेवाली स्त्री है-

"थोडा-थोडा बाँट लेंगे दुख
थोडा सुख भी
रास्ता सीधा बनता जायेगा
फिर से जीवन मोड लेता जायेगा"[189]

सुर्वेजी की कविता की स्त्री जीवन के सारे वास्तव संदर्भ को लेकर उपस्थित हो जाती है। स्त्री के दुख और असुरक्षित जीवन को लेकर सुर्वेजी हमेशा चिंतित दिखायी देते

[189] जाहिरनामा, नारायण सुर्वे, पृ.16

है। उन्होंने स्त्री का चित्रण एक संघर्षशील, त्यागी, ममतामयी और प्रेम को बाँटकर संसार रूपी चक्र को चलानेवाली के रूप में किया है । 'बिगारी नाका' कविता के माध्यम से उन स्त्रियों का चित्रण किया गया है जो काम की तलाश में अपना पेट हथेली पर लेकर हर रोज सुबह मजदूर अड्डे पर जमा होते हैं। इन्हें देखकर ऐसा लगता है मानो कोई गायों को चरानेवाला सारे गायों को अलग-अलग प्रदेश हाँककर इकट्ठा लाया गया हो । स्त्रियाँ घर छोडकर काम पर जाती भी है और अपने आप को कैसे बचाती है इसका चित्रण कविता में किया गया है -

"स्त्रियाँ अकेली नहीं जाती हैं
रोजगार पर मिल जाती हैं
ऐसे स्थिति में भी
खुद को बचाती हैं"[190]

'आगमण' कविता में कवि ने उस स्त्री का चित्रण किया है जो अमावस के रात सरकारी बस में प्रसव वेदना से तड़प रही है और बस में बैठे कुछ लोग अपना-अपना कंबल निकालकर पडदे के रूप में अन्य स्त्रियों से पकडवाते हैं। उस स्त्री को पहली प्रसव वेदना होने के कारण उसे बहुत तकलीफ होती है और वह जोर-जोर से चिल्लाने लगती है। ऐसी स्थिति में बस ड्रायव्हर को जल्दी घर जाने की पडी होती है। सुर्वेजी ने स्त्रियों के जिन सवालों और समस्याओं को कविता के माध्यम से उठाया है वह सोचनीय है। उनकी एक अन्य कविता 'तुमचच नाव लिवा' मे उन्होंने नाजायज औलाद को पिता का नाम क्या दे ? इस पर स्त्री के माध्यम से सवाल उठाया है । इस कविता की स्त्री एक वेश्या है जो अपने बच्चे को स्कूल में दाखिला कराने ले जाती है तब मास्टरजी पिता का नाम पूछते है तब वह स्त्री हैरानी में पड जाती है । पुरुष प्रधान संस्कृति में माता का नाम लिखने से नहीं चलेगा तब किसका नाम लिखें ? वह स्त्री कहती है मास्टरजी किसी ईश्वर का नाम मत लिखिए क्योंकि यह ईश्वर की देन नहीं है बल्कि मनुष्य का ही है । और हमसे जात भी मत पूछिए हम किसी एक की औरत थोडी न हैं -

---

[190] नव्या मानसाचे आगमन , नारायण सुर्वे पृ.29

"किसी भी देवता का नाम लिखिएगा नहीं

आदमी का ही नाम लिखना.....

देवता ने किया ही क्या जी,

यह गोद उसने ही भरी ना.....

आपका ही नाम लिखिएगा

जात मत पूछो

अजी, हम किसी एक की लुगाई है क्या मास्टरजी"[191]

इनकी एक अन्य कविता 'मनिऑडर' में भी उस स्त्री का चित्रण किया गया है जो गरीबी और भूखमरी के कारण वेश्यावृत्ती की ओर प्रवृत्त होती है। वह स्त्री दूर शहर में अपना शरीर बेचकर कुछ पैसे अपने परिवार को मनिऑर्डर करती है।

सुर्वेजी की कविता की स्त्री इतनी समझदार है कि कई कठिनाइयों से संघर्ष करते हुए वह अपने पति और परिवार को संभालती है इसलिए कविने 'विचार' शीर्षक कविता में कहा है –

"ठहर ! सुबह हुई नहीं । चिराग बढ़ा कर क्या होगा

तुम अगर थक गए हो तो । मेरी देह-बाती सुलगा लेना

धूमिल कोहरे के संसार में । हाथ में हाथ गहे हमने

तुमने कहा था घबडा जाओगी तब,

तुम्हारा हाथ दिल पर रख लेना !"[192]

पुरुष प्रधान संस्कृति ने स्त्री को मादक और नशीला पदार्थ माना है। इतना ही नही बल्कि उसे एक जिस्म, एक गुड़िया की हैसियत से देखते है इस स्थिति को देख कर चिंतित कवि अंदर ही अंदर शरम के मारे किस तरह मर रहा है इसका चित्रण 'माझ्या देशाच्या नोंदबुकात माझा अभिप्राय' शिर्षक कविता में किया है। -

---

[191] निवडक नारायण सुर्वे, संपा. कुसुमाग्रज,पृ.39

[192] माझे विद्यापीठ, नारायण सुर्वे पृ.22

"हे मेरे देश

सुर्यकूल के हम सभासद, इसीलिए कहता हूँ

औरत केवल एक मादक और नशीला पदार्थ

यही है आजकल के कुलीनों की नज़र में देखने का अर्थ

वह फूलवाले की एक पुडिया

एक जिस्म, एक गुडिया, ओह....

हे देश, मैं शरम के मारे मरा जा रहा हूँ।"[193]

'दुख' कविता में स्त्री चौका-बरतन करके बचा-खुचा भोजन ढक देती है और कुछ रखने के कारण झट से मुडती है । तब उसकी नज़र अचानक शीसे पर पड़ती है। शीसें में अपना चेहरा निहारते हुए एक-एक चुडियाँ उतार देती है । फिर गले की एक-एक लड़ को अलग करती है, तब उसकी आँखे भर आती है । क्योंकि ज़िंदगी के चालीस साल दिन-रात मेहनत में ही खपा दिए है ।

रही बात प्रेम की सुर्वे की प्रेम कविताओं में विवाहपूर्व काल की मादकता हूरहूर, उफालनेवाली प्रणय भावना, आर्तता, रूप-सौंदर्य इत्यादि भाव नहीं हैं। कारण उनकी सारी प्रेम कविता विवाहेत्तर काल की हैं। रोटी का चाँद ढूढने में जहाँ जिंदगी बरबाद करनी पड़ती हो ऐसी दुनिया में (कल्पनातीत) स्वप्नलोक प्रेम को क्या स्थान रहेगा। सुर्वेजी की कविता में प्रेम बंद कमरे में राजा राणी का श्रृंगार रचनेवाला जीवन न होकर यंत्र के खडखडाहट में एक ही कमरे में माँ-भाईयों के उपस्थिति में श्रृंगार करना पड़ता है। सुर्वेजी अपनी प्रेम कविता के बारे में बताते है- " मेरी प्रेम कविताएँ मेरे प्रौढ़ावस्था की आयु की है। यह दाम्पत्य प्रेम की कविता है। ऐसा कहा जाने लगा है। यह बात सही भी है। इस तरह का भी प्रेम हो सकता है इसका अहसास मुझे इसी बीच होने लगा है। यह बात सही है कि अठारह-बीस साल के लोंगों के प्रेम पर आधारित मेरी कविताएँ नहीं होगी और न है भी । मैंने खुद पैंतीस वर्ष की आयु के बाद प्रेम कविता लिखना शुरु किया है । जीवन के हर प्रश्न की ओर देखने के लिए एक

---

[193] जाहीरनामा, नारायण सुर्वे पृ.23

ब्रैलेंसिंग ज़रूरी होता है और वह मुझे परिस्थिति ने वही सिखाया है। ऐसा मुझे लगता है । वह बैलेंसिंग और अहसास मेरे आगे की कविता में व्यक्त हुआ है ।"[194]

सुर्वेजी की कविता की स्त्री पति को भरपेट खिलाकर खुद आधापेट ही खा लेती है। और पति के चेहरे पर प्यार से अपनी उँगलियाँ फिराकर उसे सुलाती है जैसे कोई माँ अपने बेटे को दुलारा देकर सुलाती हो -

"मला भरपूर वाढून / स्वत: अर्धपोटी राहुन / काळोखातच फिरविसी / गार बोटे गालावरुन / अर्धमिटल्या पापनणीत / स्वप्ने चेती पंख लावून / बाचुकुली होऊन कां ग / कुठे तरी जाती पळून / जाती जशा उल्का जळून।" उदास अवस्था में मजबूत आधार देनेवाली, थकी अवस्था में चैत्रमास बनकर अपनी आँचल से पसीना पोंछनेवाली और कहनेवाली कि " कितने दुबले हो गये आप? इसलिए कवि मानता है कि पत्नी घर की प्रमुख स्तंभ, सहचरणी, हमसफर है । यही कारण है कि कवि ने जीवन के हर मोड पर, हर क्षण में, हर घटनापर पत्नी का स्वामीत्व कवि ने स्वीकारा है

“तुम्हारे पंखुडियों का पहरा मेरे शब्दों पर है

इसीलिए मेरे पद्य पंक्ति में व्यभिचार का अंश नहीं है

हमेशा मेरे कविता में सत्य का सहवास है"[195]

‘मी ही अशी’ कविता में कमजोर और अपाहिज बनी स्त्री अपने पति को किसी और से दूसरी शादी करने की सलाह देती है। क्योंकि वह जानती है कि स्त्री और पुरुष संसार रूपी रथ के दो पहिये है , यदि उसमें से एक भी रुक गया तो रथ रुक जाएगा । ‘पुरे कर’ इस कविता में कवि ने स्त्री को काम में भौंवरे जैसा फिरना छोड़ कर ख़ुद को आराम से लेट जाने के लिए और जूठे बरतनों को बाजू में रख आराम करने की सलाह देता है। जाहिरनामा इस संग्रह में ‘सुर्यकुलातील लोक’ और ‘आयुष्य’ इन दो कविताओं में स्त्री विषयक अभिव्यक्ति व्यक्त हुई है।

लोकशाहीर अण्णाभाऊ साठे ने अपने पोवाडे के माध्यम से स्त्री को जीवन का अभिन्न अंग मानकर उसे महत्वपूर्ण स्थान दिया है। पुरुष के लिए स्त्री केवल भोग्या, शरीर और साधन

---

[194] कविता आणि काव्यदृष्टि, नारायण सुर्व, प्रा. मनोज तायडे, पृ.170

[195] नारायण सुर्वे यांचे निवडक कविता, पांडूरंग कापडणीस, पृ.33

माननेवाले तथाकथित लोगों का विरोध करते हुए उसे हीरे की खान और पुरुष का प्राण की उपमा देकर स्त्री का गौरव बढाया है। साठेजी स्त्री को ठीक वैसा ही मानते हैं जैसे अंधे के लिए काठी । इसका चित्रण उन्होंने 'माझी मैना गावावर राहिली' शीर्षक पोवाडे में किया है -

"काठी अंधळयाची । तशी माझी गरिबाची ।

मैना रत्नाची खाण । माझा जीव की प्राण ।"[196]

गरीबी मानव जाती के लिए कितनी कष्टदायक होती है और इसी गरीबी के चलते गरीबों को दो जून की रोटी तक मयस्सर नहीं होती । यहाँ तक कि अपने पेट की आग बुझाने के लिए स्त्रियों को मोती बाज़ार, शेअर बाज़ार, फोरस रोड, तीन बत्ती, गोलपिठा नाका आदि जगहों पर किस तरह शरीर बेचकर पेट की आग बुझानी पड रही है इसका चित्रण साठेजी ने 'मुंबईची लावणी' पोवाडे के अंतर्गत किया है -

"मोती बाज़ार, शेअर बाज़ार। वहाँ चलता बडा व्यापार है ।

सारे सट्टेवाले वहाँ सट्टा खेलते है ।।

फोरास रोड़ तीन बत्ती। गोलपिठा नाके पर ।

कई लोग पेट भरते हैं शरीर बेचकर ।।"[197]

शाहीर अमर शेख ने 'मालन कामानं सुकली' शीर्षक कविता में गिरणी में काम कर-करके थकनेवाली और अपनी पूरी जवानी गिरणी के काम में ही खत्म कर देनेवाली स्त्री का चित्रण किया है -

"काम करुन गिरणीत थकली रं

माझी मालन कामानं सुकली ।।

फाटं पिकलेलं जांबुळ ताजं

नाचे चौखूर हरिणच माझं

नुसत्या सायीचं रं लोणी ताजं

जवानी साच्याच्या सांध्यात टाकली रं ।"[198]

---

[196] अण्णाभाउ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या, लोकवाङमय गृह, पृ.23

[197] अण्णाभाउ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या, लोकवाङमय गृह, पृ.27

पूँजीपति कवि हो या पूँजीपतियों के लिए लिखनेवाला कवि जब वह काव्य में स्त्री का चित्रण करता है तो वह श्रृंगारिक और भावोत्तेजक ही होता है। प्रल्हाद केशव अत्रे ने 'कलश-पूजन' में सही कहा है - "सुंदर युवति का दर्शन होते ही पूँजीवादी दुनिया के कवि के मुँह से पानी टपकने लगता है। और उसके प्रेम की याचना खुलेआम अपनी कविता में करने लगता है। उस कवि को इसकी कभी शर्म तक नहीं आती और उसे पढ़नेवाले पाठक को भी।"[199]

शाहीर अमर शेख ने निम्न स्तर की मेहनतकश वर्ग की स्त्री का गुणगान गाते हुए उसका सम्मान बढाया है सामान्य स्त्री की तो बात ही छोडिए अनीति के कर्दम में जिस पतीत युवती का पैर फंसा हुआ है उसे भी वे साम्यवादी नज़रिए से देखते हैं -

"संघर्ष की तू स्फूर्ती

मूर्ती प्रत्यक्ष कालीमाता की

स्फूर्ती वात्सल्य की

प्रेममय पत्नी की

बहन की माया

तू ही है वह ब्रह्म की आदिमाया।"[200]

'चंद्रावळीस' शीर्षक कविता के माध्यम से कविने एक सुंदर स्त्री का चित्रण किया है। वह स्त्री ठूमके में इस तरह से चलती है कि ताल भी उसके चाल को देखकर शर्मा जाएगा । कवि भी उसी ताल में चलना और जीना सीखना चाहता है। उसकी चप्पल किसी लंपट पर पडे तब उसका पैर छूना चाहता है। और विशेष कर यह सब देख कर कवि उस पर मुग्ध नहीं होता बल्कि उसका अनामिक भाई बनता चाहता है -

"ठेक्याने चालने तुझे ते पाहून

तालानेही लाजुन खाली पहावे

तुझी ती चप्पल लागता लंपटास

ओवाळून टाकावी जिंदगी काया

---

[198] शाहीर अमर शेख यांचे पोवाडे, लोकगीते व कविता , डॉ. अजीज नदाफ, पृ.27

[199] कलश, अमर शेख, पृ.20

[200] अमर-अण्णा, पोतदार, पृ.107

व्हावे अनामिक तुझा भाऊ "[201]

शाहीर अमर शेख की कविता की स्त्री तथाकथित समाज की चारदिवारी में बंद स्त्री नहीं है न ही उसे दासी माना है बल्कि उन्नत विचारोंवाली सब क्षेत्र में व्यापीत गगन चुंबी उड़ान भरनेवाली स्त्री है । स्त्री मानव शक्ति निम्मी होती दासी / ती हात घालते आज पहा गगनासी / कर्तृत्वाचे सर्व क्षेत्र व्यापुन / ती दावू लागली नव दुनिया स्थापुन / ते कणां कणांतुनि ये निर्मिती संगीत ।

'यौवनगीत' शीर्षक कविता में प्रियसी द्वारा भेजे गये पत्र का उत्तर जब कवि देता है उससे उनके प्रेम संबंधी विचार स्पष्ट हो जाते हैं । 'कुठं आहे ते स्वप्न' शीर्षक कविता में कवि धनिक वर्ग को गाली देते हुए कहता है कि हमें जन्म से ही प्रेम करने का हक नहीं मिला है, हक मिला है तो सिर्फ धनिकों के लिए दिन-रात मेहनत करके मरने का ।

"जन्मता हक ना आम्हां प्रेम करण्याचा

होताच तर हक धनिकास्तव मरण्याचा ।"[202]

अमर शेख अपनी प्रेमिका से मिलने के लिए कितना बेचैन है इसका प्रमाण 'मन तुझ्याचसाठी' कविता में दिखायी देता है । -प्रचंड फोडुनि पर्वत माथा / होऊनिया बेहोष भेटण्या / बघ मन सरिता कोसळते / मन तुझ्याचसाठी तळमळते । पूरे यौवन को पूँजीवादी समाज को दर्या में डालकर मारना चाहता है । अमर शेख आदर्श प्रेम की स्थापना करना चाहते हैं किंतु वह पूँजीवादी व्यवस्था का विनाश करने के बाद ही । ताकि यौवन की प्रगति विकसित होकर खिले-फूले और फले -

"होईल तुझा नि माझा विकास जेथे

यौवन-प्रीतिही खुलेल विकसुनि तेथें

म्हणुनीच आज गाऊ या कवनीं शांती

सोडून क्षणिक ते बुरसट प्रेम-भ्रांती"[203]

---

[201] कलश, अमर शेख, पृ.59

[202] कलश, अमर शेख, पृ.38

[203] कलश, अमर शेख, पृ.48

2.5 वर्ग रहित समाज की परिकल्पना और क्रांति में आस्था

प्रगतिवादी दर्शन यह मानता है कि मानवीय समाज आदिम काल से वर्ग रहित था। आदिम समाज में किसी प्रकार का वर्गबोध नहीं था इसलिए वर्ग-संघर्ष भी नहीं था। कालातंर में जनसंख्या की वृद्धि एवं नागरिक जीवन के विकास के कारण सभ्यता के अनेक स्तर बने और भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं के कारण उनकी समस्या बढ़ने लगी। प्रारंभ में सारी प्रजा एक समान थी, वर्ग रहित समाज के रूप में सामूहिक जीवन बोध और समाष्टि चेतना के बल पर मार्क्सवादी यह आशा करते है कि ऐसी समष्टि चेतना का वर्ग रहित समाज फिर से स्थापित हो सकता है उसके लिए क्रांति की आवश्यकता है । कार्ल मार्क्स ने कम्युनिस्ट मेनिफेस्टों में कहा भी है "मानवीय जीवन का सामाजिक इतिहास यह प्रमाणित करता है कि सामाजिक जीवन के उत्तरोत्तर विकास के मूल में वर्गवादी चेतना से उत्पन्न क्रांति और वर्ग-संघर्ष ही मार्क्सवादियों का अंतिम सत्य है ।"[204]

प्रगतिवादी कवि ऐसी क्रांति की सृष्टि करना चाहता है, जो ध्वंस के आधारशिला पर खड़ा हो क्योंकि उसका विश्वास है कि सर्वहारा वर्ग की क्रांति में ही संपूर्ण मानवता की मुक्ति निहित है, और यही कारण हो सकता है, कि प्रगतिवादी कवि इस संघर्ष को 'मानवाता का अंतिम रण' मानता है। प्रगतिवादी कवि मार्क्सवाद को सिर्फ बौध्दिक रूप से स्वीकार नहीं करते बल्कि क्रातिकारी जीवन से जुड़े भी है। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा का कथन महत्वपूर्ण है - "मार्क्सवाद में एक बात पर बहुत सही जोर दिया जाता है. वह यह कि बौध्दिक रूप से मार्क्सवाद को स्वीकार करना काफी नहीं है, मार्क्सवादी को सर्वहारा वर्ग के क्रंतिकारी जीवन से तादात्म्य स्थापित करना चाहिए ।"[205]

प्रगतिशील कलाकार की आस्था ऐसी जीवन-दृष्टि में है जिसमें किसी भी प्रकार की विषमताएँ न हो। वह चाहे वर्ग- वैष्यम्य हो, चाहे रूढ़ी और परंपरागत जीवन-दृष्टि हो, या सांप्रदायिक या धार्मिक संकीर्णता हो।इन सबसे मुक्त वर्ग रहित प्रतिगामी चेतना अभिप्रेत है । वर्गवादी चेतना का लक्ष्य वर्ग रहित समाज का निर्माण है, विषमतापूर्ण समाज का विरोध

---

[204] कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो, कार्ल मार्क्स, पृ.13

[205] आस्था और सौंदर्य, रामविलास शर्मा, पृ.251

विषमता रहित समाज की संरचना के लिए है। वर्ग- संघर्ष और वर्ग-वैष्यम्य की अंतिम परिणति ऐसे वर्ग रहित समाज में है जहाँ समदर्शिता के लिए स्थान हो, एक सुखसंपन्नता सबके लिए हो । समता, स्वातंत्र्य और सुख-संपन्नता मांगने पर नहीं मिलती, जो वर्ग विषमताओं से मुक्त होने की आकांक्षा रखते हैं, उन्हे उसके लिए सौद्देश्य संघर्ष भी करना पड़ता है। संघर्ष और क्रांति वर्ग रहित समाज की अनिवार्यता है एवं परिवर्तन और उन्नत्ति के साधक तत्व, रचनात्मक जीवनप्रणाली का परम लक्ष्य है ।

'नदियाँ बदला ले ही लेंगी' शीर्षक कविता में कवि शोषितों का जीवन जीकर उन पर हो रहे अन्याय को सहना चाहता है किन्तु वह सह नहीं सकता और रचनात्मक कार्य से अलग हो भी नहीं सकता । कवि उन भूमिहिनों पर हो रहे अन्याय का विरोध करना चाहता है किंतु सरकार की दमन नीति के कारण एक घर में जाकर लिखता है

"खेतो में बन्दूकें उगती
टके सेर तो बम बिकता है
क्रांति दूर है, सच-सच बतला
बुध्दू, तुझको क्या दिखता है
आ, तेरे को सैर कराऊँ
घर में घुसकर क्या लिखता है
इस हवेली में भूमिहिन की
किस्मत का भुट्टा सिकता है।"[206]

'पुरानी जुतियों का कोरस' के एक दोहो में कवि अन्नचोरी करने वालों का बदला लेने की भावना से कहते हैं-

"छीन सके तो छीन ले, लूट सके तो लूट
मिल सकती कैसे भला अन्नचोर को छूट।"[207]

[206] पुरानी जुतियों का कोरस, नागार्जुन, पृ.163
[207] पुरानी जुतियों का कोरस, नागार्जुन, पृ.60

नेपाली तानाशाही के विरोध में नागार्जुन ने 'अच्छा हुँआ कि जनता को मिल गई तुम्हारी थाह' कविता लिखि है कवि तानाशाही से कहता है कि प्रजातंत्र के नाम से कब तक भूर्ता चखा करोगे और कब तक लाखों नेपाली तुम्हारे अन्याय को सहेते रहेंगे उसे चेतावनी देते हैं 'खबरदार ओ राजा कल या परसों तू भागेगा। / अंगडाई लेकर धरती का बेटा अब जागेगा । 'हरिजन गाथा' इस कविता के मार्फत नागार्जुन ने हथियार बंद हिंसक आंदोलन, राजनीतिक पार्टी के स्वरूप, संपूर्ण क्रांति आदि की कल्पना करते हैं, जिसे नवजात शिशु के द्वारा साकार होते देखना चाहते हैं। शिशु की हस्त रेखाओं में खुखरी, बम, तलवार गंडासा, भाला आदि कवि को दिखाई देते हैं । नागार्जुन नवजात शिशु को झरिया, गिरिटीह, या बोकोरा जैसे स्थानों पर ले जाने की भी बात करते हैं, ताकि शिशु का जीवन सुरक्षित रहे और बड़ा होकर वह हिंसक आंदोलन का नेतृत्व कर सके।"खान खोदनेवाले सौ-सौ / मजदूरों के बींच पलेगा / युग की आँखों में फौलादी / साँचे सा यह नहीं ढलेगा/ जनबल , धनबल सभी जुटेगा / हथियारों की कमी न होगी!"

सन् 1946 में उचित मजदूरी पाने के लिए जो हरिजन लड़ रहे थे वे भूमिहीन और खेत मजदूर थे । अपने हक के लिए संघर्ष कर रहे लोगों को जलाया गया था। जमींदार काम लेकर भी मजदूरों को बहुत कम पैसा दे रहा था इसका विरोध हरिजन कैसे करते हैं, इसे केदारनाथ अग्रवाल ने प्रतीकों का सहारा लिये बिना चित्रण किया है - "डंका बजा गांव के भीतर /सब चमार हो गये इकट्ठा / एक उठ बोला दहाड कर/हम पचास है / मगर हाथ सौ फौलादी है /सौ हाथों के एका का बल बहुत बड़ा है /हम पहाड़ को भी उखाड़ कर रख सकते हैं /जमींदार यह अन्यायी है / काम काज सब करवाता है /पर पैसा देता है छै ही।"[208]

मार्क्सवादी कवियों का कहना है कि व्यवस्था परिवर्तन अहिंसा से नहीं बल्कि हिंसा से ही होता है। अहिंसा को कब किसने महत्व दिया है इसलिए हिंसा में विश्वास करते हैं -

"काटो काटो काटो करबी

मारो मारो मारो हंसिया

[208] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, पृ.34

हिंसा और आहिंसा क्या है

जीवन से बढ़ हिंसा क्या है।"[209]

इनकी अन्य 'अहिंसा' शीर्षक कविता है जिसमें एक व्यक्ति कतल करता है तो पुलिस गोली से मार कर उसका भी कतल कर देती है तब पुलिस को ईनाम मिलता है और किस तरह अहिंसा प्रवचन नाकाम होता है इसका चित्रण किया गया है। 'गुलमेंहदी' में किसान से शीर्षक कविता में कवि ने किसान को संबोधित करते हुए कहा है कि युग की पैनी लोहे की कुसी से जमीन को गडाओं, जमीन को चीर कर बीज बोओ तकि आगामी संतति को राह बन जाए। अपना खून पसीना बहाकर अन्न उपजाने वाले, संसार का पेट भरने वाले अन्नदाता किसान से कवि क्रांति की बात करता है - "अपनी कुरिया की चिनगी से /सब में आग लगाये जा / जर्जर दुनिया के ढ़ाचे को, / 'भभ' 'भभ' आज जलाये जा / शोषण की प्रत्येक प्रथा का / अंधियार गहन मिटाये जा / नयेजनम का नया उजाला / धरती पर बरसाये जा।"

अग्रवाल की 'मोरचे पर' कविता क्रांति की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण,है, इस कविता में कवि सर्वहारा को फौजी बना कर संघर्ष करने के लिए छोड रहा है। मिल मालिकों को भूमि को हडपने वाले जमींदारों को साम्यवादी आक्रमण से मारने की बात करता है। 'हथोड़े का गीत' शीर्षक कविता में कवि श्रमिको से कहता है कि तुझमें इतनी ताकत है कि इस व्यवस्था रूपी काले लोहे को लाल कर के जैसाचाहे वैसा मोड़ सकता है। लहू और पसीने के बल से गुलामी की बंधनों को तोडने की बात करता है।

मुक्तिबोध की 'दमकती दामिनी' और 'क्रांति' 'प्राय:'क्रांति पर ही लिखी गई कविताएँ है। पहली कविता में उन्होनें युद्धोत्तर काल में भारत में ही नहीं , अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जो क्रांति की लहर उठी थी, उसके प्रभाव में आकर कहा कि - " हो चुका हूँ विश्व की उन्मेश-ज्वाला-जाल का मैंनम्र बंदी" और फिर क्रांति को संबोंधित करते हुए यह शपथ ली कि जैसे वह बिजली की शमशीर की तरह गंभीर मेघों के भयानक दानवों-से व्यूह को चीरता चलती है - "मैं भी काटता चलता चलूंगा अंध-मेघ-समूह/ मानव- देश के / संपूर्ण तन की शक्ति से /

[209] फूल नहीं रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल, पृ..75

जलती हुई दृढ़ भक्ति से"[210] उनके सामने क्रांति का अर्थ बिलकुल स्पष्ट था - लोक-मन की प्राकृतिक अनिवार सर्जन-शक्ति । उन्होनें क्रांति को नाश-देवता या ध्वंस महाप्रभु न कहकर उसे 'जनता की सृजनात्मक शक्ति' बतलाया । दूसरी कविता में कवि पहले बाहर क्रांति का रेगिस्थानी तूफान देखता है, फिर अपने मन के चित्र-पट पर वह आंधी, जिसकी आंखों से शोषित और पीडित जनों के अश्रु झरते हैं । मुक्तिबोध में एक मूर्ति "लोह-कर्म-रत-मजूर-लोहार" की है, जो अपने प्रचंड हथौडे की चोट से छिटकनेवाली लाल-लाल तारिकाओं के प्रकाश में उसे क्रांति-शक्ति के रूप में दिखलाई पडता है ।

विकृत भावों और विचारों वाले पूंजीवादी समाज में मुक्तिबोध को ऐसे श्रमजीवी भी मिलते है जो विद्रोह कर उठते हैं । उन्होनें लिखा है कि उन्ही श्रमजीवियों से उनकी आत्मियता है। पूंजीवादी सत्ता पर जनता के धावा बोलने का एक सरलीकृत चित्र मुक्तिबोध की 'लकड़ी का बना रावण' शीर्षक कविता में मिलता है। इसमें जनतंत्री बानरों के समूह को अपने सुरक्षित स्थान की तरफ बढ़ते हुए देखकर लकड़ी का रावण, जोकि ह्रासोन्मुख अन्याय के विरूध्द विद्रोह ही नहीं करते बल्कि मुठभेड़ और धावा की बात भी करते हैं

"जो अपने लिए इज्जत तलब करते हैं

बराबरी का हक, बराबरी का दावा

नहीं तो मुठभेड़ और धावा

अब आप चाहे सरकार हो

या साहूकार हो ।"[211]

मार्क्सवादी कवि साम्यवाद का सपना देखते हैं, समाज को सुखी और संपन्न देखने के लिए वे हर समय प्रयत्नशील हैं वे कभी थकते नहीं हैं बल्कि भोर की सूरज की तरह उगते है । केदारनाथ अग्रवाल 'मैं' शीर्षक कविता में कहते हैं -

"डूबा हूँ हर रोज/ किनारे तक आ-आ कर /

लेकिन मैं हररोज / उगा हूँ जैसे दिनकर ।"[212]

---

[210] मुक्तिबोध जान और संवेदना - नंदकिशोर नवल, पृ.34

[211] मुक्तिबोध रचनावली - पृ.63

नागार्जुन भी आशावादी है वे भी सपना देखते हैं कि सबको अन्न, वस्त्र, "बने स्वर्ग यह भूमि हमारी! / अधर-अधर पर / सुख और शुभदा मिलेगी । यह पृथ्वी ही स्वर्ग है और यहीं सुखी और सुंदर समाज बनेगा । "हास अनश्वर / शिर-शिर पर अमिताभ ताज हो ! / सतत अभ्युदित / जन जन प्रभुदित / सर्व सुखद सुंदर समाज हो ।"[213]

लेनिन ने कहा था कि हमे स्वप्न देखना चाहिए निश्चय ही ऐसा स्वप्न, जो स्वाभाविक घटना-क्रम से आगे चलता जाए। मुक्तिबोध ने 'मुक्तिकामी पैरों की मोच की चीख' शीर्षक कविता में कहा है

"सपने-से आते हैं कि किसी दिन

पुराने मुहल्ले सब होंगे सब साफ

भाफ होकर काले दाग धरती के सब मिट जायेंगे ।

मानव धुक-धुकी में

सुनहले दिवस का रक्त खिलखिलायेगा । "[214]

मराठी में अण्णाभाऊ साठे, शाहीर अमर शेख और नारायण सुर्वे मार्क्सवाद से बौद्धिक रूप से जुडे ही नहीं बल्कि क्रांतिकारी जीवन से भी। इन कवियों ने कम्यूनिस्ट पक्ष के लिए बहुत काम किया। अण्णा और अमर ने पक्ष का प्रचार और प्रसार करते-करते मार्क्सवादी विचारधारा को लोगों के दिल और दिमाग में उतारने का सफल प्रयास किया है। अमर-अण्णा हाथ मे मशाल लेकर चलते हैं । इन दोनों ने अपनी कविता में कई स्थानों पर इसी मशाल से विषमतापूर्ण समाज को आग लगाने की बात भी करते हैं । सुर्वे ने भी कोई कसर नहीं छोडी है, वे हाथ में तलवार लिए विषमतापूर्ण समाज को बनाए रखनेवालों को धमकी तक दे डालते हैं । इन कवियों का मानना है कि समता, स्वातंत्र्य और सुख-संपन्नता माँगने से नहीं मिलती वरन् इसके लिए संघर्ष करना पडता है ।

---

[212] गुलमेहंदी -केदारनाथ अग्रवाल पृ.39

[213] सतरंगे पंखोवाली, नागार्जुन, पृ.46

[214] भूरी-भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, पृ.215

' मुंबईची लावणी' शीर्षक कविता में साठे ने लाल झेंडे का महत्व बतलाते हुए परिवर्तन के लिए विश्वास प्रकट किया है। क्रांति द्वारा ही इस विषमतापूर्ण समाज को हम कैसे बदल सकते हैं इसका खुलासा वे करते हैं -

"लाल झेंडा घेऊन हाती। करायला इथे क्रांति

मजुरांची पिढी नवी पाऊलवाट टाकती ।।

अण्णाभाऊ साठे म्हणे। बदलुनी हे दुबळे जिने

होणार जे विजयी ते रण करिती ।"[215]

अण्णाभाऊ साठे ने श्रमिक वर्ग को एक होकर शोषक वर्ग के विरोध में लढने के लिए प्रेरित किया है । 'शिवारी चला''कविता के माध्यम से उन्होंने श्रमिकों को हथियार लेकर लढने के लिए प्रोत्साहित किया है -

"रातदीस राबून सालंना साल

किती पिढ्या आम्ही काढायचं हाल

रोवून आता बांधावर बावटा लाल

काळावर चाल कर-हत्यार नीट धर

एकीचा बांधुनि किल्ला र शिवारी चला ।। "[216]

रात-दीन मेहनत करनेवाले श्रमिकों का कोई मोल नहीं रह गया है। इस दुनिया का शिल्पी शोषण की चक्की में पिसता ही जा रहा है। इन सबका एक ही उपाय शाहीर अमर शेख ने क्रांति बताया। अमर शेख की कविता क्रांति के लिए प्रेरक और साधन का माध्यम बन जाती है। यह क्रांति केवल शब्दों की नहीं बल्कि प्रत्यक्ष कृती की है। अमर शेख ने लिखा है -

"घ्या मशाल ती तेजाळ, पेटवा पुन्हा त्यावरती

घालुनी तेल रक्ताचे तेजाळा लाखो कोटी

मशाल, मोर्चा एकजुटीचा चोहिकडे फेका

लोक शत्रु साधव्या बैसले अजूनिही मौका "[217]

---

[215] अमर अण्णा डॉ. माधव पोतदार पृ.99

[216] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे, लोकवाङमयगृह, पृ.21

[217] अमर अण्णा डॉ. माधव पोतदार पृ.133

वर्ग रहित समाज के लिए अमर ने क्रांति का गीत गाते हुए शस्त्र-अस्त्र उठाने की बात 'बर्फ पेटला' , प्रणाम, तांबडं फुटल, आदि कविताओं के माध्यम से की है। अमर ने हमेशा शोषितों को एक होकर लढ़ने का संदेश अपनी कविता के माध्यम से दिया है। शोषितों में क्रांति के प्रति उत्साह भरते हुए अमर ने लिखा है -

"रोक नहीं सकता कोई मजदूरों का नारा

रोक नहीं सकता कोई, बहते जल की धारा।।

जो पत्थर दर्या को रोके

दर्या में डुब जाये

आव नया तराना गाये "[218]

लोकशक्ति की आराधना करनेवाला यह कवि कल का सपना देखता है। इस कल के लिए वह आज के अन्याय व अत्याचार को आग और अंगार से जलाकर भस्म कर देना चाहता है। यह वह अंगार है जिसे कवि ने निगल लिया है और ऐन वक्त पर इसे उगलकर शोषण रूपी भस्मासूर को जलाना चाहता है। कवि कहता है कि यह अंगार कभी न बूझने वाला है

"आता नाही हा मरणार ।

जीवन प्यालेला अंगार

वाईट ते सगळे जळनार ।

मागमूस नाही राहणार

आहे अग्नीचा निर्धार ।

खोटा कोण कसा करणार

नाही हो आता विझणार..."[219]

नारायण सुर्वे की कविता का उद्देश्य ही समाज, सत्ता,और व्यवस्था परिवर्तन की है। रोजी-रोटी के सवाल ने कवि को झकझोर दिया है। रोजी-रोटी तो मूलभूत प्रश्न है इसके साथ ही व्यवस्था में परिवर्तन कवि चाहता है । सुर्वे उस व्यवस्था की कल्पना करता है जिसमें उच्च-निम्न, शोषक-शोषित वर्ग न हो वह व्यवस्था जो समतामूलक और सम्यक हो । कवि कहता

[218] अमर अण्णा डॉ. माधव पोतदार पृ.83

[219] अमर अण्णा डॉ. माधव पोतदार पृ.157

है कि ऐसी व्यवस्था अधिकांश जनता चाहती है तब वे सभी मेरे साथ है मैं अकेला नहीं। ऐसी व्यवस्था लाने के लिए क्रांति होनी चाहिए तभी तो कवि अपनी कविता में कई जगह शोषकों को तलवार से बात करता है।

"एकटाच आलो नाही युगाची ही साथ आहे

सावध असा तुफानाची हीच सुरुवात आहे

कामगार आहे मी तळपती तलवार आहे

सारस्वतांनो थोडासा गुन्हा घडणार आहे "[220]

सुर्वे ने माझे विद्यापीठ में 'ऊठ' शीर्षक कविता मे कोने में पडी तलवार उठाने की बात की है। क्योंकि इस दुख, दर्द और पीडामय जीवन को बदलने के लिए यह एक मात्र मार्ग समझते है। कवि कहता है कि इस तलवार पर कभी मैने अपना नसीब लिखा था -

"ऊठ तेवढी ती कोपऱ्यातली तलवार शोधून ठेव

एके काळी तिच्यावर मी माझे नशीब घासले होते "[221]

' माझे विद्यापीठ ' शीर्षक कविता के अंत में कवि यह समझाने की कोशिश करता है कि उच्च वर्ग के साथ संघर्ष में दो मार खाना तो पडेगा या देना पडेगा घबराने से नहीं चलेगा। सुर्वे ने निश्चय किया है कि जिकर या मरकर मंजिल तो हासिल करनी ही है -

"आता आलोच आहे जगात, वावरतो आहे ह्या उघड्या नागड्या वास्तवात।

जगायलाच हवे, आपलेसे करायलाच हवे, कधी दोन घेत

कधी दोन देत"[222]

---

[220] निवडक नारायण सुर्वे, संपा. कुसुमाग्रज, पृ.1

[221] माझे विद्यापीठ -नारायण सुर्वे , पृ.60

[222] माझे विद्यापीठ -नारायण सुर्वे , पृ.16

निष्कर्ष -

मराठी और हिंदी कवियों ने ईश्वर, धर्म और धर्मग्रंथों को नकारते हुए मार्क्सवादी दृष्टिकोण से समाज व्यवस्था को देखा है । उभय भाषाओं के कवियों ने स्त्री, प्रेम, सौंदर्य के प्रति मार्क्सवादी दृष्टिकोण से देखते हुए अभिजात कवियों के मानदंडों, कसौटियों को नकारा है । इनकी कविताएँ उन तीन चौथाई हिंदुस्तान से संबंधित है जो राष्ट्रीय उत्पादन और विकास की रीढ़ कही सकती है । पूंजीपति लोग पूँजी के बल पर सारे राष्ट्र के वर्तमान और भविष्य कुंडली मारकर बैठ गए है । सामंतों, पूँजीपतियों, साहुकारों की इस जमात पर नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शाहीर अमर शेख और अण्णाभाऊ साठे ने कसकर प्रहार किया है । इनकी कविता वैचारिक कविता है । उभय भाषाओं के कवियों ने हमेशा पीड़ित, शोषित जनता के प्रति सहानुभूति दिखाई है । इस अध्याय में नारी के प्रति दृष्टिकोण,ईश्वर के प्रति दृष्टिकोण , पूँजीपति, सामंतों के प्रति घृणा, क्रांति में आस्था आदि मुद्दों पर विस्तार से चर्चा की गयी है ।

तृतीय अध्याय

हिंदी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना शिल्प के संदर्भ में

शिल्प का प्रतिफलन देखने से पहले शिल्प क्या है ? देखना आवश्यक है । शिल्प का अर्थ है शैली, कार्य-पद्धति, विशेष उपाय, यंत्र चातुर्य प्रविधि । इसके अतिरिक्त कला, कारीगरी, हस्तकर्म, रूप, आकृति, निर्माण को भी शिल्प का ही पर्याय स्वीकार किया जा सकता है । संस्कृत में शिल्प पद का अर्थ कौशलपूर्ण कार्य है और इसे कला का पर्याय कहा गया है ।

शिल्प की शाब्दिक व्याख्या से ज्ञात होता है कि शिल्प का अर्थ ढंग, विधि, रीति या विधान है। काव्य के संदर्भ में शिल्प का संबंध अभिव्यक्ति की प्रणाली से है । कैलास वाजपेयी के अनुसार - "काव्य कृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढाँचा तैयार किया जाता है, वे सब काव्य शिल्प के तत्व कहे जाते हैं । शिल्प विधि रचना की उन प्रमुखताओं का लेखा-जोखा है, जिनके आधार पर रचना मूर्त हो चुकी है ।"[223] डॉ. मोहन अवस्थी ने काव्य-शिल्प की सैद्धांतिक व्याख्या करते हुए कहा है - "काव्य-विधान काव्य का विज्ञान है । कविता करने की विधि से लेकर कविता संबंधी गुणों व दोषों का विधिवत ज्ञान उसके भीतर आ जाता है और इस ज्ञान का आत्म प्रकाश काव्य का शिल्प है ।"[224]

शिल्प सजगता भावाभिव्यक्ति का माध्यम है तथा कलात्मक सुरुचि और सौंदर्यबोध की प्रतिभा संपन्नता भी अभिव्यंजना के इस कलागत पक्ष का निर्वाह मार्क्सवादी कविता में एक सीमा तक उपेक्षित रहा है । कला संबंधी मान्यताओं के प्रति उनकी इस उदासीनता का कारण उनका जनवादी दृष्टिकोण है । शिल्प पक्ष की समृद्धि प्रगतिवादी पूर्व छायावादी कविता की विशेषता रही है । कलागत मानदंडों का ऐसा घटाटोप जो सफल अभिव्यक्ति का माध्यम न बनकर इतना दुरुह, इतना अस्पष्ट और इतना वैयक्तिक हो गया कि भाषा, शैली, विधाएँ और उसके अलंकरिक रुपों में ही विकसित हुआ । विचार जगत की इस सीमा पर

---

[223] निराला के काव्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन - वेदवत शर्मा -पृ.06

[224] बृहत हिंदी कोश - पृ1750

पहुँचकर हिंदी कविता को यह महसूस होने लगा कि अब हिंदी कविता न रस की प्यासी है, न अलंकार की इच्छूक और न संगीत की तुकांत पदावली की भूखी है । अब वह चाहती है, किसान की वाणी, मजदूर की वाणी और जन-जन की वाणी ।

छायावादी भावभूमि के अनुकूल जिस भाषा, शैली और शिल्प आदि का विकास हुआ, छायावादोत्तर काल की काव्य-प्रवृत्ति के लिए अनुपयुक्त हो गया। काव्यगत रीतियों एवं काव्यशास्त्रीय गरिमा का स्वयं छायावादी सौंदर्योपासक कवि पंत ने तिरस्कार किया उन्होंने 'युगवाणी' में छंद एवं प्रास के बंधनों से मुक्त होने की बात कही है -

“खुल गये छंद के बंध
प्रास के रजत पाश,
अब गोत मुक्त
युगवाणी बहती आयास ।”[225]

अलंकार और छंद के मोह में कविता जटिल और क्लिष्ट होती गई । दूरारुढ कल्पना के प्रलोभन में जीवन की वास्तविकता, काव्य का सत्य और आदर्श, छंद और अलंकार के मायाजाल में घुल गया । इसीलिए भावप्रवण कवि को अपनी युग-दृष्टि का अनुभव करना पड़ा और अलंकार का परिष्कार भी

"तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार
वाणी मेरी क्या तुम्हे चाहिए अलंकार ।"[226]

शिल्प और शैली के प्रति मार्क्स अत्यंत आग्रहशील थे । इस सम्बन्ध में वे किसी भी किस्म के नियम या प्रतिबंध के विरुद्ध थे । उन्होंने लिखा है - “मेरी शैली ही मेरी सबसे बड़ी वसीयत है यह मेरा आत्मिक व्यक्तित्व है । मैं इसके सम्बन्ध में किसी भी कानून का बंधन स्वीकार करने को तैयार नहीं हूँ ...! सबको प्रकृति का सौंदर्य प्रिय है - किंतु क्या कोई गुलाब की खुशबू उससे छीनकर बायोलेट को दे देना पसंद करेगा ? यदि नहीं, तो यदि मै व्यंग्यकार हूँ, तो मुझसे गुरु-गंभीर लेखन की उम्मीद क्यों की जाए ? शबनम की बूँद को सूरज की किरणें, इंद्रधनुषी रंगों में रंग देती है, किंतु आत्मा का सूरज उनमें न जाने कितने रंगों और

[225] युगवाणी - पंत, नवदृष्टि
[226] युगवाणी - पंत, ग्राम्या

आकारों का दर्शन भी कर सकता है। फिर भी हमसे कहा जाता है कि उसमें हम केवल एक ही रंग-रूप देखे - अधिकृत (official) रंग रूप ! आत्मा की असली अभिव्यक्ति है आनंद, प्रकाश किंतु सिर्फ अंधकार को आप उसकी एकमात्र अभिव्यक्ति मान बैठे है (द इसेंसियल फार्म आफ द स्प्रिट इज गेइटी, लाइड, एण्ड यू मेक शेडोज इट्स ओनली प्रापर मैनीफैस्टेशन)"[227]

लेनिन यथार्थवादी शिल्प के कट्टर समर्थक थे । "स्वस्थ सामाजिक यथार्थ (स्टर्डी सोशल रियलिस्म) का कलात्मक चित्रण किसी भी कृति की विशेषता होनी चाहिए । नवीनता के नाम पर जो तरह-तरह के वाद चल रहे हैं - जैसे अभिव्यंजनावाद, भविष्यवाद. धनवाद इत्यादि बिल्कुल कोरी बकवास है। इन्हें मानव की उत्कृष्ट शैली के रूप में कतई स्वीकार करने को तैयार नहीं हूँ । न तो मैं उन्हे समझता ही, न उनमें कोई आनंद या अर्थ देने की शक्ति पाता हूँ ।"[228] क्रांतिकारी होकर भी लेनिन काव्य और कला के रूप के क्षेत्र में, क्रांति के हामी न थे ।

मार्क्सवादी कलाकार कल्पनालोक में विचरण न कर यथार्थ का चित्रण करते है, क्योंकि साहित्य का उद्देश्य वर्गहीन समाज का निर्माण मानते है । मार्क्सवादी उसी साहित्य को श्रेष्ठ मानते है जिससे वर्ग-संघर्ष और क्रांति का स्वर बड़े । कम्यूनिस्ट मैनीफेस्टो में मार्क्स और एंजिल्स ने साहित्य के उद्बोधनात्मक प्रयोजन का उल्लेख इन शब्दों में किया है - "ये साम्यवादी प्रकाशन मौजूदा समाज के हर सिद्धांत पर आक्रमण करते हैं , अत: श्रमिक वर्ग को जागरुक और सचेतन बनाने वाली बहुमूल्य सामग्री इनमें भरी हुई है ... इनमें व्यावहारिक रूप से ये सुझाव हैं कि, कैसे शहर और गाँव का अंतर कम किये जाये, कैसे उत्पादन के साधनों पर से, मिलों और उद्योगों पर से, व्यक्ति की निजी मिल्कियत और हक समाप्त किया जाये, कैसे वर्ग-भेद समाप्त करके एक वर्गहीन समाज की स्थापना की जाये आदि...। यह ठीक है कि इन प्रकाशनों के मूल स्त्रोता अनेक अर्थों में क्रांतिकारी थे, किंतु बाद में उनके अनुकरणकर्ता महज एक यूटोपिया के स्वप्न दृष्टा बन गये, उनके साहित्य में वर्ग-संघर्ष का स्वर मंदतर होने लगा और समझौता-परस्ती की भावनाएँ अधिकाधिक मुखर होने लगी ।"[229]

---

[227] एम.ई.जी.ए. पार्ट 1, वा.1- संपत ठाकूर से उद्धृत, पृ.154

[228] आर्ट अँड लिटरेचर - संपत ठाकूर से उद्धृत, पृ. 36

[229] कम्यूनिस्ट मैनिफेस्टो, पृ 93 - 94

उक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि मार्क्स और एंजिल्स साहित्य में न केवल वर्गहीन समाज की परिकल्पना देखना चाहते हैं, वरन् वर्ग-संघर्ष का पूर्णत: प्रतिपादन भी। यदि कथ्य में वर्ग-संघर्ष और क्रांति के स्वर मंद हुए तो मार्क्स की नजर में वह साहित्य घटिया हो जाता है।

खुश्चेव काव्य उसी को मानते हैं जो लोगों के जीवन से जुड़ा हो और प्रतीक, बिम्ब भी रोजमर्रा जीवन से लिये गए हो। वे एक सफल लेखक के लिए यह अनिवार्य मानते थे कि, "वह लोगों के रोजमर्रा के जीवन से, उनके कार्य-क्षेत्रों और परिस्थितियों से पूर्णत: सम्बन्धित हो। तभी वह चाहे लेखक हो, चाहे कलाकार, जनता की आत्मा, उनके स्वभाव और उनकी आकांक्षाओं को समझ सकेगा।"[230] खुश्चेव शिल्प के संबंध में सहज बोधगम्यता के कायल थे। उनके अनुसार - "हमारी जनता की आकांक्षा है कि हमारे साहित्यकार, चित्रकार और संगीतज्ञ अपने-अपने क्षेत्रों में मेहनतकश जनता के संघर्षों और उपलब्धियों की अभिव्यक्ति करे। उनकी रचनाओं का स्वरूप इस प्रकार हो कि वह सामान्य जनता को आसानी से समझ में आ जाये।"[231]

किसी युग की समाप्ति एवं नये युग के आगमन की भूमिका निश्चित अवधि के पूर्व ही होती है। वैसे ही प्रगतिवाद का भी हुआ। अतिशय कल्पनाप्रियता और एकांत की प्रतिक्रिया में प्रगतिवाद का जन्म हुआ। प्रगतिशील लेखक संघ का पहला अधिवेशन अप्रैल 1936 में मुंशी प्रेमचंद के अध्यक्षता में लखनऊ में हुआ। जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया - "अब साहित्य मन बहलाव की चीज नहीं हैं, मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ उद्देश्य है। अब वह केवल नायक-नायिका के संयोग की कहानी नहीं सुनाता किंतु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है। और उन्हें हल करता है। हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधिनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करें, सुलाएँ नहीं क्योंकि अब ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"[232]

---

[230] एस.एस. खुश्चेव पृ.10, संपत ठाकूर से उद्धृत, पृ.40

[231] एस.एस. खुश्चेव पृ.10, संपत ठाकूर से उद्धृत, पृ.41

[232] हिंदी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - उमेश शास्त्री पृ.21-22

अभिजात काव्य में कवि कल्पना के पुल बांधकर उस पर चला करते थे । प्रेम का आदर्श वासना को तृप्त करने के लिए था । जो कवि जितना भाषा और शब्दों का चमत्कार दिखाता था उसकी उतनी ही वाह-वाह होती थी । किंतु मार्क्सवादी विचारधारा ने साहित्य की कोरी भावुकता को निकालकर उसे बौद्धिक आधार प्रदान किया है । लंदन में तैयार हुए 'प्रगतिशील लेखक संघ' के घोषणापत्र का सारांश परिशिष्ट-2 में साहित्य का उद्देश्य में प्रेमचंद ने कहा है - "हमने जिस युग को अभी पार किया है, जीवन से कोई मतलब न था । हमारे साहित्यकार कल्पना की एक सृष्टि खड़ी करके उसमें मनमाने तिलस्म बांधा करते थे । कहीं फिसान-ए-अजायब की दास्तान थी, कहीं बोस्ताने-ख्याल की और कहीं चंद्रकांता-संतति की । इन आख्यानों का उद्देश केवल मनोरंजन था और हमारे अद्‌भुत रस-प्रेम की तृप्ति, साहित्य का जीवन से कोई लगाव है, यह कल्पनातीत था । कहानी है, जीवन जीवन, दोनों परस्पर-विरोधी वस्तुएँ समझी जाती थीं । कवियों पर भी व्यक्तिवाद का रंग चढ़ा हुआ था । प्रेम का आदर्श वासनाओं को तृप्त करना था, और सौंदर्य का आँखों को । इन्हीं श्रृंगारिक भावों को प्रकट करने में कवि-मंडली अपनी प्रतिभा और कल्पना के चमत्कार दिखाया करती थी । पद्य में कोई नई शब्द-योजना, नई कल्पना का होना दाद पाने के और क़फ़स (पिंज़रा), बर्क (बिजली) और खरमन (खलियान) की कल्पनाएँ, विरह-दशाओं के वर्णन में निराशा और वेदना की विविध अवस्थाएँ, इस खूबी से दिखायी जाती थी कि सुनने वाले दिल थाम लेते थे।"[233] प्रेमचंद ने अभिजात साहित्य का वस्तुस्थिति का वर्णन करते हुए उसे कैसे होना चाहिए ? साहित्य को मनोरंजन से बाहर आकर जीवन की समस्याओं का यथार्थ चित्रण कैसे किया जाए यह भी उन्होंने इसी परिशिष्ट में बताया है- "अब साहित्य केवल मन-बहलाव की चीज़ नहीं है, मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ उद्देश्य है । अब वह केवल नायक-नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता बल्कि जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है । अब वह स्फूर्ति या प्रेरणा के लिए अद्‌भुत आश्चर्यजनक घटनाएँ नहीं ढूँढता और न अनुप्रास का अन्वेषण करता है, किंतु उसे इन प्रश्नों से दिलचस्पी है, जिनसे समाज या व्यक्ति प्रभावित होते हैं । उसकी उत्कृष्टता की वर्तमान कसौटी अनुभूति की वह तीवृता है, जिससे वह हमारे भावों और विचारों में गति पैदा करता है ।" [234]

---

[233] प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य - रेखा अवस्थी, पृ.320

[234] प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य - रेखा अवस्थी, पृ.320

अभिजात काव्य सौंदर्य को लेकर जो धारणाएँ थी जो कसोटीयाँ थी वह मार्क्सवादी विचारधारा से बदल गई है । पहले स्त्री सौंदर्य कसौटी गुलाबी रंग के होंठ, लंबे काले नागीन जैसे बाल, घने और तीखे भौंहें, उन्नत उरोज आदि थे । किसी नायिका की कल्पना करके श्रृंगारीक चित्रण किया जाता था जिससे कामवासना जागृत होती थी, किंतु आज एक मेहनत करनेवाली स्त्री में, उसके पसीने में भी सौंदर्य देखा जा रहा है । 'प्रगतिशील लेखक संघ' ने कवियों, लेखकों को समय-समय पर घोषणापत्र के द्वारा मार्गदर्शन देते रहे हैं । 10 अप्रैल 1936 को लखनऊ में संपन्न हुए प्रगतिशील लेखक संघ के पहले अधिवेशन में प्रेमचंद का अध्यक्ष पद से दिया गया उद्घाटन भाषण का कुछ अंश इस संदर्भ में उल्लेखनीय है - "उपवास और नग्नता में भी सौंदर्य का अस्तित्व संभव है, इसे कदाचित वह स्वीकार नहीं करता । उसके लिए सौंदर्य का सुंदर स्त्री है - उस बच्चों वाली गरीब रूप-रहित स्त्री में नहीं, जो बच्चे को खेत की मेड़ पर सुलाए पसीना बहा रही है ; उसने निश्चय कर लिया है कि रंगे होठों, कपोलों और भौहों में निस्संदेह सुंदरता का वास है - उसके उलझे हुए बालों, पपड़ियाँ पड़े हुए होठों और कुम्हलाए हुए गालों में सौंदर्य का प्रवेश कहां ?

पर यह संकीर्ण दृष्टि का दोष है । अगर उसकी सौंदर्य देखने वाली दृष्टि में विस्तृति आए तो वह देखेगा कि रंगे होठों और कपोलों की आड़ में अगर रूप-गर्व और निष्ठुरता छिपी है तो इन मुरझाए होठों और कुम्हलाए हुए गालों के आंसुओं में त्याग, श्रद्धा और कष्ट-सहिष्णुता है । हां, उसमें नफासत नहीं, दिखावा नहीं, सुकुमारता नहीं ।"[235]

काव्य में शिल्प से तात्पर्य सामान्यत: अभिव्यंजना की पद्धति विशेष और उस अनुक्रम से लिया जाता है जो रचना के प्रारंभ से अंत तक कुछ विशिष्ट तत्त्वों के माध्यम से शिल्पमूर्त किया जाता है । वस्तुत: शिल्प उन प्रमुखताओं का लेखा जोका है जिनके सहारे रचना मूर्त होती है । इन प्रमुखताओं के भाषा, अप्रस्तुत, प्रतीक, बिंब और छंद आदि प्रमुख होते हैं । कई बार कविता में शिल्प नया और मौलिक भी होता है ।

नागार्जुन की रचनाओं में जैसे वैविध्य है वैसे ही शिल्प में भी वैविध्य है । नागार्जुन कला के प्रति कभी सतर्क नहीं रहे । उनकी दृष्टि हमेशा कथ्य की ओर रही । कथ्य वजनी हो, बात गहरी हो तो शिल्प अपने-आप तद्नुकूल आचरण करने लगता है । उनका मानना भी था

---

[235] प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य - रेखा अवस्थी, पृ.326

"शब्द को क्यों दे अर्थ का दान
ध्वनि ही ध्वनि देते
देते भाव लय तान
भावों के दलदल में आकंठ मग्न काव्य-कला
त्राही-त्राही कर रही उद्धार करो उसका ।"[236]

नागार्जुन ने कभी शिल्प सजाने-संवारने पर अतिरिक्त ध्यान नहीं दिया । अधिकांशत: उनके काव्य में शब्दों का मिजाज सरल है । काव्य में वस्तु और शिल्प पर अपना मत स्पष्ट करते हुए नागार्जुन लिखते हैं - "शिल्प की अपनी शक्ति होती है और शब्द की अपनी ताकत । दोनों महत्वपूर्ण है । कोई भी कृति सोद्देश्य होनी चाहिए । जब मन में नई बात कौंधती है तो अपनी मौलिकता के साथ शिल्प भी लाती है । हाँ यह जरूरी है कि उसे साधना पड़ता है । शिल्प से कोई भी इनकार नहीं करता । मैं तो तुकबंदी और छंद का भी पक्षधर हूँ परंतु उसकी विषय-वस्तु दमदार होनी चाहिए, तभी उसमें प्रखरता आती है । आज की कविता जन कविता है । कविता कवि के व्यापक अनुभव से जन्म लेती है । कविता में कथ्य बहुत महत्वपूर्ण होता है, परंतु कहने का ढंग भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता । मैं भी कविता के लिए नये फार्म तलाशता हूँ ।"[237] नागार्जुन के कविता का शिल्प पक्ष को हम निम्न मुद्दों द्वारा देख सकते हैं।

केदारनाथ अग्रवाल बुंदेलखंड के थे और उन्होंने अपना कमासिन गाँव तथा क्षेत्र के लोक-जीवन के बारे में जितना लिखा है शायद ही हिंदी साहित्य में किसी कवि ने लिखा होगा। उनके बारे में हिमांशु पंड्या ने सही कहा है "केदारनाथ अग्रवाल बुंदेलखंड के थे । यह उनकी कविता के बारे में उतना ही जरूरी तथ्य है जितना यह कि नागार्जुन मिथिला के थे और गोरख पांडेय भोजपुर के किसान संवेदना से ओत-प्रोत । केदार जी ने न सिर्फ बुंदेलखंड की लोकगायन शैलियों और छंदो मसलन आल्हा का यथोचित उपयोग किया बल्कि अपनी कविता की विषय वस्तु इस हिंदी पट्टी के जातीय जीवन और परिवेश को ही बनाया ।"[238] उनकी कविता में जो प्रतीक, बिंब देखने को मिलते हैं वह ठेठ लोकजीवन से संबंध रखते हैं । उनकी काव्य भाषा में सहजता है जो पाठक को बाँधकर रखने में सफल हुई है ।

---

[236] प्रतिनिधि कवि - हरिचरण वर्मा - पृ.41
[237] नागार्जुन विचार - संपा.महावीर अग्रवाल - सेतु पृ.274-75
[238] कुरजां संदेश मार्च-अगस्त 2011, सं. प्रेमचंद गाँधी. पृ.54

मुक्तिबोध काव्य दो किस्मों का मानते हैं - यथार्थवादी और भाववादी या रुमानी। उनके शब्दों में "कलाकृति स्वानुभूत जीवन की कल्पना द्वारा पुनर्रचना है। यथार्थवादी शिल्प के अंतर्गत, कलाकृति यथार्थ के अंतर्नियमों के अनुसार यथार्थ के बिंबों की क्रमिक रचना प्रस्तुत करती है। किंतु भाववादी रोमैंटिक शिल्प के अंतर्गत कल्पना अधिक स्वतंत्र होकर जीवन की स्वानुभूत विशेषताओं को प्रतीक चित्रों द्वारा प्रस्तुत करती है।"[239] मुक्तिबोध ने छंद को बंधहीन रखने का प्रयास किया है, ताकि लय और तुकों का आग्रह उनके कथ्य की तीव्रता को शिथिल न बना दे। मुक्तिबोध की कई कविताओं की भाषा खुरदरी, अनगढ़ तथा उबड़-खाबड है लेकिन अभिव्यक्ति के अपूर्व गुणों से युक्त है। मुक्तिबोध के काव्य में पारंपारिक प्रतीकों की अपेक्षा नवीन प्रतीकों का प्रयोग ही अधिक है जिसे कविने स्वयं निर्मित किया है।

3.1 भाषिक विधान

भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा की नितांत आवश्यकता है। साहित्य के लिए भाषा यदि शरीर है, तो भाव आत्मा। दोनों का संबंध अन्योन्याश्रित है। कविता केवल भावों की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, बल्कि सुंदर भाषा द्वारा भावों की अभिव्यक्ति है। भाषा शैली ही साहित्यकार की पहचान होती है, प्रत्येक रचनाकार अपनी भाषा-शैली के आधार पर अलग रूप में पहचाना जाता है। कभी-कभी सरल शब्द-योजना भी प्रभावी, भावपूर्ण और ओजमयी बनती है और कभी-कभी परिष्कृत भाषा शैली भी प्रभावहीन हो जाती है। प्रत्येक रचनाकार का अभिव्यक्ति का अंदाज अलग होता है। रचनाकार की सार्थक अभिव्यक्ति का अंदाज अलग होता है। रचनाकार की सार्थक अभिव्यक्ति उसकी भाषा को शक्ति प्रदान करती है।

नागार्जुन की भाषा में प्रभावात्मकता, समर्थता और ह्रदय स्पर्शिता यह महत्वपूर्ण गुण है। दिल को छूलेनेवाली भाषा में यह कवि अपनी बात कभी सौम्यता से और कभी खुरदरेपन से व्यक्त करता है। मैनेजर पांडेय की दृष्टि में "प्राय: अच्छे कवि वे होते हैं, जिनकी काव्य-भाषा में सधी हुई कविता की उठान तो बहुत अच्छी होती है, लेकिन कुछ दूर आगे बढ़ने के बाद काव्य-भाषा लड़खड़ाने लगती है और कविता का ढाँचा चरमराने लगता है। महान

[239] कामायनी एक पूनर्विचार - मुक्तिबोध, पृ.3

कवि वे होते हैं, जिनके काव्य-संसार में काव्य-भाषा के अनेक रूप और स्तर मिलते हैं । ऐसे कवि हिंदी में तीन हैं - तुलसीदास, निराला और नागार्जुन ।"[240]

जनकवि नागार्जुन सामान्य जनता के दुख और पीड़ा की अभिव्यक्ति बिना किसी शब्दों की बुनावट सजावट से करते हैं । भलेही कहीं-कहीं उसमें रुखापन आ जाता है परंतु उसकी संवेदना की रागात्मकता उस पर मात कर देती है । उन्होंने कला से अधिक यथार्थ को महत्व दिया है । अर्थाभिव्यक्ति कवि की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । कथ्य यदि प्रभावात्मक हो तो शिल्प अपने-आप उसके अनुकूल बनता है । जान बूझकर किया हुआ श्रृगार कवि को पसंद नही है । फिर भी उनका शिल्प जानदार है भाषा सहज बोध-गम्य । नागार्जुन की भाषा का अपना अंदाज और मज़ा है । कविता के माध्यम से बात करने का कवि का अपना अलग ढंग है। काव्य भाषा के महत्व पर प्रकाश ड़ालते हुए नागार्जुन लिखते हैं - "अजब संसार है काव्य और कविता का कवि का काव्य भाषा से कवि के अन्तर्मन की, उसके मिजाज की पहचान हो जाती है । इसके साथ शनाख्त इस बात की भी कि कवि संघर्ष से जूझ रहा है या सुविधाओं से घिरे बोरडम से दोनों में बहुत बडा फर्क है ।" [241]

नागार्जुन की कविता में हिंदी भाषा का विराट रूप देखने को मिलता है । नागार्जुन उपयोगितावादी है इसीलिए उनका भाषा शिल्प भी सामान्य लोगों के उपयोग के लिए निर्मित हुआ है । नागार्जुन भाषा के अर्थ विस्तार को समझाते हुए लिखते हैं - "लेखक के निकट शब्द और अर्थ का रिश्ता बडा गहरा है । जिस शब्द का कोई अर्थ नहीं लेखक उसे क्यों ढोयेगा ? अपनी जमीन में क्यों बोयेगा ? कभी एक तमाशा और भी होता है, भारी भरकम शब्दों में चना बराबर अर्थ । भाषा में जितनी ही ऊपर की साज सजावट झैयम-झैयम, उतना ही विचार और चिंतन का दारिद्र्य़ । भाषा की सादगी फूहडता नहीं, संयम और सँवरना है । जीवन के सेहतमंद बदलाव मेरे निकट गहरे आकर्षक है ।"[242]

नागार्जुन की भाषा असली जन जीवन की भाषा है । उसमें कहीं भी दिखावटीपन नहीं है । परिस्थितिनुरूप भदेस और गँवार लगनेवाले शब्दों के यथार्थ और सार्थक प्रयोग नागार्जुन ने अपनी कविता में किया है । नागार्जुन के सीधे सरल शब्दों में गहरा प्रभाव डालने

---

[240] अलाव- संपा. राजकुमार कृषक पृ.101

[241] साहित्य शास्त्र - डॉ. माधव सोनटक्के पृ.155

[242] मेरे साक्षात्कार - नागार्जुन पृ.86

की क्षमता है। नागार्जुन की कविता किसी एक वर्ग के लिए नहीं बल्कि सबके लिए हैं। उनकी हजार-हजार बाहोंवाली कविताएँ हजार-हजार शब्दों को प्राण दे चुकी है। उनके शब्दों के संबंध में अरुण कमल लिखते हैं - "नागार्जुन को पढ़ने का अर्थ है हिंदी भाषा के वास्तविक जगत में लौटना, हिंदी के निजी स्वरूप और संस्कारों से परिचित होना। भाषा के इतने रूप बोलियों के इतने मिक्स्चर उनकी कविताओं में मिलते हैं कि यदि उनके काव्य के अन्य प्रसंगों को छोड भी दें तो सिर्फ अपनी भाषा के लिए वे हमेशा के लिए महत्वपूर्ण बने रहेंगे।"[243]

नागार्जुन का काव्य लेखन सरल और सहज भावों पर आधारित हैं। नागार्जुन की काव्य-भाषा में भदेस लगनेवाले शब्दों का प्रयोग भी बखूबी से हुआ है। कुछ शब्द खास नागार्जुनी शब्द-कोश के है परंतु इन शब्दों से उनका साहित्यिक महत्व कम नहीं हुआ बल्कि विषयानुरूप होने के कारण उसका असर अधिक गहरा होता है।

नागार्जुन की व्यंजना शक्ति अत्यंत प्रभावात्मक है। देखने में सीधे लगते हैं परंतु घाव मात्र गंभीर रूप से होता है। भाषा की सतर्कता के कारण व्यंजनात्मकता का बखूबी प्रयोग कवि ने किया है, चाहे वह व्यंजना शब्द-शक्ति हो या लक्षणा कवि उसका प्रयोग अत्यंत मार्मिकता से करता है। अर्थ गांभीर्य की दृष्टि से उनकी भाषा अत्यंत सरस बन पड़ी है। द्वंद्व व्यंग्यात्मक धार के साथ अपने अंदाज में प्रकट करते हुए लिखते हैं -

"टूटे सींगवाले साँडो का
यह कैसा चक्कर था
धर गाय खडी थी
उधर सरकसी बक्कर था
समझ न आयेगा बरसों तक
कैसा काला चक्कर था।"[244]

नागार्जुन की भाषात्मक व्यंजना शक्ति की अन्य कोई मिसाल नहीं है। जीवन की असंगतियों पर आधारित वक्रतापूर्ण शब्द शैली को नागार्जुन तीक्षणता और सूक्ष्मता के साथ

---

[243] कविता और समय - अरुण कमल पृ.31

[244] खिचडी विप्लव देखा हमने -नागार्जुन पृ.128

व्यक्त करते हैं । वास्तव में नागार्जुन यथार्थ के चितेरे है, भाषा के नही । परंतु जनभाषा में अनुभूति की अभिव्यक्ति उनकी कविता में जान ड़ालती है -

"इक तरफ-फूफकार रहा है लाल किले का भारी झंडा !
ओ बिहार, क्या देख रहा तू ! खाता चल नेहरु का डंडा !
दस हजार, दस लाख मरे पर झंडा उँचा रहे हमारा !
कुछ, हो काँग्रेसी शासन का डंडा उँचा रहे हमारा !"[245]

नागार्जुन की भाषा सामान्य लोगों की बोलचाल की भाषा रही है । व्यवहारोपयोगी और मुहावरों एवं लोकोक्तियों की शैली में नागार्जुन ने काव्य रचना की है । प्रगतिशील कविता का यह तथ्य है कि कविता के भावों की अनुभूतियों को पाठक सहजता से समझ सके । नागार्जुन ने भी अपनी कविता में इस सहज संप्रेषणीयता को अपनाते हुए मुहावरों, लोकोक्तियों का यथायोग्य प्रयोग किया है । 'लोहा पीटना', 'फूले न समाना', 'तीसो दिन दीवाली', 'दीमक चाट जाना', आदि अनेक मुहावरों का प्रयोग किया है । नागार्जुन लोकजीवन से घूले मिले होने के कारण भाषा शैली की दृष्टि से इनकी कविता विविधमुखी है। उनकी कविता में संस्कृत, बंगला, उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषा के शब्दों के साथ-साथ मैथिली के शब्दों का प्रयोग भी देखने को मिलता है । सीधी सरल और सामान्य लोगों की बोलचाल की भाषा ही कवि को अधिक प्रिय है । उनकी एक हिंदी कविता में बंगला का प्रयोग किया गया है । इस कविता का शीर्षक 'धाकचो खोकोन ओइ' बंगला भाषा में है -

"कानो मे बार बार गूंजने लगा था
धाकचो खोकोन ओइ जे गांधी महात्ता "[246]

बचपन से ही नागार्जुन पर संस्कृत भाषा का प्रभाव था । संस्कृत में ही उन्होने गाँव की पाठशाला में ज्ञानार्जन किया था । संस्कृत काव्य भाषा का प्रभाव और संस्कार कवि की कविता में मिलता है । संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग यत्र-तत्र उनकी कविता में व्याप्त है। इतना ही नहीं संस्कृत मंत्रो की तरह कविता भी नागार्जुन लिखते हैं -

---

[245] नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएं - शोभाकांत मिश्र पृ 110
[246] नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएं - शोभाकांत मिश्र पृ 130

"ओं शब्द ही ब्रह्म है

ओं शब्द और शब्द और शब्द और शब्द

ओं प्रणव, ओं नाद ओं मुद्राएँ

ओं भाषण .....

ओं प्रवचन .....

ओं हुकार, ओं फटकार, ओं शीत्कार

ओं आस्फालन, ओं इंगित, ओं इशारे

ओं नारे और नारे और नारे और नारे"[247]

अंग्रेजी शब्दों का भी नागार्जुन ने यथायोग्य स्थान पर प्रयोग किया है । उनकी एक 'प्लीज एक्सक्यूज मी' अंग्रेजी शीर्षक कविता है -

"सहसा बोल पड़ी ओ स्सारी !

लिया नहीं इसको ?

प्लीज एक्सक्यूज मी, बक बक करती रही ।"[248]

नागार्जुन ने उर्दू शब्दों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में किया है, जैसे बेरूखी, निगाह, अनामत फिक्र, सुलह, दुरुस्त, शौक, अलहता, अलविदा, नदारद, दरवेश, होश, हवास, खैर आदि । नागार्जुन उर्दू के शब्द प्रयोग से अपनी काव्य भाषा को व्यावहारिक बनाते हैं -

"जो प्लेटफारम पर जमा दम यात्रियों की भीड में

यह लीफलेट गिरा गया है"[249]

नागार्जुन जनता के कवि होने के कारण वे जनता की भाषा में ही अभिव्यक्ति पसंद करते हैं । भाषा ही कवि के स्वभाव और परिवेश की पहचान होती है, जो नागार्जुन की कविता में देखने को मिलती है । अपनी विषय वस्तु के अनुकूल भाषा का चयन कर कवि ने अपने काव्य संसार को नया आयाम देने का सफल प्रयास किया है । इनकी भाषा के विविध रूप और संप्रेषणीयता के कारण नागार्जुन का काव्य भाषा संसार प्रभावी बना है ।

---

[247] नागार्जुन - प्रभाकर माचवे पृ.116

[248] नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएं - शोभाकांत मिश्र पृ.114

[249] इस गुब्बारे की छाया में -नागार्जुन पृ.90

केदारनाथ अग्रवाल की भाषा ज्यादातर आम आदमी की बोलचाल की भाषा है । उनकी काव्य भाषा सहज साधारण लगती है जिसके कारण संप्रेषणीयता बाधित नहीं होती। इनके काव्य में तद्भव एवं देशज शब्दों का सफल प्रयोग हुआ है । इनके कविता को पढ़ते ही बात खुल जाती है कि कवि क्या कहना चाहता है । भाषा शैली को लेकर कवि केदारनाथ अग्रवाल ने 'अपूर्वा' काव्य-संग्रह की भूमिका में जो कहा है वह यहाँ उल्लेखनिय है - "मेरी अधिकांश कविताएँ छोटे कद की हैं । देखने में सहज साधारण लगती हैं । न फैशनेबुल है न नाटकीय, मंचीय तो वह कतई नहीं हैं । कहने में कहती हैं, थोडे में कहती हैं, विवेक से कहती हैं । ऐसे ढंग से कहती हैं कि बात खुल जाए, पूरी तरह स्पष्ट हो जाए । समझने वाले समझ जाये कि कही गयी बात को कही गयी और कही गयी तो दायित्व निर्वाह कर सकी या नहीं और सही दृष्टि और दिशा देने में सक्षम हुई या नहीं ।"[250]

भाषिक सरलता के कारण पाठक को कविता का अर्थ समझने में गलतफहमी नहीं होती, और पाठक अर्थ की गहराई तक जाकर सोच विचार करता है । यही कारण होगा कि आज केदारनाथ अग्रवाल की कविताएँ सबको प्रिय लगने लगती हैं। कवि जिन लोगों के लिए कविता लिखता है वे भली-भाँती जानते हैं और समझते भी हैं । एक कवि तभी सफल होता है जब उसकी कविता को लोग पढ़े और समझे । इस संदर्भ में रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल' में जो कहा है वह सार्थक प्रतीत होता है - "व्यंजना की परिधि छोटी होती है, आमतौर से भाषा सरल होती है, आदमी धोखा खा सकता है । जल्दी से पढ़ा, कुछ अर्थ समझ में आया, कुछ न आया, आगे बढ़ गये । ठहरने, सोचने, अर्थ की गहराई तक पहुँचने की फुर्सत नहीं । इसलिए केदार की बहुत सी रचनाएँ कवियों को विशेष प्रिय रहेंगी, वे अपने काव्यबोध के सहारे उनमें गहरे पैठेंगे, यहाँ बहुत सी कविताएँ जल्दी से पढ़ कर उन पर विद्वत्तापूर्ण भाषण करने की बाध्यता न होगी । आप कविता का मर्म समझते हैं या नहीं, यह परखने के लिए केदार की ऐसी रचनाएँ कसौटी हैं ।"[251]

केदार ने 'फूल नही रंग बोलते हैं' इस काव्य संग्रह के एक कविता में कहा है 'मैं अनास्था पर आस्था का शिलालेख' शिलालेख धीरे धीरे लिखे जाते हैं, शिलालेख पढे भी जाते

---

[250] अपूर्वा - केदारनाथ अग्रवाल पृ.13

[251] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ 88

हैं किंतु गाये नहीं जाते । केदार की बहुत-सी कविताएँ शिलालेखों की तरह है । एक-एक शब्द को वे सावधानी से रखते हैं । इन शिलालेखों के गद्य में लय की जबर्दस्त विविधता है ।

"हो न हो तुम्हें
हमें है हमारी सत्ता का बोध,
कि हम है संगमरमर के भीतर जल रहे दिये ..."[252]

इस कविता में भाषा बोलचाल की है, विन्यास परिवर्तन से वह असाधारण सी लगती है । संगरमरमर और दिया, दोनों साधारण जीवन से लिये हुए उपमान है किंतु इनमें एक नया संबंध स्थापित करके, संगमरमर के भीतर जल रहे दिये लिख कर केदार ने चित्र में गरिमा भर दी है । इसमें भिन्न स्तर पर

"देर हो गयी है दिवाकर को गये अदृश्य में
विवर्ण हो गया है सवर्ण तह पर खडा
पूर्व का ऐरावत"[253]

शब्द योजना, उपमान कविता की गति-सब कुछ महाकाव्यों की शैली जैसा असाधारण है । उनके कुछ कविताओं की गति साधारण गद्य की गति के और नजदीक आ गई है, लंबे वाक्य खंडों की जगह वाक्य के छोटे-छोटे टुकडे है, फिर भी सबकुछ असाधारण है ।

अनेक बडे कवियों की तरह केदार को अपनी रचनाओं में समान रूप से सफलता नहीं मिली है । उनकी कई कविताएँ ऐसी है जो कविता का आरंभिक हिस्सा रचनात्मक दृष्टि से एकदम उत्कृष्ट है किंतु अंतिम भाग कमजोर हुआ है उदाहरण के तौर पर उनकी 'सोन-अगिनशाम' नाम शीर्षक कविता । केदार तुकबंदी के मोह में पडकर कभी-कभी अच्छी कविता को भी बिघाड देते हैं जैसे -

---

[252] फूल नहीं रंग बोलते है - केदारनाथ अग्रवाल पृ.107
[253] फूल नहीं रंग बोलते है - केदारनाथ अग्रवाल पृ.167

"यह धरती है उस किसान की

- - - - - - - -

नहीं कृष्ण की

नहीं राम की

नहीं भीम, सहदेव, नकुल की,

नहीं पार्थ की

नहीं राव की, नही रंक की

नहीं तेग, तलवार धर्म की

नहीं किसी की, नहीं किसी की

धरती है केवल किसान की ।"[254]

इस कविता में नहीं 'रंक की पंक्ति' की जगह 'धरती है केवल किसान की' लिखते तो ठीक होता किंतु तुकबंदी के चक्कर में उन्होंने 'नहीं रंक की' लिखा है जिसकी आवश्यकता नहीं है । इसका मतलब कतई यह नहीं कि केदार की तुकबंदीवाली हर कविता कमजोर है । उन्हें ऐसी बहुत सारी कविताओं में सफलता भी मिली है जैसे -

"कैसे जिये कठिन है चक्कर

निर्बल हम बलीन है मक्कर

तिलझन ताबड़तोड़ कटाकट

हड्डी की लोहे से टक्कर ।"[255]

केदार में चित्र खिंचने का बड़ा कौशल है । शरद में कवि को जो फागुन की याद आती है वह चित्र एकदम जिवंत है । 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' में एक कविता दो रूपों में छपी है । पहला रूप जो 13 अक्तुबर 1960 में छपी है -

1. "चोली फटी सरस सरसो की

लहँगा गिरा फागुनी नीचे

---

[254] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ 108

[255] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ. 320-21

चूनर उड़ी अकासी नीली
नंगी हुई पहाड़ी देखी ।[256]"

2. "चोली पटी सरस सरसो की
नीचे गिरा फागुनी लहँगा,
ऊपर उड़ी चुनरिया नीली,
देखो हुई पहाड़ी विवसन
आतप-तप्ता ।"[257]

दूसरे रूप की कविता का रचनाकाल 13 अक्तूबर 1961 है जो पहले के ठीक एक साल बाद का है । कवि ने पहली पंक्ति को जैसे का वैसा रखा है किंतु दूसरे में शब्दों का स्थानांतरण करके कलात्मकता का परिचय दिया है । दूसरे रूप की समीक्षा करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है - "केवल शब्दों का स्थान बदलने से पंक्ति कमजोर हो गयी हैं (यानि मुझे कमजोर लगती है) तीसरी पंक्ति मे चूनर की जगह चुनरिया है । वह चूनर से छोटी होगी । पहले पाठ में 'अकासी' शब्द चूनर का रंग ही नही, उसका आकाश की ओर उड़ना भी व्यंजित करता है । भारी परिवर्तन किया है चौथी पंक्ति में - 'नंग' की जगह 'विवसन' लोकगीत का रस फीका हो गया।"[258]

डॉ. रविरंजन उपर्युक्त दिये गये रामविलास शर्मा की बातों से असहमति जताते हुए कहते हैं कि 'चूनर' के मुकाबले 'चुनरिया' शब्द ही लोक काव्य के ज्यादा करीब है जैसे बँसुरिया, साँवरिया आदि । यह भी कहते हैं कि 'चूनर' के मुकाबले 'चुनरिया' शब्द लोकभाषा के अधिक नजदीक है । जो भी हो इतना जरूर है कि एक ही कविता को दो रूपों में लिखने की कलात्मकता केदार में अद्वितीय है ।

मार्क्स ने भाषा को विचार का प्रत्यक्ष यथार्थ कहा था । भाषा का संबंध यथार्थ से सीधे-सीधे नहीं होता, बल्कि संचरित और अनुभूत भी होते हैं । शब्दों मे और शब्दों के योगों

---

[256] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ 60
[257] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ 60
[258] श्रम का सूरज- रामविलास शर्मा - पृ.49

में मनुष्य वस्तु-जगत् के प्रतिबिंबित होने के परिणामों को अपनी चेतना में अंकित करता है। रचना कर्म को एक गंभीर सामाजिक दायित्व मानने वाले कवि की हैसियत से केदार ने कविता की रचना-प्रक्रिया में भाषा, विचार और संवेदना के रिश्तों पर अपने मौलिक सोच को व्यवस्थित रूप में सूत्रबद्ध किया है - "पहली बात यह है कि संज्ञान से प्राप्त हुए सत्य की अभिव्यक्ति करनेवाली कविता तभी कविता होगी, जब वह कलात्मक होगी। कलात्मक होने की पहली शर्त यह है कि वह सत्य लोक-जीवन को बिंबित करने वाला हो यानि कि वस्तुगत सत्य को उसकी समग्र वस्तु सत्ता के साथ एवं अंतर्विरोधों के साध व्यक्त करनेवाला हो। दूसरी बात यह कि जिस तथ्य या सत्य की अभिव्यक्ति की जाये, वह सशक्त बिंब विधान से उद्दीप्त हो अर्थात वह केवल सत्य की नंगी पकड न होकर अवश्यक वस्तुवत्ता की बुनावट के रूप में उभरकर अभिव्यक्त हुआ हो। अन्यथा पाया हुआ सत्य यदि केवल प्रतीकात्मक शैली में ही व्यक्त हुआ हो तो वह अपने समग्र परिवेश के बिना, धुंधली लालटेन की तरह या मैले दर्पण की तरह, मानसिकता लिए हुए होता है। तीसरी बात यह है कि संज्ञान से पाया हुआ सामाजिक या राजनीतिक सत्य अखबारी भाषा में या मोहल्ले की चलताऊ भाषा मे व्यक्त किया गया हो तो वह वैसे स्थायित्व की संरचना के रूप में नहीं होगी, जो समय के प्रहार से ढहने से बच सके। चौथी बात यह कि कवि की अनुभूतियाँ दूसरे की अनुभूतियाँ बने। इसके लिए कविता को परिवेशीय तत्त्वों से निर्मित करना पड़ेगा न कि कल्पना से उसकी रचना करनी होगी।"[259]

केदार को कई कविताओं के भिन्न-भिन्न प्रयोगों से असफलता हाथ लगी है। इसका मतलब यह नहीं कि वे सफल कवि नहीं है बल्कि सफलता के तुलना में असफलता बहुत कम मिली है। केदार कवि, कवि कर्म और कविता के महत्त्व को अच्छी तरह जानते थे। उनके दृष्टि में कविता अंधकार को भगा देती है और अज्ञान का नाश करती है। कविता, भाषा और कविकर्म को लेकर उन्होंने अपूर्वा संकलन की भूमिका मे जो लिखा है वह यहाँ उल्लेखनीय है - "कविता अच्छी कविता आदमी के विकास-क्रम की मानवीय गरिमा की कविता होती है। कवि कविता को नीचे गिरने से बचाता है। वह उसे ऐसी भाषा देता है, जो कर्तव्य और कर्म से उपजी हो और सारवान और सार्थक हो और दूसरों की समझ में आ सके। कविता जहाँ पहुँचे वहाँ दृष्टि का दीपदान दे - आलोक और आँच से अवसाद और बंधु अथवा

[259] केदारनाथ अग्रवाल- संपा. अजय तिवारी पृ.75

सहकर्मी की तरह पग-पग पर साथ दे । कविता केवल शब्दों का इंद्रजाल नहीं है कि भ्रम और भुलावे में ड़ाल कर आदमी को देश-काल से उठा ले जाये, कहीं बाहर अलौकिक एवं आत्मीय प्रवंचना में, सविशेष बने रहने के लिए - महान और मौलिक कहलाने के लिए ।"[260]

मुक्तिबोध का काव्य प्रगतिवादी होकर भी सामान्य पाठक या आम जनता की समझ के जरा ऊपर है । उसमें अभिधा के अलावा लक्षणा-व्यंजना का प्राधान्य है । प्रतीक और बिंबों का अत्यधिक प्रयोग, अपेक्षाकृत क्लिष्ट भाषा-प्रयोग की अपेक्षा रखता है । क्लिष्टता का अर्थ यह नहीं कि मुक्तिबोध ने आग्रहपूर्वक संस्कृत शब्दों का ही प्रयोग किया है । वस्तुत: उनके लिए कोई शब्द टेबू नहीं है , इसलिए अंग्रेजी और उर्दू के तमाम शब्द उनके काव्य में प्रयुक्त हैं। इनके काव्य में कहीं-कहीं तो अंग्रेजी के पूरे-के-पूरे वाक्य देखने को मिल जाते हैं और कहीं विशेषणयुक्त संज्ञाएँ । जैसे -

"स्क्रीनिंग करो मिस्टर गुप्ता,
क्रास इक्जामिन हिम थारोली !!"[261]

अथवा

"रेडियो - एक्टिव रत्न हैं वे भी ।"[262]

कुछ अंग्रेजी शब्दों के उदाहरण ये है - पोस्टर, पेण्टर, कर्फ्यू, रेफ्रीजरेटर, विटैमिन, रेडियोग्राम, थियोरम, ट्रैजेडी, मैमथ, अंडरवीयर, मैगजीन, प्रोसेशन, मीटिंग, ट्रंककाल इत्यादि । कहीं कहीं अंग्रेजी विशेषण का इस्तेमाल हिंदी संज्ञा के लिए किया हुआ मिलता है, कहीं इसका उल्टा । दोनों किस्मों के उदाहरण ये हैं -ट्रंककाल- सुरों में, रायफली गोली, हड़ताली पोस्टर, इलेक्ट्रान-रश्मियाँ, रेल ऐक्सीडेंट, कोलटार पथ, श्याम-संवेदन कोब्रा, गैस लाइट निलाई, विश्वात्मक फैंटसी आदि ।

प्रभाव के लिए मूल अभिव्यक्ति और उसके अनुवाद दोनों का एक ही साथ प्रयोग भी कहीं-कहीं उपलब्द हैं । उदाहरणार्थ -

---

[260] अपूर्वा - केदारनाथ अग्रवाल पृ.12
[261] चाँद का मुँह टेडा है - मुक्तिबोध पृ.265
[262] चाँद का मुँह टेडा है - मुक्तिबोध पृ.268

"मैं जिंदा हूँ,

मैं हूँ

आई एम्जिस्ट

साबित सही सलामत"[263]

या

"मणी तेजस्क्रिम रेडियो-एक्टिव रत्न भी बिखरे"[264]

इसी प्रकार प्रचालित उर्दू नामों का कोशीय अनुवाद करने की प्रवृत्ति कवि में नहीं है। वह ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लेता है। जैसे

आवारा मछुओ-सी शोहदों-सी चाँदनी।

उनके काव्य में कुछ बहु-प्रयुक्त उर्दू शब्द ये है - कतार, खुदगर्ज, बख्तरबंद, खुदमुख्तार, बेबुनियाद, मनसबदार, शाइर, शमा, फानूस, अफवा, क़फन, सदमा, स्याहपोश, तिलिस्म, गिरफ्तार आदि।

सुसंस्कृत हिंदी मुक्तिबोध के काव्य की सामान्य भाषा है। अंग्रेजी और उर्दू के शब्दों के खुले प्रयोग के बावजूद, आग्रह कवि का संस्कृत के तत्सम और तद्भव रूपों की ओर ही है।

शब्द निर्माण

कवि ने अनेक स्थानों पर विशेषणों का प्रयोग बड़े मौलिक रूप में किया है। इस श्रेणी में आनेवाले कुछ शब्द इस प्रकार है - कुहरीला (चेहरा), कोणगामी (किरणे), फेनायित (निरंतर एकता) , मुन्सिपल (कचरा), ईंटिया (खंडहर), अजगरी (मेहराव, तना), ऐयारी (रोशनी)।

शब्दों के निर्माण में कवि हर जगह सफल नहीं है

---

[263] चाँद का मुँह टेडा है - मुक्तिबोध पृ.217

[264] चाँद का मुँह टेडा है - मुक्तिबोध पृ.282

"बारह का वक्त है
भुसभुसे उजाले का फुसफुसाता षड़यंत्र
शहर में चारों ओर
जमाना भी सख्त है ।"[265]

इन पंक्तियों में 'फुसफुसाता षड़यंत्र' तो एक सशक्त प्रयोग है किंतु 'भुसभुसा' उजाला बेढंग है ।

3.2 बिम्ब विधान

हिंदी काव्य बिंब की अवधारणा आधुनिक काव्य की अपनी देन है । बिंब अंग्रेजी के IMAGE का पर्यायवाची शब्द है । हिंदी साहित्य कोश में बिंब की इस प्रकार व्याख्या की गई है - "मनुष्य के जीवन में बिंब विधान अथवा कल्पना विधान का बडा महत्त्व है । प्रस्तुत परिवेश के संवेदनों और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त उसके मानस में अतीत की तथा कभी अस्तित्व न रखने, न घटनेवाली वस्तुओं और घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएँ भी रहती है । बिंब शब्द इसी मानस-प्रतिमा का पर्याय है ।"[266] पाश्चात्य विद्वान एजरा पाऊंड के अनुसार - "जो बौध्दिक तथा मानसिक सद्भावनाओं के समन्वय को पलभर में प्रस्तुत कर दे, वही बिंब है ।"[267] आई. ई. रिचड्र्स के अनुसार - "बिंब एक दृश्य, चित्र, संवेदना की अनुकृति, एक विचार, एक मानसिक घटना, एक अलंकार अथवा दो अनुभूतियों के तनाव से बनी एक भावस्थिति है।"[268]

वैसे देखा जाय तो मनुष्य वास्तव में घटना तथा वस्तु को बिंब के रूप में ही ग्रहण करता है । इसलिए बिंब कविता का सबसे महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है । 'बिंब' भाषा का तात्विक गुण है, भाषा संप्रेषण का माध्यम है तथा भाषा की प्रेषणीयता बिंबों पर ही आधारित होती है । कविता की रचना करते समय कवि की अनुभूतियाँ कल्पना के आधार पर बिंब की निर्मिति में सहायक होती है । बिंब विधान से भाषा में सजीवता आती है ।

---

[265] चाँद का मुँह टेडा है - मुक्तिबोध पृ.26
[266] हिंदी साहित्य कोश - संपा. धीरेंद्र वर्मा - पृ.514
[267] आधुनिक कविता,प्रमुख वाद एवं प्रवृत्तियाँ - दुर्गाशंकर मिश्र पृ.226
[268] आधुनिक कविता,प्रमुख वाद एवं प्रवृत्तियाँ - दुर्गाशंकर मिश्र पृ.225

नागार्जुन ने बिम्ब के जितने भी प्रकार है उन सबका प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। नागार्जुन बिम्बों को लोकजीवन से उठाते है । नागार्जुन संस्कृत के पंडित होने के कारण उन पर कालिदास के साहित्य का बहुत अधिक प्रभाव दिखायी देता है । परिणामस्वरूप उनके काव्य में कहीं-कहीं उच्च कोटी का शास्त्रीय बिम्ब मिलता है । नागार्जुन के काव्य में जो अनेक प्रकार के बिंब मिलते है उसे निम्न मुद्दों के सहारे देख सकते है ।

केदार की कविता में अनेकानेक बिंबों का सार्थक एवं सटीक प्रयोग दिखायी देता है । उनके काव्य में जो बिंब दृष्टिगत होते है उनकी प्रकृति रोमांटिक कवियों की कविताओं में आए बिंबों से भिन्न है । केदार के काव्य के बिंब छायावादी रुमानी वायवीयता एवं कल्पना- शीलता की अतिरेक की तरह न होकर स्वाभाविकता को लेकर आते है । ऐसा लगता है कि केदार बिंब रचते समय वह अपनी सारी सर्जनात्मक ऊर्जा यथार्थ के मानवीय अनुभव को वस्तुनिष्ठ आधार पर एक संवेदनामय चित्र में पुनर्गठित कर रहे हो । डॉ. राजकुमार शर्मा ने एक लेख में कहा है - "सामाजिक यथार्थ के बहुस्तरीय और चुनौतीपूर्ण अनुभव को उसकी कला की आँख ठीक वैसे ही देखती है जैसे एक तैराक समंदर को देखता है और एक किसान हल की लकीर को ।"[269] इस कसौटी पर या कहे यह केदार की कविताओं में बिंब के संदर्भ में लागू होती है । बिंब के जितने भी प्रकार है उन सबका प्रयोग केदार ने अपनी कविता में की है ।

मुक्तिबोध की संपूर्ण कविता बिंबमय है । इस विधा में वे अद्वितीय हैं । एक तो हम ऐसे भी कह सकते हैं कि उनकी कविता का माध्यम ही बिंब है । इनके काव्य में बिंबों का इतना अधिक्य है कि वह दोष की सीमा तक भी पहुँचा हुआ है । इस संदर्भ में डॉ. संपत ठाकुर का कथन उल्लेखनीय है - "मुक्तिबोध के काव्य में जगह-जगह तात्कालिक बिंबो का विधान दिखाई पड़ता है, प्राय: हर कविता में बिंबों के एक सिलसिले के रूप में, और इनके माध्यम से काव्यात्मक भाव-बोध का प्रयत्न भी । वस्तुत: इन बिंबों का इतना आधिक्य - एक दोष की सीमा तक पहुँचा हुआ है, क्योंकि एक कविता के अनेक बिंब, किसी एक राग या एक भाव को समग्र और संपूर्ण रूप से नहीं ग्रहण करने देते ।"[270] मुक्तिबोध के काव्य में जो बिंब प्राप्त होते हैं उन सबका उदाहरण देना यहाँ संभव नहीं होगा ।

---

[269] केदारनाथ अग्रवाल- संपा. अजय तिवारी पृ.83-84

[270] हिंदी की मार्क्सवादी कविता - संपत ठाकुर पृ.193

वस्तु बिंब -

नागार्जुन ने लगभग सभी बिंबों का कम -अधिक मात्रा में प्रयोग किया है। वस्तु बिंब का यह एक अत्यंत सजीव उदाहरण है, जैसे-

"वे लोहा पीट रहे हैं
तुम मन को पीट रहै हो
वे पत्तर जोड रहे है
तुम सपने जोड रहे हो।"[271]

भावात्मक बिंब

नागार्जुन के काव्य में भावात्मक बिंबों की कमी नहीं हैं। उन्होंने प्रेमजनित स्थितियों में इस बिंब का प्रयोग किया है -

"तुम नहीं हो पास, मै तो तरसता हूँ
प्यार के दो बोल सुनने के लिए
एक ही दो अंगुलिया नहीं है काफी कदाचित
रेशमी परितृप्तियों का जाल बनाने के लिए"[272]

नागार्जुन में चित्र खींचने का कौशल जबरदस्त है। यही कारण है कि नागार्जुन के काव्य में उच्च कोटि के बिंब आए हैं।

"पूस मास की धूप सुहावन
फटी दरी पर बैठा है चिर रोगी बेटा
राशन के चावल से कंकड बीन रही पत्नी बेचारी
गर्भ-भार से अलस शिथिल है अंग-अंग
छप्पर पर बैठी है बिल्ली

[271] प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन पृ.54
[272] प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन पृ.54

किसके घर से जाने क्या कुछ खा आई है

चल चलकर जीभ स्वाद लेती होंठों का"[273]

केदारनाथ अग्रवाल की 'गुलमेंहदी', 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' काव्य संग्रह में खोजने पर हमे सभी संचारी, व्याभिचारी रसों के बिंब मिल जाते हैं। किंतु ज्यादातर करुण और दुख संचारी भाव बिंब दिखायी देते हैं। इसका मतलब कतई यह नहीं कि इनकी कविता में उत्साह और वीरभाव बिंब अनुपस्थित है। उत्साह और वीर भाव बिंबों की संख्या भी कम नहीं हैं। एक उदाहरण देख सकते हैं।

उत्साह

"छोटे हाथ सवेरा होते

लाल कमल से खिल उठते हैं

करनी करने को उत्सुक हो

धूप हवा में हिल उठते है।"[274]

केदार ने 'मार हथौड़ा कर कर चोट' शीर्षक कविता में उत्साह और वीर भाव बिंब को गढ़ा है जो गीतात्मक लय में है -

"मार हथौड़ा

कर कर चोट

लाल हुए काले लोहे को

जैसा चाहे वैसा मोड़ा

- - - - - - -

मार हथौडा

कर कर चोट

---

[273] इस गुब्बारे की छाया में - नागार्जुन पृ.81

[274] गुलमेंहदी - केदारनाथ अग्रवाल पृ.133

लोहू और पसीने से ही

बंधन की दीवारें तोड़ ।"[275]

इनकी अन्य कविता 'काटो काटो कर बी', 'लहर उठा झंडा क्रांति का', 'पूरा हिंदुस्तान मिलेगा' आदि कविताओं में भी हम उत्साह और वीर भाव बिंब देख सकते हैं ।

'चाँद का मुँह टेढ़ा है' कविता संग्रह में खोजने पर कई जगह सभी संचारी, व्यभिचारी और मूल रसों के बिंब मिल जाते हैं । इनके काव्य में अधिक तर दुख संचारी करुण और अनेक स्थानों पर जुगुप्सा संचारी वीभत्स भाव बिंब भी देखने को मिलते हैं । कुछ भाव-बिंब निम्न प्रकार है -

उत्साह -

"कुछ पलों बाद

हिमे प्रकाश-सा होता है

खुलती है दिशाएँ उजला आँचल पसारे हुए

..... मन में प्रात

नही-सा उठता मैं भव्य किसी नव स्फूर्ति से

असह्य-सा स्वयं विश्व-चेतना सा कुछ"[276]

सुबह होनेवाली है, हल्का-सा प्रकाश फैल रहा है, सद्य:स्नात एक कर्मशील व्यक्ति अपनी जिम्मेदारियों का लेखा-जोखा करता हुआ एक क्षण को प्रदीप्त-हुलसित मन खड़ा हो गया है । क्रांति के अभियानियों की राह में फूल बरसाने वाला एक और उत्साह संयुक्त बिंब

"...जन संघर्षों की राह पर

आँगन के नीमों ने मंजरिया बरसाई

अंबर में चमक रही बहना-बिजली ने भी

थी ताकत हिय में सरसायी ।

- - - - - - - - - -

[275] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ.118

[276] चाँद का मुँह टेढा है- मुक्तिबोध पृ.128

जन संघर्षों की राह पर

गंभीर घटाओं ने

युग-जीवन सरसाया"[277]

दुख संचारी करुण बिंब का एक उदाहरण भी हम देख सकते है -

".....मैं अपने कमरे में

यहाँ पड़ा हुआ हूँ।

आँखे खुली हुई हैं,

पीटे गये बालक सा मार खाया चेहरा

उदास इकहरा,

स्लेट पट्टी पर खींची गई तसवीर

भूत जैसी आकृति

क्या वह मैं हूँ

मैं हूँ ?"[278]

एक निराशाजन्य विषाद बिंब का उदाहरण भी मुक्तिबोध की कविता में देख सकते हैं

"..... जहाँ देखो

खूब मच रही है, खूब ठन रही है

मौत अब नये-नयै बच्चे जन रही है

हथियार बंद गलती है

जिन्हें देख, दुनिया हाथ मलती हुई चलती है।"[279]

मुक्तिबोध के बिंब यथार्थ जीवन के ऐसे तीखे कोण है जिनमें कवि ने अपनी विचारधारा को जीवन संघर्ष के साथ मिलाकर चित्रात्मक रूप में उपस्थित किया है। मुक्तिबोध का बिंब विधान उनके काव्य-व्यक्तित्व एवं जीवन दृष्टि को रुपायित करता है। इनके काव्य में जो बिंब है उसकी नवीनता तथा विविधता कविता को निरंतर, दिलचस्प

---

[277] चाँद का मुँह टेढा है- मुक्तिबोध पृ.168

[278] चाँद का मुँह टेढा है- मुक्तिबोध पृ.269

[279] चाँद का मुँह टेढा है- मुक्तिबोध पृ.165

अनुभव बनायें रखती है। बिंब उनके कथ्य को अधिक स्पष्ट और सुदृढ बनाते हैं। इनके बिंबों में ताजगी, तीव्रता और संवेदना जगाने की असीम क्षमता है। उनके बिंबों का ढाँचा पारंपारिक न होकर गतिशील है। उनकी कविताओं में बरगद, बावडी, घुघु, चमदागड, ओरांग-उटांग आदि बिंबों की अनेक बार पुनरावृत्ति हुई है। ये बिंब मुक्तिबोध की रचनात्मकता की पहचान बन गये है। 'चकमक की चिनगारियाँ' कविता में मुक्तिबोध ने प्रतीकों और बिंबों के बारे में कहा है -

"प्रतीकों और बिंबों के
असम्वृत रूप में भी रह
हमारी जिंदगी है यह"[280]

बिंबों के माध्यम से मुक्तिबोध की अंतर्वस्तु व्यंजना अत्यंत प्रखर बनी है। जीवन के अंतर्विरोधों, उसकी क्षमता, खुशियाँ, दर्द, बेचैनी, शोषण, संघर्ष आदि समस्त भावों को प्रभावकारी ढंग से व्यक्त करने के लिए मुक्तिबोध जीवन के आस-पास की ही वस्तुओं का बिंबीकरण करते हैं।

प्राकृतिक बिंब

प्रकृति आदि मानव से लेकर आधुनिक मानव तक की सहयात्री रही है। सौंदर्य और भावुकता की पहली शिक्षा प्रकृति ने ही मनुष्य को दी है। सुख-दुख की सबसे सहज और सार्थक अभिव्यंजना प्रकृति ही करती है। वह केवल वर्ण्य विषय ही नहीं है। वह प्रेरणा भी है। मनुष्य में राग और आकर्षण का भाव प्रकृति ही पैदा करती है।

नागार्जुन प्रारंभ से ही यात्री रहे हैं। लंका, तिब्बत, हिमालय की तराई और भारत के अनेक स्थानों में वे खूब घूमे हैं। परिणामस्वरूप उनकी प्रकृति चित्रण से युक्त कविताएँ सजीव बन गई है।

"भीनी भीनी खुशबूवाले
रंग बिरंगे
यह जो इतने फूल खिले हैं

[280] हिंदी की मार्क्सवादी कविता - संपत ठाकुर, पृ.34

कल इनको मेरे प्राणों ने नहलाया था
कल इनको मेरे सपनों ने सहलाया था

पकी सुनहली फसलों से जो
अबकी यह खलिहान भर गया
मेरी रग-रग में शोणित की बूँदे इसमें मुस्काती है"[281]

नागार्जुन को बादल, पहाड, ऋतुएँ, नदियाँ उन्हें रचना के लिए आकृष्ट करती है । निराला की परंपरा में नागार्जुन ने बादलों पर यथार्थवादी दृष्टिकोण से कविताएँ लिखी । 'बादल को घिरते देखा है' , में वे वस्तुपरक और प्रामाणिक अनुभव पर बल देते हैं -

"मैने तो भीषण जाड़ों में
नभचुबी कैलाश शीर्श पर
महामेघ को झंझानिल से
गरज-गरज भिडते देखा है
बादल को घिरते देखा है"[282]

प्रकृति से संबंधित कविताओं में नागार्जुन का पर्यवेक्षण एक देशी व्यक्ति का है जो प्रकृति का तठस्थ दृश्य मात्र नहीं है, उसमें जीवन के विभिन्न दृश्य भी देखे जा सकते हैं । शहरीकरण के विस्तार के बीच नीम की दो टहनियाँ देखकर प्रकृति का चित्रण कवि इस प्रकार करता है -

"नीम की दो टहनियाँ
झाँकती है सीखचों के पार
यह कपूरी धूप
शिशिर की यह दुपहरी, यह प्रकृति का उल्लास
रोम-रोम बुझा लेगा ताजगी की प्यास ।"[283]

---

[281] तालाब की मछलियाँ - नागार्जुन पृ.47
[282] युगधारा - नागार्जुन पृ.67
[283] सतरंगे पंखोवाली - नागार्जुन पृ.35

नागार्जुन की कविता में प्रकृति विभिन्न जीवनानुभवों से संपृक्त है । कवि प्रकृति का सानिध्य पाकर जीवन शक्ति अर्जित करता है । नागार्जुन की 'हिम कुसमो के चंचरीक', 'मेरी भी आभा है इसमें', 'हजार हजार बाहोंवाली', 'वसंत की आगवानी', 'बादल को घिरते देखा है', 'रजनीगंधा', 'झुक आए कजरारे मेघ', 'शरद पूर्णिमा', 'काली सप्तमी का चाँद' जैसी रचनाओं में प्राकृतिक बिंब खुलकर दिखायी देते हैं ।

प्रकृति के उच्छल, स्फूर्ति भरे चित्रण के लिए विख्यात केदार ने अवसादपूर्ण मनोभावों में प्रकृति को अंकित किया - सुर्यास्त में समा गई, सुर्योदय की सड़क । केदार किसान के प्रकृतिक परिवेश के कवि है । इस परिवेश में मनुष्य की उपज शामिल है । केदार की सामाजिक विचारधारा की छाप उनके प्रकृति चित्रण पर है । उनके काव्य में प्राकृतिक बिंब एकदम सजीव हो उठता है -

"आर पार चौड़े खेतों में
चारो ओर दिशाएँ घेरे
लाखों की अगणित संख्या में
ऊँचा गेहूँ डंटा खड़ा है ।
ताकत से मुट्ठी बाँधे है,
नोकीले भाले ताने है,
हिम्मत वाली लाल फौज-सा
मर मिटने को झूम रहा है ।"[284]

केदार ने अपनी 'आया था ऐसा घोर कलयुग' शीर्षक कविता में जाड़े की रात में कुहरा किस तरह से छाता है और भद्दर चूल्हें की गरम गोद में अपना देह गरमाता है इसका चित्रण जब करते हैं तो हमारे सामने उस जाडे की रात का बिंब निर्माण होता है -

"जाड़े की रात में,
छाया था कुहरा-ही-कुहरा,
जब धरती आकाश के बीच में

[284] गुलमेहंदी - केदारनाथ अग्रवाल पृ.21

गद्दो में, लिहाफों में,
आँखे मीचे लोग जब खुर्राटे भरते थे
भद्दर उस पूस की रात में,
पूसी भी दुबकी हुई चूल्हे की गरम-गरम गोद में
रोएँदार देह गरमाती थी।
बंद दरवाजों और खिड़कियों के बाहर जब
नीम और पीपल के पेड़ सब
मोटी-मोटी छाल ओढ़े पत्तियों से अंग ढाके।"[285]

प्रकृति केंद्रित ये कविताएँ किसी निविड एकांत की ओर नहीं ले जातीं बल्कि प्रकृति और मानव के सघन रिश्ते को ही मजबूत करती है। धूप की चमक में मैके आई बेटी की ममता मिले और सवेरा होने पर श्रमिक के हाथों में कमल खिलने का बिंब बने यह तो केदार के काव्य में ही संभव हो पाया है।

घनघोर बिंबों के इस कवि में तमाम बिंब ऐसे भी है, जो जन, जीवन या प्रकृति का एकमहज फोटोग्राफिक चित्रण है - संवेदन या कल्पना से रिक्त किंतु उनके सभी प्रतिचित्रात्मक बिंब इस कोटि के नहीं हैं। दोनों किस्मों का एक-एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत है

"यह है अंधियारा कुआँ
करौंदी की झाड़ी में
छिपी हुई चौड़ी मुडेर
अधटूटी सी।
वीरान महक सुखी-सूनी
ठंडी कन्हेर पर
लाल कुछ फूल,
कि यह क्या है !! "[286]

---

[285] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ.193
[286] चाँद का मुँह टेढा है- मुक्तिबोध पृ.135

यह है कि एक ठंडा, निर्जीव प्रतिचित्रात्मक प्रकृति बिंब । इसके विपरीत, एक सशक्त बिंब का उदा-

"... कि जो ब्रह्मांड समझे त्रस्त जीवन को
व उसमें देख पाये
जगमगाती स्नेह-आश्लेषा
व निर्मल मुग्ध चित्रा
चमकती गौर करुणा भाव की
शुभ्र स्मिता आर्द्रा,
अनवरत मुक्ति कामी विश्व-व्याख्या रत
धवल सप्तर्षि
जिनके आखिरी दो तारकों की सीध में
गंभीर ध्रुव तारा ।"[287]

गत्यात्मक बिंब

एक सामान्य जन-जीवन का गत्यात्मक बिंब 'चांद का मुँह टेढ़ा है' में देख सकते है जो मानवीय भावनाओं से अनुप्रणित -

"रास्ते पर आते-जाते दीखते हैं
लठधारी बूढ़े से पटेल बाबा
उँचे से किसान दादा
वे दाढ़ी धारी देहाती मुसलमान चाचा
औ बोझा उठाएँ हुए
माँ, बहने बेटियाँ...
सबको सलाम करने की इच्छा होती है
सबो राम राम करने को जी चाहता है ।
आँसुओं से तर होकर प्यार के...

[287] चाँद का मुँह टेढा है- मुक्तिबोध पृ.145

(सबका प्यारा पुत्र बन)
सभी का ही गीला-गीला मीठा आशीर्वाद
पाने के लिए होती अकुलाहट"[288]

साहित्यिक बिंब

इसमें कवि विभिन्न अंतर्दशाओं तथा उनकी रचनात्मकता को बिंब के द्वारा प्रकट करता है। नई कविता में यह धारा मौलिक और नवीन है। नागार्जुन ने भी दो-एक स्थान पर इसका उपयोग किया है -

"कवि हूँ, सच है
किंतु षटपदों जैसा क्या मैं
फूल सुंघ कर रह सकता हूँ
कवि हूँ, सच है"[289]

या

"मै भी तो पहले देखा करता था सपने
साथी अब तो रंग-ढंग ही बदल गए हैं
समझ गया हूँ
जीवन में इस धरा-धाम का क्या महत्त्व है
कैसे कहलाता कोई धरती का बेटा
आसमान में सतरंगी बादल पर चढ़कर
कैसे जनकवि धान रोपता
समझ गया हूँ।"[290]

---

[288] चाँद का मुँह टेढा है- मुक्तिबोध पृ.82
[289] युगधारा - नागार्जुन पृ 78
[290] सतरंगे पंखोवाली - नागार्जुन पृ.80

राजनैतिक बिंब

नागार्जुन के अधिकांश कविताओं में राजनीति का टोन अधिक मात्रा में देखा जा सकता है । कवि ने स्वतंत्रतापूर्व और स्वातंत्रोत्तर कालखंड में राजनीतिक उतार-चढ़ाव देखे हैं । गांधी, नेहरु, लालबहादुर शास्त्री, जयप्रकाश नारायण, इंदिरा गांधी, मोरारजी देसाई आदि सभी राजनेताओं पर उन्होंने अलग-अलग घटना संदर्भ को लेकर कविताएँ लिखी हैं । नेहरु युग की राजनीति और देश की स्थिति को चित्रित करते हुए नागार्जुन ने इस बिंब को रचा है -

"मिलवाले होते सोशलिस्ट, धनपतियों को लेनिन भाता
माओ आकर मिलता तुमसे, पेकिंग दिल्ली से शर्माता
मार्शल आयुव वर्धा आता, सर्वोदय की दिक्षा पाता
बढ़कर भारत सेवक-समाज दुनिया में झंडा फहराता ।"[291]

राष्ट्रीय विकास के मार्ग में जो बाधाएँ आती है, नागार्जुन इन सबको अपनी कविता के माध्यम से चुनौती देते हैं । राजनीति नागार्जुन की कविताओं की रीढ़ है । अपनी राजनीतिक चेतना को स्पष्ट करते हुए निम्नांकित पंक्तियों में कहते हैं -

"ऐंठ रहा है जीवन, सुलग रहा है जीवन
राजनीति पर हावी हो रहा है जीवन
ढोंगियो की पोल खोल रहा है जीवन
जीवन है राजनीति, राजनीति है जीवन
अन्तस की अभिव्यक्ति ही तो होगा"[292]

आर्थिक बिंब

व्यक्ति और समाज की अर्थ-व्यवस्था के संबंध में नागार्जुन की कई कविताओं में आर्थिक बिंब भी देखा जा सकता है । 'मन करता है' कविता में यह बिंब खुलकर चित्रित हुआ है ।

---

[291] तुमने कहा था - नागार्जुन पृ.

[292] चुनी हुई रचनाएँ भाग-2 - नागार्जुन पृ.106

"उस महामृतक को ले आऊँ फिर इस तट पर
अंत्येष्टि करुँ, लकडी तो बेहद महँगी है
इस बालू में दफना दूँ
नंगा करके"[293]

स्वाधीनतापूर्व भारतीय स्थिति को कवि ने देखा है, भोगा है। नागार्जुन की कविता में तत्कालीन आर्थिक स्थिति का विस्तृत हवाला उपलब्ध होता है। 'पूरी-आज़ादी का संकल्प आज दुहराते हैं' कविता में आर्थिक बिंब अत्यंत सजीव रूप से आया है -

"पिछला कर्ज चुका न सके, साहू की झिडकी खाते है
उतना ही फँसते, अपने को जितना अधिक बचाते हैं
भूखे रहकर, आधा खाकर दिन पर दिन दुबराते है
हड्डी छेद रहा है जाडा, बरबस दाँत बजाते है
दवा न कर पाते रोगों की, यम को पास बुलाते है।"[294]

इसके अलावा 'बजट-वार्तिक', 'यह उन्मत्त प्रदर्शन' जैसी कविता में यह बिंब खुलकर आया है।

ऐंद्रीय बिंब

इसे गुणात्मक बिंब भी कहा जाता है। ऐंद्रीय बिंबो में प्रमुखता स्पर्श, रंग, गंध, स्वाद, श्रवण, स्मृति आदि को रखा जाता है। नागार्जुन के काव्य में इन सभी का चित्रण हुआ है।

स्पर्श बिंब

बिंब में साहित्यिक सौंदर्य का रूप देखा जाता है। वह सूक्ष्म भावों को पाठकों के सामने रखता है। नागार्जुन ने इस बिंब का प्रयोग इस तरह किया है -

"झुकी पीठ को मिला
किसी हथेली का स्पर्श

---

[293] हजार बाहोंवाली - नागार्जुन पृ.32
[294] हजार बाहोंवाली - नागार्जुन पृ.51

तन गई रीढ़

कौंधी कही चितवन

रंग गये कहीं किसी के होठ

निगाहों के जरिए जादू घुसा अंदर

तन गई रीढ़"[295]

केदारनाथ अग्रवाल की कविता में भी स्पर्श बिंब के कई उदाहरन देखने को मिलते हैं उदाहरण के रूप में -

"जीवन की नदिया से कहता,

मेरे अलिंगन में आ कर,

मेरे अंग-अंग से मिल कर

अपनी सुधि-बुधि सब खो डालो,

फिर न अलग हो, गले लगा लो ।"[296]

इसके अतिरिक्त 'मैं गया हूँ डूब', 'रेत मैं हूँ जमुन जल तुम', 'छिप कर भी न छिप पायी हो तुम' आदि कविताओं में स्पर्श बिंब का उदहरण देखने को मिलता है ।

मुक्तिबोध गंभीर कवि होते हुए भी उनकी कविता में कई स्पर्श बिम्ब के उदाहरण देखने को मिलते हैं जैसे -

"अपने ही कृत्यों डरी

रीढ़ हड्डी

पिचपिची हुई

वह मरे साँप के तन-सी लुचलुची हुई ।"[297]

---

[295] सतरंगे पंखोवाली - नागार्जुन पृ.19

[296] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ.289

[297] चाँद का मुँह टेढा है- मुक्तिबोध पृ.53

रंग बिंब

नागार्जुन घुमक्कड कवि है। प्रकृति का चित्रण करते हुए कई बार उन्होंने इस बिंब का प्रयोग किया है -

"शतदल लाल कमल वेणी में
रजत-रचित मणि-खचित कलामय"[298]

या

गोरी ग्रीवा की नलियों में भिंचे-भिंचे-से प्राण
चंपई देह, काँपती-कनकलता-सी ... भूल सकूँगा?"[299]

या

"गौर-गेहुआँ मुखमंडल चाँदनी रात में चमक रहा था"[300]

नागार्जुन की तरह केदारनाथ अग्रवाल की कविता में भी रंग बिंम्ब का सफल प्रयोग दिखाई दे देता है जैसे -

"रंग नहीं
रथ दौडते हैं रंगीन फूलों के
सांध्य गगन में।
देखो-बस-देखो।
रंग नही
ध्वज फहरते हैं रंगीन स्वप्नों के
सांध्य गगन में।
झूमों- बस-झूमों !
रंग नहीं
नट नाचते हैं रंगीन छंदो के

---

[298] युगधारा - नागार्जुन पृ.69
[299] सतरंगे पंखोवाली - नागार्जुन पृ.58
[300] सतरंगे पंखोवाली - नागार्जुन पृ.62

सांध्य गगन में !

नाचो-बस-नाचो !"[301]

केदार की एक अन्य कविता 'पूँजी के पैंतरे से हमें भरमाया' में भी रंग बिंब का उदाहरण देख सकते हैं, जिसमें कवि कहता हैं "पूँजी के पैंतरे से हमें भरमाया, स्याह को सफेद और सफेद को स्याह बताया" इसके अलावा 'श्रमजीवी अपने बेटे को गोठिल हंसिया दे जाता है' और 'खोजते अपना अहं' शीर्षक कविता में रंग बिंब का उत्तम उदाहरण देख सकते हैं।

"दूर-दूर मुफलिसी के टूटे-फूटे घरों में
सुनहले चिराग जल उठते हैं ,
आधी अंधेरी शाम
ललाई में निलाई से नहाकर
पूरी झुक जाती है"[302]

गंध बिंब

नागार्जुन की कविता में बिंबों की उपस्थिति उसे सप्राणता प्रदान करती है। 1984 का वर्ष भारतीय इतिहास में मानव की त्रासदी का वर्ष है। इसी वर्ष विश्व की भीषण भोपाल गैस त्रासदी में हजारों लोग मारे गए। नागार्जुन की जन-चेतना इससे विक्षुब्ध और आहत हुई। कवि प्राण लेनेवाली दुर्गंध का चित्रण गंध बिंब के अंतर्गत इस तरह से करता है

"अकस्मात
अजीब-सी रासायनिक दुर्गंध
पूस की ठिठुरनवाली उस हवा में महसूस हुई
भेडिए की विष्ठा से मिलती हुई दुर्गंध
बनैले सुअर की गू से मिलती हुई दुर्गंध
छेद कर नासा-रंध्र कर दिया उद्विग्न मन को, प्राणों को"[303]

या

---

[301] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ.36-37

[302] चाँद का मुँह टेढा है- मुक्तिबोध पृ.81

[303] इस गुब्बारे की छाया में - नागार्जुन पृ.9

'वसंत आगवानी' कविता में चित्रित यह बिंब

"वृध्द वनस्पतियों की ठूंठी शाखाओं में
पोर-पोर टहनी-टहनी का लगा दहकने
टूसे निकले, मुकुलों के गुच्छे गदराए
अलसी के नीले फूलों पर नभ मुस्काया"[304]

केदारनाथ अग्रवाल की कविता में गंध बिम्ब के कई उदाहरण देखने मिलेंगे किंतु यहाँ सबका उल्लेख संभव नहीं है उदाहरण के तौर पर एक बिम्ब देख सकते हैं -

"एक कली ऐसी होती है
जो अन्तस को छू लेती है
स्वयं आप ही,
और गंध से
भर देती है स्वयं आप ही,
चाहे कोई रूप न माँगे,
गंध न माँगे,
तुम ऐसी ही एक कली हो !"[305]

या

"सड़े घूर की, गोबर की
बदबू से दब कर
महक जिंदगी के गुलाब की
मर जाती है ।"[306]

इसके अलावा 'शहर के छोकरे', 'काँखते-हाँफते बदबू में सड़ते है' आदि शीर्षक कविताओं में गंध बिंब को देख सकते है ।

मुक्तिबोध की कविता में भी गंध बिंम्ब के कई उत्तम उदाहरण देखने मिलते है ।

---

[304] सतरंगे पंखोवाली - नागार्जुन पृ.33
[305] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ.291
[306] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ.201

"वीरानी में टूटे विशाल पुल के खंडहर में
लगे आक के फूलों के नीले तारे
मधु-गंध-भरी उद्दाम हरी
चंपा के साथ उगे प्यारे ...."[307]

स्वाद बिंब

नागार्जुन ने जैसे अन्य बिंबों का प्रयोग किया है वैसे ही एखाद स्थान पर इस बिंब का भी चित्रण किया है। नागार्जुन के संदर्भ में डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं - "बाबाजी जीभ-चटोर है। जीभ-चटोरी उनके देश-प्रेम में ही आती है।"[308] इसी बल पर वे इतना सजीव बिंब निर्माण कर सकते थे -

"याद आती लीचियाँ, वे आम
याद आते मुझे मिथिला के रुचिर भू-भाग
याद आते धान
- - - - - - -
धन्य वे जिनकी उपज के भाग
अन्न-पानी और भाजी साग
फूल-फल औ कंद-मूल अनेकविध मधु-माँश"[309]

श्रवण बिंब

नागार्जुन की कविता लोकान्मुखी और समाजपरख है। उनकी बेचैनी का प्रमुख कारण हमारा समकालीन समाज है, जिसमें मनुष्य और उसके श्रम का अवमूल्यन हुआ है। ऐसी अवस्था में निर्मित कविता का श्रवण बिंब इस तरह से बन जाता है -

"नचाकर लंबी चमचों से पंचगुरा हाथ
रुखी पतली किटकिट आवाज में

---

[307] चाँद का मुँह टेढा है- मुक्तिबोध पृ.176
[308] नागार्जुन विचार सेतु - संपा.महावीर अग्रवाल पृ.46
[309] सतरंगे पंखोवाली - नागार्जुन पृ.49

खड़ खड़ खड़ खड़ हड़ हड़ हड़ हड़

काँपा कुछ हाडों का मानवीय ढाँचा"[310]

राजनीतिक कविता लिखना नागार्जुन की विशेष रुची रही है । राजनीति पर कभी-कभी उन्होंने अत्यंत कठोरता से व्यंग किया है । राजनीति से संबंधित यह श्रवण बिंब इसलिए सजीव बना है -

"देखा सबने चिड़िया खाना
सुना चिखना और चिल्लाना
धवल टोपियाँ फेंक रहे थे
मगर गधों से रेंक रहे थे"[311]

केदार की कुछ कविताओं का शीर्षक ही श्रव्य बिंबात्मक है जैसे 'फिर गरजेगी धरती की आवाज़', 'डंका बजा गांव के भीतर' आदि, जिससे पाठक के सामने बिंब खड़ा हो जाता है।

"उसी पुरातन चक्की का,
कर्कश मोटा स्वर ,
अंधकार के आर्तनाद सा,
सुन पडता है ।"[312]

या

"और हमारे तन की चमडी,
अपने डूम के मुँह पर मढ़ कर,
उसे बजा कर,
तानाशाही की प्रभुता का शोर करेगा ।"[313]

---

[310] युगधारा - नागार्जुन पृ.87

[311] संचारिका - संपा. नारायण वाकले, पृ.13

[312] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ.201

[313] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ.134

स्मृति बिंब

नागार्जुन ने इस बिंब का उपयोग कई बार किया है। 'सिंदूर तिलकित भाल', 'अकाल और उसके बाद', 'ओ जन-मन के सजग चितेरे', 'जया' जैसी कविताओं में यह बिंब स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। केदारनाथ अग्रवाल नागार्जुन के घनिष्ठ मित्र थे। केदारनाथ अग्रवाल के प्रति स्निग्ध, सौम्य और प्रेममय भावों को नागार्जुन ने 'ओ जन मन के सजग चितेरे' कविता में चित्रित किया है जो स्मृति बिंब का उत्तम उदाहरण है -

"मै बडभागी, क्योंकि प्राप्त है मुझे तुम्हारा
निश्चल-निर्मल भाईचारा
मैं बड़भागी, तुम जैसे कल्याण मित्र का जिसे सहारा
मै बडंभागी, क्योंकि चार दिन बुंदेलों के साथ रहा हूँ
मैं बड़भागी, क्योंकि केन की लहरों में कुछ देर बहा हूँ
बड़भागी हूँ, बाँट दिया करते हो हर्ष-विषाद
बड़भागी हूँ, बार-बार करते रहते हो याद"[314]

'जया' कविता नागार्जुन ने अपने मित्र पंडित मुरलीधर शर्मा की गूँगी लड़की पर लिखी है। दुख, अभाव, पीड़ा की छाया जहाँ है वहाँ, उनकी कविता बिना बुलाए पहुँच जाती है -

"छोटे-छोटे मोती-जैसे दाँतों की किरणें बिखेर कर
नीलकमल की कलियों जैसी आँखों में भर
अनुनय सादर
पहले, पीछे शासक-सी तर्जनी उठाकर
इंगित करती : नहीं तुम्हे मैं जाने दूँगी
चार साल की चपल-चतुर वह बहरी गूँगी
कितनी सुंदर, नयनाभिराम
उस लड़की का है जया नाम"[315]

---

[314] सतरंगे पंखोवाली - नागार्जुन पृ.63
[315] युगधारा - नागार्जुन पृ.168

नागार्जुन को जब पहली संतान की प्राप्ति हुई तब कवि पहलीबार शिशु को देखते हैं और उसकी स्मृति में 'यह दंतुरित मुस्कान' कविता लिखते हैं। नागार्जुन के काव्य में इन सब बिंबों के अलावा परस्पर विरोधी बिंब का भी सुंदर प्रयोग देखने को मिलता है -

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
- - - - - - - - - -
दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आंगन से ऊपर कई दिनों के बाद"[316]

इस प्रकार नागार्जुन जिन बिंबों को छूते हैं सबसे पहले उनकी गहरी जाँच पड़ताल संवेदना के संदर्भ में करते हैं। इसलिए उनकी कविता में चित्रित बिंब सार्थक लगते हैं।

3.3 प्रतीक योजना

प्रतीक का शाब्दिक अर्थ 'चिन्ह' है। यह अंग्रेजी के SYMBOL शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। प्रतीक वास्तव में ऐसे चिह्न अथवा शब्द चिह्न को कहते हैं जिसके माध्यम से अन्य वस्तु का बोध होता है। 'हिंदी साहित्य कोश' के अनुसार प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य अथवा गोचर वस्तु के लिए किया जाता है जो कि अदृश्य विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है। अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समानुरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करनेवाली वस्तु प्रतीक है। जैसे अदृश्य या अप्रस्तुत ईश्वर, देवता अथवा व्यक्ति का प्रतिनिधित्व उसकी प्रतिमा या अन्य कोई वस्तु कर सकती है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'प्रतीक' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है - "किसी देवता का प्रतीक सामने आने पर जिस प्रकार उसके स्वरूप और उसकी विभूति की भावना मन में आ जाती है, उसी प्रकार काव्य में आयी हुई कुछ वस्तुएँ विशेष मनोविकारों या भावनाओं को जागृत कर देती है जैसे 'कमल' माधुर्यपूर्ण कोमल सौंदर्य की भावना जागृत करता है,

[316] सतरंगे पंखोवाली - नागार्जुन पृ.32

'कुमुदिनी' शुभ हास की, 'चंद्र' मृदुल आभा की, 'समुद्र' प्राचुर्य विस्तार और गंभीरता की, 'आकाश' सूक्ष्मता और अनंतता की भावना को जाग्रत करता है । इसी प्रकार 'सर्प' से क्रूरता और कुटिलता का, 'अग्नि' से तेज और क्रोध का, 'वाणी' से वाणी या विद्या का, 'चातक' नि:स्वार्थ प्रेम का संकेत मिलता है ।"[317]

नागार्जुन ने ज्यादातर सीधे, सरल भाषा को अपनाया है । कई बार सरल, सीधे व्यावहारिक भाषा के शब्द उनकी कविता में प्रतीक बनकर आए हैं । कवि ने तत्कालीन घटनाओं पर, समय-समय पर कविताएँ लिखी है । वह घटना सामाजिक हो या राजनीतिक । नागार्जुन ने अपनी कविता में जिन प्रतीकों को लिया है वह सामान्य लोकजीवन से उठाया है। विजय बहादुर सिंह लिखते हैं - "नागार्जुन के काव्य में चित्रित प्रतीक जन-जीवन के बीचोंबीच, उसकी चिंता से लदे फंदे, चिर-परिचित भाषा में आते हैं । प्रतीकों के बारे में वे बेहद ठोस और लोकसंबद्ध हैं । राजनीतिक अर्थिक और धार्मिक क्षेत्रों के परंपरागत प्रतीक - त्रिमुर्ती, पंचमूर्ति, कुबेर, काली, दुर्गा जिन्हें प्रगतिशील कवि छूने मात्र से शर्म खाता है , नागार्जुन उसका धडल्ले से प्रयोग करते हैं ।"[318]

नागार्जुन ने धातुओं के प्रतीकों का इस्तेमाल कर नेताओं को संबोधित किया है । उनकी कविता गाँव, कस्बा, नगर, उपनगर, महानगर के जीवन को चित्रित करने में सक्षम रही है । नागार्जुन की 'प्लीज एक्सक्यूज मी' कविता में भारतीय समाज के विविध आर्थिक स्तरों को कवि ने चित्रित किया है । उसके लिए कवि धातुओं को प्रतीक के रूप में अपनाते हैं -

"चाँदी के बापू ...
गजदंत के तथागत ...
चंदन के विनोबा ...
ताम्बे के लेनिन

---

[317] चिंतामणी भाग-2. - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

[318] नागार्जुन का रचना संसार - विजयबहादूर सिंह पृ.87

उगम आई आस्था,

झुका नहीं फिर भी मस्तक ।"[319]

नागार्जुन ने उन अवसरवादी नेताओं पर व्यंग्य किया है जो जनता के द्वारा चूनकर जाते हैं किंतु अपना कर्तव्य भूलकर हंगामा मचाते हैं । संसद का मतलब होता है कि जनता के हित में सोचना, कानून बनाना किंतु विरोधी पक्षवाले इसलिए विरोध करते हैं कि वह विधेयक विपक्ष ने बनाया है । विरोध सिर्फ बातों से ही नहीं प्रकट करते बल्कि कोई माइक तोडता है, कोई टोपी उछालता है तो कोई बेंच पर चढ़ता है । यह दृश्य देखकर नागार्जुन ने उन नेताओं को सूअर, ऊँट, बैल, साँप आदि प्रतीकों से नवाजा है -

"देखा सबने चिजडिया खाना, सुना चिखना और चिल्लाना
धवल टोपियाँ फेंक रहे थे, मगर गधों से रेक रहे थे
धोती कुर्ते में हाथी, सूकर ऊँट थे जिनके साथी
बैलों के पीछे अनबोले, मचल रहे थे साँप सपोले"[320]

नागार्जुन ने प्रतीकों का जो चयन किया है वह जीवन और जगत् के प्राकृतिक, पौराणिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों से किया है । कवि ने जिस प्रतीकों का उपयोग किया है - उससे वे प्रतीकों को वैशिष्ट प्रदान कराते है । त्रिशूल, रावण, दुर्गा के साथ-साथ बंदरिया, बढ़ा शेर, गीदड़, उल्लू जैसे प्रतीकों को कवि खुलकर इस्तेमाल करता है -

"कान-फूँकते उल्लू, गीदड चाँप रहे है गोड़ ।
ओ बिहार-केशरी, तुम्हारी बुढमस है बेजोड़ !!
हँसते होंगे मन-ही-मन हम पे अब वे अंगरेज
बार भर है राम-राज की, रावण के हैं काम ।
किस मुँह से लेंगे अब हम डेमोक्रेसी का नाम ?" [321]

केदार के कविता बिंब की तरह प्रतीक भी प्रकृति दृश्यों, अनुभवों से लिये गये हैं जो लोकजीवन और यथार्थ से संबंध रखती है । इनकी कविता में अनेक सार्थक एवं सटीक प्रतीकों

---

[319] प्यासी पथराई आँखे - नागार्जुन पृ.81
[320] हजार बाहोंवाली- नागार्जुन पृ.164
[321] हजार बाहोंवाली- नागार्जुन पृ.89

का सफल प्रयोग देखने को मिलता है । केदार ने बहुत खरे आत्मविश्वास के साथ कहा है कि 'कविताई न मैने पायी, न चुरायी । इसे मैने जीवन जोतकर, किसान की तरह बोया और काटा है।' लोकजीवन को ही अपनी शक्ति का सबसे बडा स्त्रोत माननेवाले और उसी से अपनी सर्जनात्मक ऊर्जा खींचनेवाले कवि में ऐसा आत्मविश्वास देखने को मिलता है । केदार ने प्रगतिशील कविता को कई नये प्रतीक दिये हैं । राजकुमार शर्मा ने केदार की वैचारिक दृष्टि और भाषा-संवेदना लेख में सही कहा है "चूँकि केदार हर प्रकार के अमूर्तन के विरोधी हैं इसलिए उनकी कविता में भाषा अक्सर बिंबों के सहारे चलती दिखलायी पड़ती है । यथार्थ के मर्म को वे उसी के बीच सिरजती दृश्यमयी भाषा में पकड़ते हैं, शुद्ध बौद्धिक अवधारणाओं से निर्मित प्रतीकों की दूरी से नहीं । हालांकि प्रतीकों के प्रयोग से उन्हें परहेज नहीं और उन्होंने प्रगतिशील कविता को अत्यंत सफल प्रतीक प्रयोग दिये हैं । फिर भी उनकी मूल प्रवृत्ति उस ओर नहीं है । सामान्य से लगने वाले स्थानीय दृश्यों या अनुभव-प्रसंगों से वे अपनी कविता शुरु करते हैं पर इन्हीं मामूली प्राकृतिक दृश्यों, अनुभवों और भाव-प्रसंगों के बीच से आकार पाते सामाजिक संबंधो की प्रक्रिया अपनी मूर्त पहचान के साथ उभरने लगती है ।"[322]

कवि केदार ने अपनी कविता में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सैद्धांतिक, प्रकृत प्रतीकों का प्रयोग खूब किया है । 'तीरथ है कलयुग का थाना' शीर्षक कविता में कवि ने पुलिस के भ्रष्टाचार, कुकर्म, घूसखोरी का चित्रण करते हुए भैंसे को थानेदार का प्रतीक बनाया है -

"चोरी करो, चढ़ाओ पैसा
पूजो तुम भैरव का पैसा
भैंसा है थाने का ऐसा
कोई देखा-सुना न जैसा
डाका मारो, कत्ल कराओं
काटो खेत, अनाज चुराओ,

[322] केदारनाथ अग्रवाल- सं. अजय तिवारी पृ.80

थाने में जाओ झुक जाओ

भैंसे को छूकर बच जाओ"[323]

केदार की 'रनिया मेरी देस बहन है' शीर्षक कविता में रनिया कविता में स्थित 'मैं' की बहन है। रनिया निम्न वर्ग का प्रतीक है और 'मैं' पूँजीपति का। इन दोनों का रूप, रंग, देश, भूमि एक ही है। इन दोनों में अंतर केवल आर्थिक स्थिति के कारण है। इस कविता में मै यह पूँजीपति के अहं का भी प्रतीक मान सकते है। रनिया इस जग को बदलने की बात करती है किंतु कविता का मै यानी रनिया का भाई हमेशा सोचता है कि यह जग या व्यवस्था कभी न बदले।

"रनिया मेरी दुखी बहन है

वह निदाध में मुरझ रही है।

मै रनिया का सुखी बंधु हूँ

चिर बंसंत में विहँस रहा हूँ।।

- - - - - - - - -

रनिया कहती है, जग बदले

जल्दी बदले-जल्दी बदले।

मैं कहता हूँ कभी न बदले।

कभी न बदले - कभी न बदले।।"[324]

की 'गर्रा नाला', 'युग की गंगा', 'कोहरा', और 'कली निगाह में पली' शीर्षक कविताओं में राजनीतिक मंतव्यों को लेकर चलने वाले प्रतीक-प्रयोग केदार के कलात्मक संयम के खूबसूरत उदाहरण हैं। केदार के काव्य में ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलेंगे जहाँ कविने बिंबों को प्रतीकों में ढालने की सफल चेष्टा की है। इसका एक उदहरण देख सकते है -

"समुद्र वह है

जिसका धैर्य टूट गया है

दिक् काल में रहे-रहे !

---

[323] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ.149

[324] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ.113

समुद्र वह है
जिसका मौन टूट गया है
चोट पर चोट सहे-सहे ।"[325]

उपर्युक्त कविता में कवि ने पहले बिंब का निर्माण कर उसे प्रतीक में ढ़ालने की चेष्टा की है। इस क्रिया का बारीक विश्लेषण करते हुए डॉ. राजकुमार शर्मा ने अपना लेख केदारनाथ की वैचारिक दृष्टि और भाषा-संवेदना में लिखा है - "पहले अर्थस्तर पर 'समुद्र' मद्धिम स्तर से धीरे-धीरे तीव्र होते संवेग का असर देनेवाले बिंब को सामने लाता है । पर बिंब के धुलते मूर्त प्रभाव की अनुगुँज बनी भाव-संवेदना विचार के नये स्तर को धीरे-धीरे उकसाती है । 'समुद्र' कवि की 'मुक्तकामी चेतना' का प्रतीक बनता है । पहले वैयक्तिक स्तर पर यह दिक्काल के अक्ष से मुक्त होना चाहती है। यहाँ तक यह व्यक्ति की दार्शनिक समस्या-सी लगती है । दूसरे स्तर पर वह दमन और शोषण से मुक्ति की सामूहिक कामना में रुपांतरित होती है ।"[326]

ऊपर विवेचित भाषिक संरचना को लेकर डॉ. रविरंजन का कथन है - "कविता की भाषिक संरचना पर यदि हम गौर करें तो स्पष्ट होगा कि यहाँ दिक्काल में रहे रहे की तुक मिलाने के लिए कवि ने चोट पर चोट सहे-सहे इस्तेमाल किया है वह एक हद तक भाषिक अनगढ़ता का नमूना है ।"[327] हम यहाँ भाषिक अनगढ़ता की बात को यदि छोड़ दे तो बिंब को प्रतीक में ढ़ालने का प्रयोग अतुलनीय है ।

केदारनाथ के प्रतीक प्रयोग को लेकर डॉ. राजकुमार शर्मा ने सही कहा है - "इन कविताओं के बिंबों में केंद्राभिगामी प्रवृत्ति है । कवि एक केंद्रीय प्रतीक उठाता है और उसके गिर्द बिंब पर बिंब उकेरता है । ये बिंब धीरे-धीरे प्रतीकों में ढ़लते हुए केंद्रीय प्रतीक को अर्थ-सम्पुष्ट करते चलते हैं । अनेक प्रतीकवत बिंबों के सफल संयोजन द्वारा कवि ने एक ही विचार-संवेदना को अर्थ-दीपित किया है । समूची कविता एक समेकित संरचना में विकसित होती गयी है । अपने से चलकर अपने तक ही यात्रा करनेवाली और स्वानुभूति के अंकन पर ही

---

[325] केदारनाथ अग्रवाल- सं. अजय तिवारी पृ.84
[326] केदारनाथ अग्रवाल- सं. अजय तिवारी पृ.84
[327] केदारनाथ अग्रवाल- सं. अजय तिवारी पृ.84

एकांतिक बल देनेवालों रोमांटिक कविता की वर्तुलाकार संरचना से यह संरचना निश्चित आधारों पर भिन्न है ।"[328]

प्रतीकों का सशक्त प्रयोग मुक्तिबोध के काव्य की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है । उन्होंने सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और प्राकृतिक प्रतीकों का बड़ा सफल प्रयोग अपनी कविता में किया है ।

सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रतीक

प्रगतिशील कवि होने के नाते मुक्तिबोध प्राचीन संस्कृति की क्षीयमान और शोषणकारी प्रवृत्तियों के विरुद्ध हैं, किंतु इसी शोषणकारी परंपरा को स्पष्ट करने के लिए मुक्तिबोध ने इतिहास पुराण-मान्य प्रतीकों का प्रयोग भी किया है । उदा-

"आँखें फाड़े मैंने देखा मन के मन में
जाने कितने कारावासी वसुदेव
स्वयं अपने कर में, शिशु-आत्मज ले
बरसाती रातों में निकले
धँस रहे अंधेरे जंगल में
विक्षुब्ध पूर में यमुना के
अति दूर अरे उस नंद ग्राम की ओर चले ।
जाने किस के डर स्थानांतरित कर रहे वे
जीवन आत्मज सत्यों को
किस महाकंस से भय खाकर गहरा गहरा"[329]

इस कविता में वसुदेव शोषित का प्रतीक है, महाकंस शोषक का और शिशु आत्म(कृष्ण) सत्य का । सत्य के निष्कासन की परंपरा पुराण-काल से आज तक चली आ रही है यह कवि का अभिप्रेत है । पौराणिक श्रेणी का ही एक और उदाहरण देख सकते हैं -

---

[328] केदारनाथ अग्रवाल- सं. अजय तिवारी पृ.84-85

[329] चाँद का मुँह टेडा है - मुक्तिबोध पृ.68

"हम सब साथी मिल
दंडक वन में लंका का पथ खोज निकाल सकें प्रतिफल
धीरे धीरे ही सही बढें उत्थानों में अभियानों में ।"[330]

रामायण के अनुसार 'लंका' शोषक की राजधानी है, जिसमें से मानव-मुक्ति की सीता खोज निकाल लेने की बात कवि करता है । इस अभियान के पथ से हमें कष्टों के भयानक 'दंडक' को पार करना होगा । उनकी एक अन्य कविता मे भी रामायण के एकलव्य को प्रतीक का इस्तेमाल किया है । एकलव्य के लिए जैसे तत्कालीन समाज स्वामियों ने ज्ञान के दरवाजे बंद कर दिये थे, इसी तरह आज भी समाज में तमाम बुद्धिमान और हूनरवाले हैं, जिनके विकास का रास्ता बंद है । इन्हीं में से कुछ ऐसे भी हैं जो तमाम विघ्न-बाधाओं के बावजूद मानव-मुक्ति की मशाल की झाँकी पा ही लेते हैं । उदा -

"आयु में यद्यपि मैं प्रौढ़
बुद्धि से बालक हूँ
मैं एकलव्य जिसने निरखा
ज्ञान के बंद दरवाजे की दरार से ही
भीतर का महा मनोमंथन शाली मनोज
प्राणाकर्षक प्रकाश देखा ।[331]"

शोषित जन का प्रतिनिधित्व करनेवाले अर्जुन को देखिए जो शाल्मलि वृक्ष की छाँव में खड़ा हुआ है । उसका चेहरा दुख की झाँई से काला पड गया है, लेकिन उसकी आँखो में शोषण कारियों के विरुद्ध एक पवित्र ज्वाला दहक रही है ।

"वह संवलाया कलियाया मुँह
है स्नेह भरी चिंता में
शाल्मलि वृक्ष तले
उद्विग्न खडे वनवासी दुर्धर अर्जुन का

---

[330] डूबता चाँद कब डूबेगा - मुक्तिबोध, पृ.13
[331] मेरे सहचर मित्र - मुक्तिबोध , पृ.39

जिसके नेत्रों में चमक उठे

चंदन के पावन अंगारे"[332]

कहीं-कहीं पर ऐतिहासिक प्रतीकों का प्रयोग सामान्य मानव की महत्ता स्थापित करने के लिए भी किया जाता है। उदा -

"उसके पथ पर पहरा देते ईसा महान वे स्नेहवान

छाया बनकर फिरते रहते वे शुद्ध बुद्ध संबुद्ध प्राण

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

वह जन है जिसके उच्च भाल पर

विश्व-भार, औ अंतर में

नि:सीम प्यार।"[333]

प्रकृती प्रतीक

प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग मुक्तिबोध की कविता में कई जगहों पर प्राप्त होते हैं। वट-वृक्ष कवि का प्रियतम प्राकृतिक प्रतीक है, जिसे आवश्यकतानुसार कहीं जीवन के, कहीं परंपरा के, कहीं स्नेह के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। एक स्नेह के रूप में बरगद -

"चिलचिला रहे फासले

तेज दुपहर भूरी

सब और गरम धार-सा रेंगता चला

काल बाँका तिरछा,

पर हाय तुम्हारे में जब भी मित्र का हाथ

फैलेगी बरगद छाँह वहीं"[334]

यही बरगद कर्फ्यू से आतंकी जनपद का प्रतीक बन जाता है -

---

[332] डूबता चाँद कब डूबेगा - मुक्तिबोध, पृ.32

[333] मेरे अम्तर- तार सप्तक पृ.54

[334] हिंदी मार्क्सवादी कविता- संपत ठाकूर पृ.187

"इन्हीं हलचलों के ही कारण तो सहसा
बरगद में पले हुए पंखों की डरी हुई
चौंकी हुई अजीब सी गंदी सी फड़फड़..."[335]

इसी बरगदी जनपद में हड़ताली पोस्टर भी जगह-जगह चिपकाये जा रहे हैं -

"मकानों की पीठ पर
अहातों की भीत पर
बरगद की अजगरी डालों के फंदे पर
अंधेरे के कंधो पर
चिपकता कौन है ?
हड़ताली पोस्टर ।"[336]

इस संग्रह में कवि ने बरगद को पूँजीभूत निराश और विवाद के प्रतीक के रूप में भी चित्रित किया है। विषादमय जीवन के प्रतीक के रूप में एक और संपूर्ण चित्र -

"भयंकर बरगद
सभी उपेक्षितों,समस्त वंचितों
गरीबों का वही घर, वही छत
उसके ही तल-खोह अंधेरे में सो रहे हैं
गृहहीन कई प्राण"[337]

कल्याणमय सुरभित जीवन के एक बहुत प्यारे प्रतीक तुलसी का भी चित्रण उन्होने 'मेरे सहचर मित्र' में किया है। कहीं-कहीं पर मुक्तिबोध ने सर्वथा मौलिक प्रतिकों का प्रयोग किया है । कवि की छाती मधुमक्खी के उस छत्ते के समान है, जिसमें जीवन की अग्नि परीक्षाओं के अगणित छिद्र भी है और जिंदगी के फूलों से एकत्र किये गये मधु के रस-बिंदु भी इन रस-बिंदुओं की रक्षा करती है कवि की पैने डंको वाली बुद्धि की मक्खियाँ -

---

[335] चाँद का मुँह टेढा है- मुक्तिबोध, पृ.161
[336] चाँद का मुँह टेढा है- मुक्तिबोध, पृ.9
[337] चाँद का मुँह टेढा है- मुक्तिबोध, पृ.40

"...छाती में मधुमक्खी का छता फैला है
जो अकुलाया
जो दंत तत्परा मधुमक्खी के दल-के-दल
रस मर्मज्ञाओं की सेना स्नेहान्वेषी
पर डंक सतत तैयार
बुद्धि का नित संबल।
मधुमक्खी दल ने जिंदगियों के फूलों से
रस-बिंदु मधुर एकत्रित कर संचित रखने
मेरे प्राणों में
अग्नि परिक्षाओं से गहरे छेद किये
छाती मधुपूरित अनगिन छेदों का जाला।"[338]

इस संदर्भ में संपत ठाकूर ने जो बात कहीं है वह यहाँ उल्लेखनिय है - "दुख से चलनी बने ह्रदय में स्नेह का मधुकोश संचित किये संघर्षरत व्यक्ति का इतना खूबसूरत और सशक्त अंकन सिर्फ मुक्तिबोध की कलम से ही संभव है।"[339]

सैद्धांतिक प्रतीक

हमारी यांत्रिक सभ्यता की अभिव्यक्ति के लिए यंत्र-प्रतीकों की योजना भी कवि की अपनी मौलिकता है -

"इस दिल के भरे रिवाल्वर में
बेचैनी जोर मारती है, इसमें क्या शक ?
क्यों ताकतवर उस मशीन के
पिस्टन की-सी दिल की धक्-धक्
उद्दाम वेग से चला रही
ये लौहचक्र
मन-प्राण बुद्धि के विक्षोभी।

[338] मेरे सहचर मित्र- संपत ठाकुर, पृ 190
[339] हिंदी कविता और मार्क्सवाद - संपत. ठाकुर,पृ 190

यह स्याह स्टीम-रोलर जीवन का

सुख-दुख की कंकर-गिट्टी यक-सां करके

है एक रास्ता बना रहा युग के मन का

मेरे मन का"[340]

'धुमकेतु' और 'उल्काएँ' यद्यपि प्रकृत प्रतीक हैं, किंतु मुक्तिबोध ने अनेक स्थानों पर इस प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग सिद्धांत प्रतिपादन-संघर्ष, क्रांति आदि के लिए किया है। ऐसा ही एक उदा -

"...उसकी मेघा की ज्वालाएँ ऐसी फैली-

उस घास भरे जंगल-पहाड़-बंजर में

यो दावाग्नि लगी

मानो बूढ़ी दुनिया के सिर पर आग लगी

सिर जलता है कंधे जलते।"[341]

काला साँप तो एक पूरी कविता का नायक ही बना हुआ है -क्रांति-संदेश के प्रतीक के रूप में। इस कविता का एक अंश -

"...जन उत्पीड़न विभ्राट व्यवस्था के संमुख

उसके आशय का विष पी लो

ओ नागराज

इस बट की शाखाओं पर तुम करवट बदलो।

मेरे कोब्रा, ओ क्रेट, पुष्प पलायन

तुम विशेषज्ञ प्रज्वन्त मन

ओ नागात्मन

संक्रमण-काल में धीर धरो

ईमान न जाने दो !!"[342]

---

[340] मेरे सहचर मित्र- संपत ठाकुर, पृ 190

[341] जब प्रश्न चिन्ह बौखला उठे, चाँद का मुँह टेढ़ा है- मुक्तिबोध, पृ.145

[342] औ काव्यात्मन फणिधर, चाँद का मुँह टेढ़ा है- मुक्तिबोध, पृ.112

मुक्तिबोध की कुछ कविताओं के शीर्षक भी प्रतीकबद्ध है । जैसे- 'ब्रह्मराक्षस' : अहंवादी, विलक्षण, किंतु भटकी हुई प्रतिभा के धनी व्यक्ति का प्रतीक, 'डूबता चाँद' :मृतप्राय पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतीक, 'काव्यात्मन फणिधर' : कवि की क्रांति चेतना का प्रतीक, 'नक्षत्र खंड' और 'चकमक की चिनगारियाँ' : कवि के विद्रोही भावों-विचारों के प्रतीक, 'चंबल की घाटी': शोषित और आतंकित देश-काल का प्रतीक आदि ।

पौराणिक बिंब

केदार ने अपनी कई कविताओं में विचारों की अभिव्यक्ति के लिए पौराणिक बिंब का निर्माण किया है । यह धरती है उस किसान की शीर्षक कविता में कृष्ण, भीम, सहदेव, नकुल आदि पौराणिक नामों का प्रयोग किया गया है । 'बंधी मुट्ठियाँ उठे हजारों हाथ' कविता में क्रांति रुपी जन का ज्वार सड़क पर उतरती है तो किस तरह दुशासन का धीरज छूटता है इसका चित्रण किया गया है । -

"सिंह सा गरजा-तडपा,
दु:शासन का धीरज छूटा,
वाग्मी बैतालों की मति का
मघवा रोचा ।"[343]

'देश की छाती दरकते देखता हूँ' शीर्षक कविता में कवि देश में हो रहे अन्याय अत्याचार का चित्रण महाभारत और रामायण के घटनाओं और पात्रों का संदर्भ देकर कहता है -

"देश की छाती दरके देखता हूँ !
राजनीति धर्मराजों को जुएँ में,
द्रोपदी को हारते मैं देखता हूँ !
- - - - - - - - -
बूचडों के न्याय-घर में,

[343] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ 126

लोकशाही के करोड़ों राम-सीता,

मूक पशुओं की तरह बलिदान होते देखता हूँ !"[344]

स्वार्थ के लिए इस देश को भी बेचने को तुले उन मुर्खों का पर्दाफाश करते हुए इसी कविता में देश में जो विडंबनाएँ है उसे चित्रित किया है । आम आदमी को या कहे शोषित और शोषक व्यक्तियों के लिए पौराणिक संदर्भ, नाम और घटना के माध्यम से देश में हो रहे बुराईयों का चित्रण मिलता है -

"देश की छाती दरकते देखता हूँ !

व्यास मुनि को धूप में रिक्शा चलाते,

भीम, अर्जुन को गधे का बोझ ढोते देखता हूँ !

सत्य के हरिचंद को अन्याय-घर में,

झूठ की देते गवाही देखता हूँ !

द्रोपदी को और शैव्या को, शची को

रूप की दूकान खोले,

लाज को दो-दो टके में बेचते मैं देखता हूँ !!"[345]

उनकी अन्य कविता 'धूप धरा पर उतरी' में शिव के जट से गंगा जैसे उतरती है वैसे कवि धूप को भी उतरते देखता है -

"धूप धरा पर उतरी

जैसे शिव के जटाजूट पर

नभ से गंगा उतरी ।"[346]

व्यक्ति बिंब

केदार ने श्रम करते हुए मनुष्यों और शोषितों पर जितना लिखा है मुझे नहीं लगता कि हिंदी के किसी कविने इतना लिखा होगा । दूर बैठकर किसान के बारे में लिखनेवाले कवियों में से केदार नहीं है । केदार नज़दीक से उसके श्रम प्रक्रिया को और उसके तकलीफों

[344] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ 60

[345] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ.136-37

[346] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ.138

को देखकर चित्रण करते है । उनकी एक 'दीन कुनबा' शीर्षक कविता है जिसमें हम व्यक्ति बिंब को देख सकते है । -

"दीन दुखी यह कुनबा,
जाड़े की थरथर में कँपता
अपनी चौपारी में बैठा,
ताप रहा है कौडा !!
लकडी कंडे सुलग रहे हैं,
आग लगी है,
थोड़ी थोड़ी लपक उठी है,
धुआँ बढा है
बाहर नहीं निकल पाता है
सबको घेरे रह जाता है !!"[347]

इसके अलावा उनकी प्रसिध्द कविता 'मैने उसको जब-जब देखा' में भी व्यक्ति बिंब देखने को मिलता है -

मैने उसको
जब-जब देखा,
लोहा देखा,
लोहा जैसा-
तपते देखा,
गलते देखा,
ढलते देखा
मैने उसको
गोली जैसा चलते देखा!"[348]

---

[347] गुलमेंहदी - केदारनाथ अग्रवाल पृ.54

[348] प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - रामविलास शर्मा पृ.206

कवि जिस व्यक्ति को देख रहा है वह क्रांतिकारी है । केदार ने क्रांतिकारी व्यक्ति के छवि को रेंखांकित किया है । वह व्यक्ति भगतसिंह हो सकता है, नेताजी सुभाषचंद्र बोस हो सकता है या फिर मंगल पांडेय भी हो सकता है ।

निम्न पंक्तियों में कैदी ईमान को बिंबित किया गया है, 'जो चाँद का मुआह टेडा है' में रामकुमार कृत कवि की छवि से अभिन्न है ।

"सामने
बेचैन घावों की अजब तिरछी लकीरों से कटा
चेहरा
की जीस पर काँप
दिल की भाप उठती है ...
पहने हथकड़ी वह एक ऊँचा कद
समूचे जिस्म पर लत्तर,
झलकते लाल लंबे दाग
बहते खून के ।
वह कैद कर लाया गय ईमान ...
सुलतानी निगाहों में निगाहे डालता,
बेखौफ नीली बिजलियों को फेंकता
खामोश !!"[349]

शोषण के घावों से क्षत-विक्षत, आँखों में बगावती बिजलियों की लपटें, हाथों में रुढ़ियों-रिवाजों की हथकड़ियाँ - यह है एक ईमानदार विद्रोह की छवि - जो खुद मुक्तिबोध की है ।

मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का प्रतिफलन शिल्प के संदर्भ में

मराठी साहित्य में अण्णाभाऊ साठे, अमर शेख और नारायण सुर्वे यह पक्के मार्क्सवादी कवि है । इन कवियों ने मजदूर जगत, उपेक्षित, शोषित, दु:ख, यातनाओं को न

[349] चाँद का मुँह टेढा है- मुक्तिबोध पृ.3

सिर्फ नजदीक से देखा और जाना है बल्कि भोगा भी है। इनकी कविता का विषय मुंबई का फूटपाथ, झोपडपट्टी, मजदूरों का दरिद्र और उनके शारिरीक कष्ट, शोषितों की नरक यातनाएं, देशी शराब में यातनाओँ को भूलने का प्रयास करनेवाले लोग, विवशता की चरम सीमा तक पहुँची वेशाएँ, पेट की आग बुझाने के लिए अपना बचपन और यौवन घोर परिश्रम में झोंक देनेवाले युवक, जीवन की मजबूरियों और तानाशाही पुलिस के बीच पिसते मनुष्य आदि का यथार्थ चित्रण किया है। इन तीनों कवियों ने मजदूरी करते-करते कविता कर्म किया है। इनका उद्देश्य कविता लिखना न होकर अनुभवों की अभिव्यक्ति है। इसलिए इनकी कविता में प्रतीक, बिंब, भाषा यथार्थ जीवन से संबंध रखती है। नारायण सुर्वे ने तो 'माझे विद्यापीठ' कविता संग्रह में आभार के अंतर्गत कहा है कि "इस संग्रह में संकलित कविता सबकुछ बोलेगी। उसे खुद का अनुभव है और भाषा भी। मेरा निमित्त (बहाना) मात्र और यह निमित्त (बहाना) किसलिए।"[350] मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का प्रतिफलन शिल्प के संदर्भ में इस अध्याय को प्रत्येक कवियों का अलग-अग विस्तार से चर्चा निम्न प्रकार कर सकते है।

नारायण सुर्वे ने सन् 1960 के बाद मराठी कविता में अपना विशिष्ट स्थान निर्माण किया है। इनकी कविता में उनका निजी जीवन, मजदूरों के साध बीता बचपन, मिल-मजदूरों की दुनिया, मजदूर जगत की जिंदगी की बारिकियाँ, सुख-दुख अनुभव आदि सभी बातों का चित्रण हुआ है। इन कविताओं में इस जीवन को रेखांकित करते समय सुर्वे ने मजदूर जगत के भावों को अधिक गहरा बनाने के लिए कई बार बोलचाल की भाषा का सहारा लिया है। इनकी ज्यादातर कविताएँ संवाद परक, दीर्घ निवेदनपरक और कथात्मक कविताएँ हैं। सुर्वे ने परंपरागत काव्य पद्धतयों की ओर कभी ध्यान न देते हुए अपनी शैली में वे आगे बढ़ते रहे। सुर्वे की कविता संवादात्मक अनुभव पर आधारित है जो पाठक को बांध कर रखने में सफल सिद्ध हुई है। इस संदर्भ में दिगंबर पाध्ये ने अपनी किताब नारायण सुर्वे यांची कविता में जो लिखा है यहाँ उल्लेखनिय प्रतीत होता है "सुर्वे की कविता मन को छू लेनेवाली कविता है। खुद के अनुभवों पर आधारित होने के कारण कभी व्यक्तिगत तो कभी समाज को उद्देशित

[350] माझे विद्यापीठ - नारायण सुर्वे

करते हुए उनकी कविता आगे बढ़ती है। पाठकों से वह सीधा संपर्क स्थापित करती है। कभी संवादों के माध्यम से कभी कथाओं के माध्यम से उसमें शब्द और भाव महत्वपूर्ण होते है।"[351]

नारायण सुर्वे कला के प्रति कभी सतर्क नहीं रहे। इनकी कविताएँ सीधी सरल और स्पष्ट है किंतु कथ्य मात्र गंभीर है जो हर पाठक को सोचने पर मजबूर कर देती है। कवि ने भाव और भाषा को यथार्थ के धरातल पर रखते हुए सामान्य लोगों के व्यवहार के लिए जन शब्दावली तैयार की है। कवि की प्रेरणा शिल्प कौशल से नहीं वरन् जीवन के अनुभवों की गहराई और तिक्तता से शक्ति पाती है।

भाषिक विधान

अमर-अण्णा ने लोगों में चेतना जागृति करने का बिडा उठाया था और इसके लिए उन्होंने पोवाडा को माध्यम बनाया। क्योंकि शाहीरी ही ऐसी चीज है जिसे पढ़ने में नहीं गाने और सुनने में ही मजा आता है। पोवाडा कविता से अधिक लोगों के ह्रदय तक पहुँचने का साधन है। शाहीरी की भाषा मूलत: लोकभाषा होती है। विचार जब रक्त में डूबकी लेती है तब उसकी धार रसिकों के ह्रदय पर कब्जा कर लेती है। पोवाडा और गानेवाले शाहीर का महत्त्व बताते हुए प्रल्हाद केशव अत्रे ने कलश पूजन में जो लिखा है यहाँ महत्त्वपूर्ण जान पड़ता है "शाहीर चेतावनी देता है, बुझाता है (समझाता) और सुलगाता है। नहीं ऐसा नहीं है कि कवि नया विचार देता है, नया रूप दिखाता है। किंतु सुननेवालों को ज्यादा से ज्यादा जुगाली करने की ईच्छा होती है और लावणीकार विकार रुपी शत्रुओं की शरीर में सुगबुहाट अधिक से अधिक बढ़ा देता है। लेकिन शाहीर के शब्द कानों तक पहुँचते ही मनुष्य की अवस्था बांबी में फुत्कारते हुए बाहर आनेवाले नाग की तरह या लताओं की जाल में से गुर्राते हुए बाहर निकलनेवाले बाघ की तरह होती है। शाहीर के शब्द उसकी आँतों को कचोटते हुए बाहर निकलते हैं। उसका कलेजा कुचलते हैं। कवि और लावणीकार बेकारी के साथी हैं। शाहीर रोजमर्रा जीवन संग्राम का साथी है।"[352]

अमर-अण्णा 'लाल बावटा कलापथक' के माध्यम से जन जागृति का काम कर रहे थे। 'लाल बावटा' यह क्रांति का प्रतीक और परिवर्तन की पुकार भी। इसके लिए इस्तेमाल की

---

[351] नारायण सुर्वे यांची कविता - दिगांबर पाध्ये पृ.14

[352] कलश पूजन - अमर शेख पृ.13

गयी भाषा पद्धति मात्र भिन्न स्वरूप की है। अण्णा की पद्धति बात को समझानेवाली ढंग की है तो अमर की इसके विपरीत आक्रमक। अण्णाभाऊ साठे की भाषा पद्धति को हम निम्न प्रकार देख सकते है।

"भांडवल शाहीचा चिवट केणा।
वर वर छाटलाय तरी जाईना
अन् जराशीबी शेती पिकू देईना
उपटुनी मुळी, घाल पायदळी
तुडवून आला गेला रे शिवारी चला
रातदीस राबून सालंना साल
किती पिढ्या आम्ही काढायच हाल
रोखू आता बांधावर बावटा लाल
कालावर चाल कर, हत्यार नीट धर
एकीचा बांधून किल्ला रे - शिवारी चला"[353]

अण्णाभाऊ की तरब सरंजामशाही, साहूकारशाही का विरोध अमर का भी तत्त्व था किंतु जनमानस में उतारने के लिए उसने जिस भाषा का प्रयोग किया वह रुपात्मक था। लोगों की भाषा में समझाने के लिए रूपक में कैसे लिखा जा सकता है इसे अमर ने दिखाया है -

"बोयर मासा आला घेरा
नोकरशहा ह्यो बघा जरा
एकीचं जाळं जरा हुशार धरा
बावट्याची निशानी होताच समेद
तुटून पडायायं हाय रे -
साहूकारशाहीचा पाप्लेट आला
दयामाया न्हाई, घाला घाला
एकीच्या डोलीत पगवा त्याला

[353] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे, लोकगीत व लावण्या, लोकवाङमयग्रह, पृ.21

बारिकू मासं खाऊन मातला
गावचा गटार मासा आला
काळाबाजार ज्यानं चिकार केला
काढून वाळूवर फेका त्याला"[354]

अमर का लेखन संख्या की दृष्टी से भले ही कम हो किंतु गुणात्मक दृष्टि से लोगों के मानस पटल पर छाप छोडने में बिल्कूल कम नहीं है। अमर और अण्णा प्रत्यक्ष जीवन संग्राम में उतरे हुए 'स्वातंत्र्य सैनिक' थे। वे केवल क्रांति की दिशा दिखानेवाले नहीं थे। गोवा का मुक्तिसंग्राम, संयुक्त महाराष्ट्र की लढ़ाई आदि मे सहभागी मात्र नही थे बल्कि अग्रभागी थे। अमर शेख के बारे में डॉ माधव पोतदार ने जो लिखा है यहाँ उल्लेखनीय है - "घर के दरवाजे बंद करके क्रांति की भाषा करनेवाले अलग और प्रत्यक्ष संघर्ष की लढ़ाई में उतरना अलग है। अमर प्रत्यक्ष लढ़ाई में उतरा हुआ क्रांतिवीर था। संघर्ष में उन लोगों के साथ था, इसीलिए उनकी कविता में जिंदापन दिखायी देता है।"[355]

अणाभाऊ के पोवाडे में जो आग और गरमाहट थी उसे गाकर लोगों तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण काम अमर शेख ने किया है। अण्णाभाऊ श्रमजीवी वर्ग के प्रतिनिधि थे और उनकी भाषा ग्रामीण बोलचाल की थी जिसमें सुननेवालों को मिठास का अहसास होता है। अमर अण्णा पूर्व भी पोवाडे लिखनेवाले कई शाहीर हुए है। उन कवियों ने पोवाडे की शुरुआत ही आदि देवताओं के नाम लेकर करते थे। इसे 'गण' कहा जाता है। वे कवि 'गणेश', 'शिव' आदि को नमस्कार या चरण स्पर्श करके अपनी बात रखते थे अण्णाभाऊ साठे ने पहली बार इस दैववाद को लथाडकर श्रमजीवी के प्रति 'गण' गाना शुरु किया -

"प्रारंभी मी आजला। कर ज्याचा येथे पूजिला।
जो व्यापुनि संसाराला। हलवी या भूगोला।।
आकाशा खाली ओढी। तो मी आज वंदिला।।
रुद्ररुपी ज्याची शक्ति। मानवाची करितो भक्ति।।"[356]

---

[354] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे, लोकगीत व कविता, संकलक - डॉ. अजीज नदाफ पृ.37
[355] शाहीर अमर-अण्णा - डॉ. माधव पोतदार पृ.131
[356] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे, लोकगीत व लावण्या, लोकवाङमयग्रह, पृ.28

अण्णाभाऊ साठे कल्पना लोक में विचरन या उड़ान भरनेवालों में से नहीं बल्कि यथार्थ की जमीन पर खड़े होकर काव्य-रचना करनेवाला महान क्रांतिकारी कवि था । एक जगह पर अण्णाभाऊ ने खुद कहा है "मैं जो जीवन जीता हूँ, देखता और अनुभव करता हूँ वही मैं लिखता हूँ। मुझे कल्पना के पंख लगाकर उड़ान मारना नहीं आता, इस बारे में मै अपने आप को बेडक मात्र समझता हुँ ।"[357]

अमर शेख शब्द की ताकत को बहुत अच्छी तरह से जानते थे । उनकी एक कविता 'शब्दानों' में वे शब्दों को बुलाकर पूछते है कि तूम जिसके हाथ में हो उसे उत्साह, उमंग और लढ़ने की प्रेरणा मिलती है फिर इन्हें मरने क्यों दे रही हो ? और तुम्हारा जीवन ही जिसके हाथ में है उन्हें बचाती क्यों नही ? -

"शब्दानों, तुमचे जीवन ज्यांच्या हाती
का होऊं देता त्याच जिवाची माती ?
जीवन वगळूनी शब्द कोणता सांगा
का यमद्वारी लाविल्या तुम्ही ही रांगा ?"[358]

अमर ने अपनी कविताओं में हिंदी, अरबी, फारसी शब्दों का और सबसे अधिक ऊर्दू के शब्दों का प्रयोग किया हैं । ऊर्दू के शब्दों का प्रयोग करने से कविता बिगडी नहीं बल्कि अधिक सशक्त हो गयी है । इनके शब्दों के प्रयोग ही ऐसे है जिसे कविता को क्रांति की धार चड़ती है । ऊर्दू-हिंदी शब्दों के कई उदाहरण इनकी कविता में देख सकते है -

"लावणारा नाहि कुणि उरला ।। बांदलांचा पुंडावा त्यानं मोडुन
काढिला ।। आणि आम जनतेचा दुवा त्यानं घेतला ।।"[359]

इस कविता में आगे कवि मराठी में 'काळीज' शब्द के बजाय 'कलिजा' शब्द का प्रयोग करता है जिससे कविता का प्रभाव बड़ता है । -

"आजही हवा मज असाच शिवबा माझा । तो समाजवादी
महाराष्ट्राचा राजा । तो राजा कसला लोकशाहिचा कलिजा ।"[360]

---

[357] शाहीर अमर-अण्णा - डॉ. माधव पोतदार पृ.182
[358] कलश पूजन - अमर शेख पृ.17
[359] अमर शेख यांचे पोवाडे, लोकगीत व कविता, संकलक - डॉ. अजीज नदाफ पृ.23

अथवा

"ओझ्यानि करांच्या जीव जिकीरिस येतो
दुष्काळ अजजगरात् पिच्छा पुरवीतो"[361]

इस कविता की दूसरी पंक्ति में 'पिच्छा' शब्द का अर्थ 'पिछा' है इसे प्रभावी बनाने के लिए या जोर देकर कहने के लिए उन्होंने 'पिच्छा' शब्द का प्रयोग किया है। पोवाडा असल में वीर रसात्मक काव्य होता है इसे गानेवाले और पढ़नेवाले यदि सही तरीके से पढ़े तो सुननेवालों में जोश बड़ता है। इस जोश को बड़ने के लिए और अपनी बात पर जोर देने के लिए अमर शेख ने इस तरह के शब्दों का प्रयोग किया है। उनकी एक अन्य कविता 'समाजवादी शिव छत्रपति अर्थात अमर अभिलाषा में सच्चा को सच्या कहते है तब दक्खीनी हिंदी शब्द का भी प्रयोग होता है -

"दख्खनचे मर्द लढणारे मराठे शूर कांबळी, उशाला, धोंडा न्
भाकर कांदा आम्हा जरि प्यार।। जन्मात ठावं न्हांइ आम्हा
जिनं लाचार स्वप्नीही गुलामी नाही सहन करणार।। सच्या
मराठ्याचं एक ब्रीद हेच असणार।।"[362]

अमर शेख की भाषा ग्रामीण लोकभाषा थी। उन्होंने आम जनता के लिए लिखा और गाया है। इसलिए उनकी कविता में लोकोक्ति के उदाहरण भी देखने को मिलता है। एक कविता का उदाहरण हम देख सकते है जिसमें पेरावं तेच पीक येतं, इसका हिंदी अनुवाद होगा जो बोयेंगें वही उगेगा का प्रयोग किया गया है। -

"पेरावं तेच पीक येतं। जगाची रीत। नवं न्हाई त्यात।
शहाजीनं पराक्रम पेरला। शिवाजी सरजा अवतरला।"[363]

अमर शेख की कविता, उसके शब्द और एक-एक पंक्ति को लेकर प्र. के. अत्रे ने 'कलश' में कलशपूजन में जो लिखा है यहाँ उल्लेखनीय प्रतीत होता है - "उनकी एक-एक (प्रत्येक)

---

[360] अमर शेख यांचे पोवाडे, लोकगीत व कविता, संकलक - डॉ. अजीज नदाफ पृ.26
[361] कलश - अमर शेख पृ.39
[362] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे, लोकगीत व कविता, संकलक - डॉ. अजीज नदाफ पृ.22
[363] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे, लोकगीत व कविता, संकलक - डॉ. अजीज नदाफ पृ.17

पंक्ति बंदुक की फायर है। तोफ के मुँह से निकलनेवाले लाल लावारस के गोले की तरह उनके जलते हुए शब्द लगातार बाहर निकलते है। फिर वह गीत मातृभूमि के अभिमान में रचा गया हो अथवा साम्राज्यवादियों को चुनौती देने के लिए। वे अपना संघर्षरत योद्धा का अंदाज कभी नहीं भूलते।"[364]

अण्णाभाऊ साठे के कई कविताओं में ऐसे शब्द देखने को मिलेंगें जो न मराठी है न हिंदी न ऊर्दू के। हिंदी के शब्दों को उन्होंने अपभ्रंश रूप का प्रयोग किया है। जैसे हिंदी में 'वक्त' है इसे साठे ने वकूत का प्रयोग किया है। एक दो कविताएँ ऐसी भी है जिसमें कुछ पंक्तियाँ हिंदी में लिखी गई है

"सिपाहियों सारे सज्जाव। गोलिया चलाव।
घोडे को दबाव। रास्ता लोकांचा ठेवा रोखून।"[365]

सुर्वे की कविता सामाजिक बोलचाल की भाषा से साकार हुई है। 'जाहिरनामा', 'सुर्यकुलातील लोक', 'संवाद', 'आयुष्य', 'डेकवर', 'तुमच्या त्या उदास रात्री आता मला नकोत', 'मनिआर्डर', 'तुमचच नाव लिवा', 'शीगवाला', 'माझे विद्यापीठ', 'माझी आई' आदि कविताओं की भाषा जनमानस की भाषा है। सुर्वे की काव्य भाषा उनके कठोर अनुभवों की ज्वाला में तपकर सोने की तरह चमकती है।

सुर्वे पहले गीत लिखते थे। इस शैली में उन्होंने अधिक समय तक नहीं लिख पाए। 'डोंगरी शेत', 'गिरणीची लावणी' इसके उत्तम उदाहरण है। 'माझे विद्यापीठ' में कविने प्रभावी गद्य शैली का अविष्कार किया है। श्रमिकों को लेकर, आशा-आकांक्षाओं की 'सनद' लेकर बदलती सामाजिक स्थिति को स्पष्ट किया। शब्द कवि के लिए हथियार होते है उन हथिरों का कविने विषमता को नष्ट करने के लिए प्रयोग किया है। इनके कविता में मजदूर बस्ती में उपयोग में आनेवाले जनभाषा के शब्दों का बखूबी प्रयोग देखने को मिलता है। बोट, नाळ, खालाशी, खंदक, पटकूर, चाळ, भोंगा, पोलादी नसा, कोनाडा, झोतभट्टी जैसे कई शब्द सुर्वे की कविता में आए है। सुर्वे की काव्य-भाषा को लेकर श्री रवींद्र किंबहुने ने सही लिखा है - "सुर्वे की कविता सीधी, सच्ची और अर्थानुगामी कविता है। उनकी कविता प्रतीकों के जाल

---

[364] कलश (कलश पूजन) - प्र. के अत्रे

[365] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे, लोकगीत व लावण्या, लोकवाङमयग्रह, पृ.7

में नहीं फंसी । आड़ी तिरछी अभिव्यक्तियाँ, आकर्षण, मराठी पर अंग्रेजी वाक्य रचना की पद्धति को सुर्वे की कविता समर्थता से तोड़ती है । रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़ने वाली सरल भाषा-शैली में सुर्वे ने काव्य रचना की है ।"[366] सुर्वे की कई कविताओं में अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जैसे - बायबल, कॉल, स्टोशन, मादाम, ब्रॉयलर, रायटर्स पार्क, पोस्टर, कलेक्टर, पेपर, रिपोर्ट, लेथ, अम्बुलन्स जैसे शब्द काव्य में फीट बैठते हैं ।

नारयण सुर्वे को हिंदी और उर्दू भाषा विशेष प्रिय थी । इसीलिए उनकी कविता में कई शब्द और पंक्तियाँ हिंदी या ऊर्दू में दिखायी देती है ।

"ले पकड़ रस्सी हां खेच, डरता है ? क्या बम्मन का
बेटा है रे साले
मजदूर है अपन, पकड घोडे को, हाँ यह, वाह रे
मेरे छोटे नालवाले"[367]

इसी संग्रह में जनभाषा में चित्रित यह पंक्तियाँ

"क्या हुआ ए सुंद्रे ...
आज लोबन मत जला ! नेहरु गए !!
सच, तो चलो आज छुट्टी !"[368]

उर्दू के कई शब्द सुर्वे की कविता में विशेष महत्व रखती है । यह शब्द इस तरह से फिट बैठ गए कि इन्हें निकालना संभव नहीं है । इन शब्दों को निकाल कर यदि मराठी शब्दों का प्रयोग करेंगे तो कविता पूरी तरह से बिघड जायेगी । कलमा, झिंदाबाद, हरफ, शहीद, गड़ल, इश्क, रहम, फरमाना, काफिर, अल्ला, कबिला, कब्र, खुदा-हफीज, मंजूर जैसे शब्दों से काव्य सजीव बना है ।

सुर्वे ने प्राय: मजदूर और उनके द्वारा बोली जानेवाली भाषा का ही प्रयोग किया है । फिर भी कुछ तत्सम शब्द उनकी कविता में आये हैं । जैसे - उल्का , खड़ग, गगन, राजमुद्रा, सृजन, गर्भार, संस्कृति जैसे शब्द महत्वपूर्ण हैं ।

---

[366] पाऊलवाट - दिवाळी अंक- रवींद्र किंबहुने 1975
[367] माझे विद्यापीठ - नारायण सुर्वे पृ.13
[368] माझे विद्यापीठ - नारायण सुर्वे पृ.19

सुर्वे की ज्यादातर कविता मुक्तछंदात्मक है । मुक्तछंदात्मक के अलावा मराठी में लावणी और गोंधळ जो शैली है उनका भी प्रयोग सुर्वे ने किया है । 'सनद' काव्य संग्रह में 'गिरणीची लावणी' नाम से लावणी रची है उसका उत्तम उदाहरण है -

"ऐका घामाची कहाणी । फिरवी कळ ब्रम्ह्यावानी
तंतुतंतुला जोडूनी । वस्त्र गुंफून
रंग घेऊन आभाळाचा । हिरव्या सोनाळ शेताचा
सातरंगी इंद्रधनूत । वस्त्र भिजवून"[369]

अनलंकृत भाषा, प्रवाहमान लय और अनुभवों के परिचित-अपरिचित आयामों का प्रयोग कर सुर्वे ने अपनी पहचान एक नई शैली के साथ कायम कर दी है । भाषा की सरलता, सहजता की अनुठी शैली उनके काव्य में नजर आती है ।

लोकभाषा में रची गई कविता पाठकों पर जल्दी और गहरी असर करती है, इस बात को ध्यान में रखते हुए सुर्वे ने 'गोंधळ' का निर्माण किया है । 'गोंधळ' भी महाराष्ट्र में पोवाडा की तरह प्रसिद्ध रहा है । सुर्वे ने 'महाराष्ट्राच्या नावान' शीर्षक से महाराष्ट्र राज्य स्थापना (1 में 1960) दिवस पर 'गोंधळ' की रचना की है । -

"महाराष्ट्राच्या नावानं
ज्ञानदेवाच्या नावानं
राजा शिवाजीच्या नावानं
ज्योति फुलेंच्या नावानं
लोकमान्यांच्या नावानं
बाबासाहेबांच्या नावानं
- - - - - - -
मेघांचे कुंभ डोलतात
काळ्याभोर धरणी पिकतात
उगवेल सुखाची पहाट

[369] सनद - नारायण सुर्वे पृ.106

धान्याच्या नाही ददात

बेकारीचं गडुनिया भूत

सुखान खाऊ साखरभात”[370]

‘ओवी’ महाराष्ट्र में पोवाडा, गोंधळ की तरह प्रसिद्ध है जिसे स्त्रियां गाती है । संत जनाबाई की ओवीयाँ पूरे महाराष्ट्र में जानी जाती है । इसी शैली में सुर्वे ने ओवी की रचना की है -

“निघारे सत्वर, त्वरा करा आता

जुलमाच्या माथा, घालू घण ।"[371]

"जेंव्हा तारे विझू लागत

उंच भोंगे वाजू लागत

पोंग्याच्या दिसेने वळत

रोज दिंड़्या जात चालत”[372]

सुर्वे की भाषा तथा शैली दोनों का रिश्ता मुंबई महानगर के जिंदगी से जुड़ा है । मजदूरों के त्रासदीय जिंदगी का यथार्थ चित्रण कवि ने किया है । -

“आम्हावर भारी लोभ, एक दिवसही केला नाही खाडा

हे नगरी ! तुझ्या सेवेत चुकला नाही तिसाचा पाढा

- - - - - - - - - - - - -

सावध चलती पाय, जसे वाघुट आखून चालावेत भोई

मुका होती मी, संभाळून आनतो घरी माझ्या आयुष्याची कमाई”[373]

सुर्वे ने भाषा का सहज बोलचाल का रूप को अपनाया है । गाँव की, मजदूर की और निम्न वर्ग की भाषा उच्च वर्ग, पंडितों, सुक्षितो से भिन्न होती है । इस भाषा का भी प्रयोग सुर्वे

---

[370] नागार्जुन और नारायण सुर्वे में प्रगतीशील चेतना - अल्का निगम वागदरे पृ.305

[371] नागार्जुन और नारायण सुर्वे में प्रगतीशील चेतना - अल्का निगम वागदरे पृ.305

[372] ऐसा गा मी ब्रह्म - नारायण सुर्वे पृ.14

[373] सनद - नारायण सुर्वे पृ.33-34

ने 'कुटुंब', 'मनीआर्डर', 'तुमचच नांव लिवा', 'तोवर तुला मला' आदि कविता में किया है । बोलचाल की भाषा का प्रयोग का उत्तम उदाहरण है -

"आन् हे बगा ...
असंबी लिवा,
का मी खुस हाय,
आंग ठनाकतंय पर म्हनावं
गावापेक्षा बरं हाय"[374]

बिंब विधान

सुर्वे का अनुभव विश्व उनकी कविता की जान है । उनके अनुभव अत्यंत सजीव और यथार्थ होने के कारण पाठक उसकी ओर अनायास खिंचते चले जाते है । किसी भी साहित्य का निर्माण करते समय प्रामाणिक अनुभूति, कल्पना, भावना और प्रतिभा का होना आवश्यक है । परंपरा और शिक्षा उसमें महत्त्व नहीं रखते । प्रामाणिक अनुभूति के आधार पर अच्छी, सजीव कविता निर्माण हो सकती है । सुर्वे की कविता इसका प्रमाण है ।

नारायण सुर्वे की कविता में कम-अधिक मात्रा में सभी बिंबों का प्रयोग देखने को मिलता है । सुर्वे का उद्देश्य उनके अनुभवों को चित्रित करना था । बिंबों का चित्रण कवि ने जाने-अनजाने मे किया हैं । सुर्वे के बिंब प्रयोगों को निम्न प्रकार देख सकते है ।

वस्तु बिंब

सुर्वे ने बचपन से मजदूरी की है । मजदूर जगत की उन्हें अच्छी और सच्ची पहचान है । जिन लोगों के कारण मजदूर हमेशा मजदूर ही बना रहता है, जो लोग मजदूरों का खून चूसकर आराम-ऐश्वर्य की जिंदगी जी रहे है उन पर कवि तलवार उठाते हुए कहता है ।

"कामगार आहे मी तलपती तलवार आहे
सारस्वतांनों ! थोड़ासा गुन्हा करणार आहे"[375]

---

[374] निवडक नारायण सुर्वे - कुसुमाग्रज पृ.55
[375] निवडक नारायण सुर्वे - कुसुमाग्रज पृ.1

सुर्वे की कविता में जो बिंब दिखायी देते है वह आस-पास के जगत से ही ली गयी हैं

"इथूनच शब्दांच्या हाती फुले ठेवत आहे
इथूनच शब्दांच्या हाती खड़्ग मी देत आहे"[376]

कवि कहता है कि यहीं से शब्द के हाथों में फूलों को रख रहा हूँ और यहीं से शब्द के हाथों में खड्ग भी रख रहा हूँ।

या

"कारखान्यांचे भोंगे येती झुंजाया तोफा
खड्गे होऊन लढतील लेखणीच्या नीफा"[377]

भावात्मक बिंब

भावात्मक बिंब एक ऐसा बिंब है जिससे कवि अधिक पाठक तक पहुँचता है। इस बिंब में भावों के माध्यम से कवि हमारे सामने एक निश्चित चित्र निर्माण करता है। सुर्वे की कविता का केंद्र बिंदू मनुष्य है, वह मनुष्य जो उस व्यवस्था के चलते पीड़ित, दमित, और अन्याय से लढ़ते हुए जिंदगी से झूज रहा है। जिसमें मनुष्य और भावों का गहरा संबंध रहा है। उनकी 'शींगवाला' शीर्षक कविता जो सांप्रदायिक दंगों के आधार पर लिखी गई है उसमें एक खाटिक का कवि के साथ संवाद बड़ा मार्मिक है। इस कविता में भावात्मक बिंब को हम देख सकते है।

"देख ये मेरा पाय
साक्षी को तेरी आई काशीबाई"[378]
दूसरा भावात्मक बिंब इस तरह का है -

"आरं जीवा आभाळ खांद्यावर घेण्यापरिस
मानसाला खांदा देनं पुण्य असतं"[379]

---

[376] नारायण सुर्वे - सनद पृ.1
[377] ऐसा गा मी ब्रह्म - नारायण सुर्वे पृ.37
[378] नारायण सुर्वे - जाहीरनामा, पृ.20
[379] नारायण सुर्वे - सनद पृ.45

ऐतिहासिक बिंब

सुर्वे ने अपनी कई कविताओं में मार्क्स और लेनिन से संवादात्मक शैली में अभिव्यक्ति दी है । कवि इन दोनों को सवाल करते रहता है कि इस गरीबी का मूल कारण क्या है ? दारिद्र का गोत्र क्या है ? महंगाई का कारण क्या है ? आदि, और इस प्रश्न का जवाब भी कवि को मिल जाता है । कवि का लेनिन पर कविता लिखना कठिन लगता है क्योंकि लेनिन के बताये मार्ग पर ये लोग नही चल पाये है । फिर भी कवि लिखता है -

"अजून मी तुझ्यावर काही लिहिले नाही
ही खंत नाही;
एक कमालीची जबाबदारी वाटते
जेंव्हा मी हात ठेवतो ह्रदयावर लेनिन
- - - - - - - - - - - -

हे आता जागे झालेत
रूपच बदलणार आहेत पृथ्वीचे तू लिहिलेस
अजून शब्द आम्ही पुरा करु शकलो नाही
अजून तुझ्यावर मी काही लिहू धजलो नाही"[380]

कार्ल मार्क्स पर भी कवि ने एक सुंदर कविता लिखी है जिसमें यह बिंब चित्रित हुआ है ।

"माझ्या पहिल्या संपातच
मार्क्स मला भेटला
मिरवनुकिच्या मध्यभागी"[381]

गुणात्मक / ऐंद्रीय बिंब

नारायण सुर्वे ने विषयात्मक बिंबो के साथ-साथ गुणात्मक या ऐंद्रीय बिंबों का भी प्रयोग किया है । गुणात्मक बिंबों में कवि ज्ञानेंद्रीयों द्वारा स्पर्श, गंध, स्वाद, श्रवण जैसे बिंबों

---

[380] नव्या मानसाचे आगमन- नारायण सुर्वे , पृ.62

[381] नारायण सुर्वे - जाहीरनामा, पृ.34

को सजीव, रोचक तथा नवीन बनाता है । प्राय: अधिकांश कवियों का यह मानना है कि एकाग्रता ही काव्य का सार तत्व है । एकाग्रता से ही जाने-अनजाने में सुंदर बिंब निर्माण हो जाते है ।

स्पर्श बिंब

सुर्वे की कविताओं में कई जगह स्पर्श बिंब देखने को मिलते है । इनकी कविता की स्त्री मेहनत करनेवाली मजदूरनी है । कवि ने स्त्री को हमेशा समानता की दृष्टि से देखा और चित्रित किया है । 'ऐसा गा मी ब्रह्म' में कविने मजदूर पत्नी का चित्रण करते हुए लिखा है -

"गोबच्या गोबच्या गाळाच्या
ससा नेमका उठे हसून
जेंव्हा तू येतेस दमून"[382]

नारी के माध्यम से स्पर्श बिंबो को उठाते हुए कवि लिखता है

"मला भरपूर वाढून
स्वत: अर्धपोटी राहून
काळोखात फिरवीशी
गार बोटे गालावरुन"[383]

रंग बिंब

सुर्वे ने अपनी कविता में लाल सूरज, काली रात, लाल तील, निला सागर आदि रंगों का प्रयोग कर रंग बिंब खडा किया है । कवि मजदूरों का, मजदूर वर्ग का प्रतिनिधि होने के कारण सूरज निकलने से लेकर उसके डूबने तक का उल्लेख अपनी कविता में करता है । सूरज के साथ ही मजदूरों का दिन शुरु होता है और उसी के साथ समाप्त भी होता है । इसलिए रंग बिंब में कवि सूरज का प्रयोग करता है ।

---

[382] ऐसा गा मी ब्रहम - नारायण सुर्वे पृ.49
[383] ऐसा गा मी ब्रहम - नारायण सुर्वे पृ.17

"काळोखाच्या तबकडीत
सूर्य गजर देत आहे"[384]

अथवा

"गोंदुनिया आभाळाच्या
मुखावर लाल तीळ
कांकणाचा गो चुडा
हातीं भरी घन नीळ"[385]

या

"उनाड पोराने कलंडावी दौत तसा हा नीळा सागर"[386]

गंध बिंब

कोई भी कविता जिंदगी के अनुभव से जब आती है तब वह मन की थाह लेनेवाली कविता बन जाती है । सुर्वे की कविता भी प्रत्यक्ष अनुभवों से आने के कारण उनकी कविता यथार्थवादी कविता बन गई है । प्रा. सुभाष बागल लिखते है - सुर्वे की कविता सरल, स्पष्ट और प्रभावपूर्ण है । उसे आभूषणों की जरुरत नहीं । उसकी निर्मिति सच्चे जिंदगी से होने के कारण सभी जगह वह जैसी है वैसी ही चित्रित की गई है । गंध बिंब का उदाहरण देख सकते है -

"गंध केवड्याचा उधळून
दारी उभू पृथ्वी हिरकणी
- - - - - - - -
कांकणाच्या गोड धुंदित
भाकरीचा वास दरवळे"[387]

स्वाद बिंब

---

[384] ऐसा गा मी ब्रह्म - नारायण सुर्वे पृ.49
[385] ऐसा गा मी ब्रह्म - नारायण सुर्वे पृ.27
[386] माझे विद्यापीठ - नारायण सुर्वे पृ.35
[387] ऐसा गा मी ब्रह्म - नारायण सुर्वे पृ.68

प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित यह बिंब सुर्वे की कविता में चित्रित हुआ है। इस बिंब को कवि ने अत्यंत सजीव बनाया है। मजदूर लोग अपनी थकान दूर करने के लिए मध्यान छुट्टी में चाय पिने जाते है। उनकी खुशी और गम जैसे चाय पर ही निर्भर हो। आज भी कई मिलो में कूपन पर चाय देने का रिवाज है। प्रत्यक्ष इस घटना को सुर्वे ने दो बिंब निर्माण किए हैं।

"मधल्या सुट्टित, लेभला टेकून
कूपनवरच्या किटलीतला चहा देत घेत
चर्चा करता करता नको असलेले शब्द
पोलादी चिमट्यात धरुन,
घन घालून नव्याने घडवले जावेत"[388]

अथवा

"चला, चहा तर पिऊ या
- - - - - - - -
त्याने सिगारेट काढली
चहाच्या घुटक्यासोबत शांतपने ओढू लागला"[389]

श्रवण बिंब

कविता एक संश्लिष्ट और सामाजिक इकाई है। उसके विषयाभिप्राय में ही कवि और पाठक का रिश्ता निहित है। सुर्वे की कविता मजदूर जीवन की वास्तविकताओं को आत्मसात करके लिखी गई है। इसलिए अपनी कविताओं में वे यथार्थ का चित्रण करते हैं।

"इथे वाजवी मेघ चौघडे
तालावर दौडतात घोडे

[388] सनद - नारायण सुर्वे पृ.64
[389] सनद - नारायण सुर्वे पृ.72

तलवारीच्या पात्यांमधुनी

पराक्रमाची वीज कडाडे"[390]

अथवा

"सात वाजता सकाळी । भोंगा वाजवी भूपाळी

सुरु पहिली पाळी । मोठ्या डोलात"[391]

स्मृति बिंब

यह बिंब मनोविज्ञान पर आधारित होता है । प्रत्यक्ष अनुभव से संबंधित यह बिंब सुर्वे की कविताओं में कई स्थानों पर आया है ।

"दोन दिवस वाट पाहाण्यात गेले, दोन दुखात गेले

हिशोब करतो आहे किती राहिलेत डोईवर उन्हाळे"[392]

मजदूर की जिंदगी रणभूमि समान है । वहाँ श्रम, संघर्ष अनिवार्य है । इस संघर्ष और श्रम के लिए उत्तराधिकारी के रूप में बेटा वहाँ पहुँचता है ।

"इथेच, या सागरतीरि झुंजतच त्यानेही देह ठेवला

त्याच्याच साच्यावर दमेकरी मुकादमाने मला नेमला"[393]

नारायण सुर्वे की कविताओं में कुछ व्यक्ति रेखाएँ अमर हुई है । जिसमें उस्मान अली, चंद्रा नायकीण, शीगवाला, अफ्रिकन चाचा, पोर्टर आदि । सभी पर कविने स्मृति बिंब पर आधारित कविताएँ लिखी हैं ।

"इतक्यामंदी समोर झाली बोंम

मी धावला, देखा

गर्दी ने घेरा था, तुझ्या अम्मीला

काटो बोला

---

[390] ऐसा गा मी ब्रहम - नारायण सुर्वे पृ.71

[391] ऐसा गा मी ब्रहम - नारायण सुर्वे पृ.74

[392] सनद - नारायण सुर्वे पृ.16

[393] सनद - नारायण सुर्वे पृ.33

- - - - - - -

झगडा झाला

सालों ने खूब पिटवला मला

मरते मरते पाय गमवला"[394]

वास्तव में वर्ग संघर्ष की धार मराठी वाङ्मय में प्रथमत: अमर शेख और अण्णाभाऊ साठे ने लाने का ढाडस किया है। श्रमिक जीवन भी एक जीवन होता है उसका अपना एक अलग अस्तित्व और अविष्कार है। इस विश्व में भी मनुष्य जीते है और जीते-जीते कैसे टूटकर गिरते है इसे अमर और अण्णा ने एक ही समय में एक साथ पाठक वर्ग को दिखाने की चेष्टा की है। दोनों भी किसान, मजदूर और श्रमिक के पक्षधर और हितचिंतक थे। अन्याय दिखते ही सुलग जाते थे। हाँ इतना जरुर है कि सुलगने की पद्धति दोनों की अलग-अलग थी। अणाभाऊ भीषण यथार्थ पर अधिक जोर देते थे और अमर प्रत्यक्ष कृति पर। दोनों का मकसद एक ही था किंतु रास्ते अलग-अलग।

बिंब विधान

अम और अण्णा के कविताओं में कई प्रकार के बिंबों का दर्शन होता है किंतु यह बिंब ऐतिहासिक घटना पर आधारित, यथार्थ परक है। तथाकथित अभिजात कवियों ने जिन बिंबों को पाठक वर्ग को दिखाया है उससे भिन्न है।

ऐंद्रीय बिंब के जो उप प्रकार है - गंध, स्पर्श, रंग स्वाद इन सब बिंबों का प्रयोग अमर और अण्णा के कविता में देखने को मिलता है। गंध बिंब पर अभिजात कवियों ने बहुत लिखते आये है। अमर उन कवियों से पूछते है फूल तो बहुत खिले है किंतु पेट में अन्न का एक भी कण नही है तब सिर्फ गंध पर ही कैसे जीऊ -

"फुले उमलली जिथे सर्व भर,

पण अन्नाचा कण नच उपजे

जगू कसा नुसत्या गंधावर"[395]

---

[394] सनद - नारायण सुर्वे पृ.60

[395] शाहीर अमर - अण्णा - डॉ. माधव पोतदार, पृ.110

अमर ने 'तो मरतो हें पाहुनिसुद्धा' शीर्षक कविता में 'मृत्यू' को लेकर कहते है कि मौत सबको आती है और आनी भी चाहिए किंतु कुत्तों और बाघों की तरह नहीं बल्कि साधारन मनुष्य की तरह । अनेक कवियों ने फूल का प्रयोग उमंग, उत्साह, ताजगी और गंध के लिए किया है । यहाँ अमर शेख इसी कविता में आगे कहते है कि मौत आए तो वह बकुळी के फूल के समान नाजुक । जो सुख जाने के बाद भी गंध देता है -

"मरण बकुळीच्या फुलांप्रमाने
अगदी नाजुक सहज यावें
निर्माल्य न होतां सुकुनीही -
देउनि सुगंध जन रिझवावे ।"[396]

अमर-अण्णा की कविता में रंग बिंब के भी उत्तम उदाहरण देखने को मिलते हैं । इन कवियों को लाल रंग बहुत पसंद है, चाहे वह आग हो, झेंडा हो या फिर सूरज । अमर शेख ने 'कोळ्याचे गाणे' शीर्षक कविता में लाल तारा का आगमण का बिंब खडा किया है -

"गावलं आमाला जालंबि लाल
गड्या उगवला ताराबि लाल ।"[397]

इसी कविता के अंत में कवि ने लाल झेंडेवालों की मदत और 'लाल बावटा कला पथक' की हिम्मत से दुश्मनों का सर्वनाश कर रहे का बिब खड़ा किया है जिससे पाठक को वीर रस की प्राप्ति होती है -

"जनतेच्या क्रांतिचं उधान आलं
बावट्यानं एकीच जाळं दिल
मदतीला लाल झेंडेवालं आलं
(लाल) बावट्याला खांद्यावर घेऊन आता
चोरास्ति झोडायचं हाय रे !"[398]

अण्णाभाऊ ने भी 'मुंबईची लावणी' में इसी तरह का बिंब निर्माण किया है -

---

[396] कलश - अमर शेख, पृ.118

[397] अमर शख यांचे पोवाडे, लोकगीत व कविता, संकलक - डॉ. अजीज नदाफ,पृ.37

[398] अमर शख यांचे पोवाडे, लोकगीत व कविता, संकलक - डॉ. अजीज नदाफ पृ.38

"लाल झेंडा घेऊन हाती
करायला इथे क्रांति ।
मजुरांची पिढी नवी पाऊल टाकती ।।"[399]

अमर शेख ने तृप्ति शीर्षक कविता में स्पर्श और स्वाद बिंब को एक साथ कैसे दिखाया है इसे हम देख सकते है -

"धट्ट ताक अन् ज्वारी भाकर हवी खाउनी एकच ढेकर
प्रिय पत्नीच्या अन् बाळाच्या - गरमगरम श्वासाचा कपुस
भरलेल्या नाजुक गादीवर लोळू दे क्षण एक मला तर
रूप पहा माझे त्यानंतर आहे नाही मधील अंतरण"[400]

दृश्य बिंब / प्राकृतिक बिंब

अमर-अण्णा ने जो प्रकृति का चित्रण किया है वह तथाकथित कवियों से भिन्न है । प्राकृतिक बिंब इनके यहाँ यथार्थ की भूमी को पकडकर निर्माण किया गया है । मराठी कविता में आमराऊ, द्राक्ष की खेती, फूलों की खेती आदि का चित्रण होता आया है । किंतु अमर शेख नीम, बबूल और जंगली काँटो से भरा गंगा तट का चित्रण करते है । जहाँ लोग अभाव में जी रहे हो और पाणी के बिना खेती भी नही हो रही हो तब कवि कैसे हरियाली और सुंदर दृश्यों का चित्रण कर पायेगा । 'कलश' शीर्षक कविता में कविने कुछ ऐसे ही बिंबों का अंकन किया है -

"माझ्या पुष्पवतिच्या कांठीं
बाभळ, कडुलिंबांच्या रांगा.
जाई, जुई, शेवंति, केतकी
यांचे ठायीं ठायि दिसे वण

[399] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या- लोकवाङमय ग्रह , पृ.27
[400] कलश - अमर शेख पृ.71

नाव मात्र पुष्पवति कांठीं

कुसळ सराटे यांची लावण"[401]

अमर-अण्णा पूर्व काव्य में फागून के दिनों में आमराई में कोयल का मधूर गीत का चित्रण कई कवियों ने किया है । अमर का कहना है कि जो भूख से बेहाल हो, जिसके पेट में चूहे दौड रहे हों, जिसका जिवन दारिद्रय़ में बित रहा हो, क्या उसे कोयल की आवाज मिठी और मन को बहनेवाली लगेगी फिर कोयल की आवाज और गीत किस वर्ग के लिए है ? अमर ने उस कोयल को गाने से मना किया है जो इस वर्ग के लिए कोई महत्त्व नही है-

"कोकिळे गाउं नको 'ते' गीत

जाळित सुटते मानव ह्रदया

जे भेसुर संगीत ...कोकिळे

भूख येइ पायांत माझि बघ

होई जिवाची तगमग तगमग"[402]

अण्णाभाऊ साठे ने 'रवि आला लावुनी तुरा' कविता में सूरज निकले के साथ ही श्रमिकों की जिंदगी कैसे दौडती है इसका वे चित्रण प्रकृति के साथ जोडकर करते है -

"रवि आला लावुनि तुरा । निघाली जिंदगी भरभरा ।।

दीप गगनाच्या डोईवर लागला । ढग तिमिराचा त्यानं निवारिला

झाले आकाश लाल । बघ उधळी गुलाल"[403]

इनकी अन्य कविता 'दुनियेची दौलत सारी' में किसान ने रात-दिन मेहनत करने के बाद फसल किस दशा में और कैसे लग रहा है का वर्णन कविने किया । मका, हल्दी, तुअर, बाजरा, आदि का चित्रण ऐसे करते है कि फसल का बिंब हमारे आँखों के सामने दिखायी देता है -

"कणसं मक्याची हुरड्याली आली

बसली हळद लाजून खाली

---

[401] कलश - अमर शेख पृ.3

[402] कलश - अमर शेख पृ.93

[403] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या- लोकवाङमय ग्रह , पृ.20

तूर शेंगानं आपुल्या न्हाली
गहू खपलीचा लहरा मारी
भूईमूग रोवूव बसला आरी ।"[404]

भावात्मक बिंब

अमर - अण्णा ने अपनी कविता में ऐसे बिंबों का निर्माण किया है जो ह्रदय को स्पर्श करनेवाली अत्यंत मार्मीक है । अमर ने 'उद्धमसिंगाचा पोवाडा' में लालबाग में धरना दे रहे निशस्त्र जनता पर गोलीबार का चित्रण किया है । इस गोलीबारी में खून से लथपथ एक स्त्री को अपने बच्चे का रोने का आभास होता है, और वह उठते-गिरते हुए बच्चे को दूध पिलाने के लिए जाने की कोशिश करती रहती है -

"एकदा ताह्न्याची आई । होता तिला सई ।
पाना फुटलाई ।
रक्ताळलं अंग घेऊन उठनार ।
तरफडत घराकडं निघनणार ।
काही येळा सरपटाया लागणार ।
बाळाचं भरतं कानि घुमणार ।
आईचं भरतं तिला येणार ।
तशिच ती पुढं सरकू लागणार ।"[405]

अण्णाभाऊ साठे ने 'माझी मैना गावावर' राहिली शीर्षक पोवाडे में कवि की पत्नी की मानसिकता, प्रेम, और गरीबी के कारण पत्नी को छोडकर काम की तलाश में दूर जाने का दुख का मार्मीक चित्रण किया है । कवि को छोडने उसकी पत्नी गांव की सीमा तक जाते-जाते उसका चेहरा फूल की तरह मूर्झा जाता हे । तब कवि उसे अभूषण लाने का वादा कर खुश करने का प्रयास करता है फिर भी उसका मन नहीं खिल पाया । मजबूरन अपने छाती पर पत्थर रखकर वह कैसे विदा करती है इस कविता बिंब के माध्यम से देख सकते है -

---

[404] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या- लोकवाङमय ग्रह , पृ.20
[405] अमर शेख यांचे पोवाडे, लोकगीत व कविता, संकलक - डॉ. अजीज नदाफ,पृ.8

"गरिबिनं ताटातूट केली आम्हा दोघांची । झाली तयारी मुंबईला
जाण्याची । वेळ होती ती भल्या पहाटेची । बांधाबांध झाली
भाकर तुकड्याची । घालवित निघाली मला माझी मैना चांदनी
शुक्राची । गावदरीला येताच कळी कोमेजली तिच्या मनाची ।
शिकस्त केली मी तिला हसवण्याची । कैरात केली पत्रांची । वचनांची ।
दागिन्यानं मढवून काढायची ।... परी उमलली नाही कळी
तिच्या अंतरीची । आणि छातीवर दगड ठेवून पाठ धरली
मी मुंबईची ।"[406]

व्यक्ति बिंब

अमर अण्णा ने अपनी कविता के माध्यम से कई व्यक्तिबिंबों का निर्माण किया है । इनके व्यक्ति बिंब ज्यादातर महान क्रांतिकारी योद्धाओं को लेकर रचे गये है । शाहीर अमर शेख ने ऐसे क्रांतिकारी व्यक्ति का बिंब खड़ा किया है जिसे लोग भूल गये है । उनका एक 'उध्दमसिंगाचा पोवाडा' में जालियानवाला बाग हत्याकांड की जानकारी देकर उस कांड का बदला चुकाने के लिए उध्दमसिंग इंग्लंड कैसे पहुँचता है, और 13 मार्च 1940 को कॉक्स्टन हाल में लाखों लोगों के बीच शत्रू पर गोलियाँ चलाकर कैसे पराक्रम कर दिखता है इसका चित्रण इस व्यक्तिबिंब में किया गया है । यह पोवाडा बहुत बडा है और इसमें से किन्हीं पंक्तियों का अपना स्वतंत्र अर्थ नहीं होता । एक पंक्ति दूसरे पंक्ति पर दूसरी तीसरे पर निर्भर है, इसीलिए पूरी कविता को पढे बगैर अर्थ को समझना मुश्किल हो जाता है । फिर भी हम व्यक्तिबिंब का उदाहरण देख सकते है -

"उध्दमसिंग अज्ञात वीर । पंजाबी पोर । कवळा सरदार ।
येवढं हाय ठाऊक सार्या जगतास ।
क्षणार्धात बसला त्याला गळफास ।
विजेचा ठावठिकाण कोणास माहीत असणार ।
सांगा तुम्ही राजे हो राजेजी राघूबा दाजी ।।"[407]

---

[406] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे, लोकगीत व लावण्या, लोकवाङमयग्रह, पृ.23

[407] अमर शेख यांचे पोवाडे, लोकगीत व कविता, संकलक - डॉ. अजीज नदाफ,पृ.10

अण्णाभाऊ साठे ने 'गण', 'जग घालुनी घाव', 'महाराष्ट्राची परंपरा' आदि पोवाडों में व्यक्ति बिंब का निर्माण किया है । महाराष्ट्राची परंपरा में ज्ञानेश्वर, छत्रपती शिवाजी, अगरकर, फूले से लेकर लालबाग के क्रांतिकारी वीरों का व्यक्तिबिंब को रेखांकित किया गया है। व्यक्ति बिंब का उदाहरण -

"मोगलांच्या साम्राज्याला । तोंड देण्याला । सज्ज जाहला ।
दख्खन सारा खडबडून उठला । बघून दिल्लीचा ऊर फूटला ।
आदिलशाहिचा धीर सुटला ।।जी।।"[408]

प्रतीक विधान

अमर और अण्णा के पोवाडे, लावणी और गीतों में कई प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग हमें दिखायी देता है । अमर-अण्णा ने कई कविताओं में पूँजीवादी, साहुकार, साम्राज्यवादी, अवसरवादियों को साँप, मछली जो छोटे मछली को खाती है आदि के प्रतीकों के माध्यम से नवाजा है । शोषक वर्ग बैठे-बैठे श्रमिकों का खून चूसते रहते है । यह शोषक वर्ग जनता के दुश्मन है इसलिए प्रतीकों के माध्यम से इनका सहीं चित्र हमारे सामने उपस्थित किया है । अमर शेख ने 'कोळ्याचे गाणे' में पूँजीवादी को 'बोयर मछली' के रूप में चित्रित किया है। -

"बोयर मासा आला, घेरा
नोकरशहा ह्यो बघा जरा
- - - - - - -
बारिक बारिक मासं खाऊन मातला
पालि आता याचि हाय रे, हाय रे"[409]

अमर शेख की अन्य कविता 'मुंग्या आणि साप' इसका हिंदी अनुवाद होगा चिंटियां और सांप । यह कविता प्रतीकात्मक है । चिंटियां रहने के लिए घर बना लेती है । वे आठ महिनों अन्न इकट्ठा कर चार महिने विश्राम करती है किंतु सांप एक दीन भी मेहनत करके अन्न का एक कण भी इकट्ठा नहीं करता । वह बने-बनाए घर में घूस जाता है और अत्याचार करता है । यहाँ सांप पूँजीपतियों का प्रतीक है और चिंटियाँ श्रमिकों का । उदा-

[408] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे, लोकगीत व लावण्या, लोकवाङमयग्रह, पृ.4
[409] अमर शेख यांचे पोवाडे, लोकगीत व कविता, संकलक - डॉ. अजीज नदाफ,पृ.37

"तुम्ही पाहिल्या असतिल मुंग्या

- - - - - - - - -

फक्त राबती आठच महिने

आणि चार महिण्यांचा साठा

- - - - - - - - -

त्यापेक्षा हा सर्पराज घ्या

इथेंच या वारुळात राहातो

कणहि न अन्नाचा सांठविता ."[410]

अण्णाभाऊ साठे ने भी 'शिवारी चला' कविता में 'चिवट केणा' प्रतीक का प्रयोग किया है। 'चिवट केणा' यह पूँजीपति का प्रतीक है। 'चिवट केणा एक ऐसे घास प्रकार है जो दूसरे फसल को बढने और फूलने नहीं देता। इसे ऊपर-ऊपर छाँटने-काटने से नहीं मरता। इसे मारने के लिए जड़ से उखाडना पडता है -

"भांडवलशाहीचा चिवट केणा

वरवर छाटलाय तरी जाईना

अन् जराशीबी शेती पिकू देईना

उपटून मुळी घाल पायदळी"[411]

अमर - अण्णा के लाल बावटा, लाल झेंडा, लाल तारा, साँप, बेडक, अजगर, आग, तलवार, सूरज आदि प्रिय प्रतीक रहे हैं। इन में से साँप, बेडक और अजगर को छोड बाकी क्रांति के प्रतीक हैं। -

"रातदीस राबून सालंना साल

किती पिढ्या आम्ही काढायचं हाल

रोवू आता बाँधावर बावटा लाल"[412]

---

[410] कलश - अमर शेख पृ.31

[411] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे, लोकगीत व लावण्या, लोकवाङमयग्रह, पृ.23

[412] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे, लोकगीत व लावण्या, लोकवाङमयग्रह, पृ.21

1965 में चीन ने साम्राज्यवादी धोरण अपनाकर भारत पर जब आक्रमण किया तब अमर शेख ने बर्फ पेटला कविता लिखी थी । इस कविता में कवि कहता है कि हिमालय के बर्फ को आग लगी है चलो बुझाने । यहाँ बर्फ को आग लगना यानी चीनी आक्रमण का प्रतीक है -

“बर्फ पेटला हिमालयाला विझवायाला चला,
वृद्ध तरुण या फक्त रक्त द्या, रे साद हकेला
या रे द्या रे साद हकेला ।।
घडू नयेत ते आजला घडते
स्वातंत्र्याचे बाळ रांगते
स्वतंत्र विहराचा धावते”[413]

अण्णाभाऊ साठे की ‘माझी मैना गावावर राहीली’ प्रसिद्ध कविता है । इस कविता में कवि ने पत्नी को दिशा-निर्देशन करनेवाली और सहारा देनेवाली के रूप में चित्रित किया है । कवि ने पत्नी को अंधे की काठी के प्रतीक से पुकारा है जिसके सहारे आगे बड़ता है । -

“घडीव पुतळी सोन्याची । नव्या नवतीची । काडी दवण्याची ।
रेखीव भुवया । कमान जणू इंद्रधनूची । हिरकणी हिऱ्याची ।
काठी आंधळ्याची । तशी माझी गरिबाची ।”[414]

अमर-अण्णा ने इसके अलावा ‘मुंबईचा गिरणी कामगार महाराष्ट्राची परंपरा’, ‘गण’, ‘समाजवादी शिवछत्रपती’ अर्थात अमर अभिलाषा, ‘ब्रह्मा, विष्णु, महेश’ आदि कविताओं में ऐतिहासिक और पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग किया है ।

---

[413] अमर शेख यांचे पोवाडे, लोकगीत व कविता, संकलक - डॉ. अजीज नदाफ,पृ.41

[414] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे, लोकगीत व लावण्या, लोकवाङमयग्रह, पृ.37

निष्कर्ष

इस अध्याय में हिंदी और मराठी मार्क्सवादी कविता में आये भाषा, बिंब, प्रतीक, शैली आदि पर विस्तृत चर्चा की गई है। मार्क्सवादी काव्य में तीन मुख्य काव्य-शैलियाँ दृष्टिगोचर होती है - वर्णनात्मक, उद्बोधनात्मक और विचारात्मक।

वर्णनात्मक कविताओं में या तो कोई कथा-प्रसंग रहता है या निम्न वर्ग के चित्र उद्बोधनात्मक शैली के अंतर्गत भावावेश की अकुल व्यंजना और देश के युवकों एवं श्रमिकों को संबोधित कर लिखी गई रचनाएं आती है। जनसामान्य को तत्काल प्रभावित करने के लक्ष्य से उभय भाषाओं के कवियों ने कई कविताओं में किसी भी प्रकार की बौद्धिक जटिलता या कलात्मक कुशलता का सायास नियोजन नहीं किया। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शाहीर अमर शेख, अण्णाभाऊ साठे और नारायण सुर्वे की कई कविताएँ इस शैली मे लिखी गई है। मार्क्सवादी कवि उसी साहित्य को श्रेष्ठ मानते हैं जिससे वर्ग-संघर्ष और क्रांति का स्वर बड़े। इनकी कविता की भाषा ज्यादातर सामान्य बोलचाल की भाषा है। मुक्तिबोध को छोडकर बाकी कवियों की काव्यभाषा सामाजिक बोलचाल की भाषा से साकार हुई है। हिंदी की तुलना में मराठी कविता की भाषा अधिक ग्रामीण लोक-भाषा के निकट है। इनके कविता में आएं प्रतीक और बिंब तथाकथित अभिजात कवियों के काव्य में आए बिंबों से भिन्न है।

चतुर्थ अध्याय

हिंदी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना : तुलनात्मक विश्लेषण

हिंदी कविता में मार्क्सवादी चेतना की शुरुआत सन् 1918 से गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की कविता 'वीरप्रण' से होती है। इससे पूर्व सन् 1915 में पंडित केशवप्रसाद मिश्र की 'जाड़ा और निर्धन' कविता मिलती है । हिंदी की तुलना में मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना एखाद कविता को छोड़ दे तो बहुत बाद में आयी है। इसकी शुरुआत मराठी में 1935 के आस-पास वि.दा. करंदीकर की कविता से होती है। दोनों भाषाओं में मार्क्सवादी चेतना की शुरुआत रुस की क्रांति के प्रभाव स्वरूप 1917 के बाद ही आयी है।

हिंदी में सन् 1918 से सन् 1936 के बीच देविदत्त मिश्र, शिवदास गुप्त 'कुसुम', रामविलास शर्मा (रूपतरंग) जगदम्बा प्रसाद मिश्र 'हितैषी', राधावल्लभ पांडेय 'बंधु', गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' (मजदूर),दुर्गादत्त त्रिपाठी, अवध बिहारी, मालवीय 'अवधेश' (दाह),छैलबिहारी दीक्षित 'कंटक' (साम्यवाद की हुंकार), महावीर प्रसाद श्रीवास्तव (बदला), ठाकुर रघुनंद सिंह (रोटी), रामेश्वर करुण (तमसा), श्याम बिहारी शुक्ल 'तरल' (मजदूर जगत), आदि की कविताएँ लिखी जा रही थी। दूसरी ओर छायावादी काव्यधारा के प्रमुख कवि प्रसाद,निराला,पंत, महादेवी की कविताएँ वैयक्तिक दुख, गाथा को सुनानेवाली थी । वह फिर 'पके आधे बाल मेरे हुए निष्प्रभ गाल मेरे' हो या 'मैं नीर भरी दुख की बदली' हो । प्रसाद ने तो झंझा झंकोर गर्जन तर्जन के माध्यम से अपने व्यक्तिगत प्रेम विरह को प्रकट किया है। निजी और वैयक्तिकता का उदाहरण हम देख सकते हैं -

"मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देख कर जाग गया।
आलिंगन में आते आते मुस्का कर जो भाग गया ।।
उज्जवल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातों की।
अरे खिलखिला कर होने वाली उन बातों की ।।"[415]

[415] जयशंकर प्रसाद

छायावादी कवि छायावाद के उत्तर काल में भाव संस्कार और वैयक्तिकता को छोड यथार्थवाद की ओर बढ़ रहे थे । निराला की कुकुरमुत्ता, नए पत्ते, गर्म पकोडी, खजोहरा, डिप्टी साहब आए, आदि इसके उत्तम उदाहरण है । पंत की 'वे आँखें','वह बुड्ढा' जैसी कविताएँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । मार्क्सवाद का इतना प्रभाव बढ़ चुका था कि इससे कोई भी बचना असंभव था । तभी तो व्यक्तिगत दुख, प्रकृतिपरक और प्रेम कविताएँ लिखनेवाला कवि भी कहता है -

"गा कोकिल बरसा पावक कण
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वंस भ्रंष जग के जड़ बंधन"[416]

मराठी कविता के संदर्भ में भी यही हुआ कि बढ़ते हुए मार्क्सवाद के प्रभाव स्वरूप रवीकिरण मंडल के कवियों की कविताओं में परिवर्तन होने लगा । उस समय मराठी में प्रेम कविताएँ लिखने का दौर चल रहा था। कुसुमाग्रज जैसे प्रसिद्ध कवि प्रेम कविता में तल्लीन हो गये थे । वे स्त्री का प्रेम और उसके स्पर्श से ज्यादा सुख किसी भी चीज में नहीं देख रहे थे -

"स्त्रीच्या स्पर्शापरि ना
सुख दूसरे संसारी
दुर्बलतेहुनि कोमल
करुणा स्पद काय तरी"[417]

अणिल, काणेकर, कुसुमाग्रज जैसे कवि 'रवीकिरण मंडल' के प्रभाव में रहते हुए भी वे धीरे-धीरे उस दबाव को तोड़कर साम्यवादी प्रभाव में आ गये थे । काणेकर जी का 'चाँदरात' 'कवने', 'दोन देवभक्त',तो कुसुमाग्रज 'अहि नकुल' और 'आगगाडी व जमीन' के माध्यम से मार्क्सवाद में पदार्पण करते हैं । इस प्रकार हिंदी और मराठी कवियों ने रुढ़ी और परंपरा को तोड़कर प्रगतिवाद में कदम रखा ।

हिंदी और मराठी में शुरुआती दौर की मार्क्सवादी कविता ज्यादातर नारेबाजी, पोस्टर शैली और रूस का गुनगाण गानेवाली नज़र आती है। इन कविताओं को पढ़ने से ऐसा

---

[416] युगांत - पंत, पृ.10
[417] जीवनलहरी - कुसुमाग्रज, पृ.16

लगता है कि इन पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव मात्र है, किंतु वे मार्क्सवादी नहीं हैं। कुछ कविताएँ मार्क्सवादी चेतना से युक्त हैं फिर भी ऐसा लगता है कि इनका मकसद मार्क्सवाद का प्रचार-प्रसार करना रहा है।

हिंदी में श्रेष्ठ मार्क्सवादी बौद्धिक स्तर की कहे जानेवाली कविताएँ जिसमें विचारधारा अंतर्वस्तु बन गयी है,वह सन् 1950 के बाद ही आयी है । प्रगतिवाद में मार्क्सवादी चेतना उतनी मजबूती से नहीं आयी जितनी जनवाद में । सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जो कवि प्रगतिवाद में थे वही आगे चलकर सन् 1970 में जनवादी में शामिल हुए है । नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादूर सिंह आदि कवियों का नाम जनवादी कविता में भी लिया जाता है।

मराठी साहित्य में हिंदी की तरह प्रगतिवाद जैसी कोई धारा नहीं चली किंतु साहित्य में वह प्रवृत्तियाँ जरूर मिलती है, धारा न होते हुए भी प्रगतिवादी कविताएँ 1930 से लिखी गयी है। अनंत कणेकर का सन् 1930 में लिखी गई कुछ कविताएँ और कुसुमाग्रज की कुछ कविताओं के बाद यह परंपरा खंडित हो गई ।सन् 1943 से सन् 1950 तक के बीच ऐसी कविताएँ भी लिखी गई हैं जो मार्क्सवादी चेतना के उदाहरण बन गये है । मराठी में मार्क्सवादी चेतना पूर्णरूप से और सशक्त रूप में सन् 1951 के बाद शाहीर अमर शेख, अण्णाभाऊ साठे, नारायण सुर्वे की कविताओं में दिखायी देती है। रवीकिरण मंडल के कवि व्यक्तिगत दुख और प्रेम को चित्रित करने में अपने आप को महान कवि समझ रहे थे, तब उनको जवाब देने के रूप में मार्क्सवादी कवियों ने बहुत सारी कविताएँ लिखी हैं। उदाहरण के तौर पर हम अमर शेख की कविता को देख सकते हैं -

"मेरा दुख रहने दो मेरे पास
देकर जगत को इसे
क्यों करु मैं उदास
जग को देने लायक
है धीरज शब्द अनमोल"[418]

[418] कलश - शा. अमर शेख, पृ.85

मराठी कविता के संदर्भ में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि अमर शेख, अण्णाभाऊ साठे और नारायण सुर्वे से पहले विंदा करंदीकर और कुसुमाग्रज को छोड़ बाकी कवियों की कविताओं में जो मार्क्सवादी चेतना दिखायी देती है वह ऊपरी ज्ञान की है। समय ने उन पर जितना प्रभाव छोडा था उतना ही ठीक पाया। अमर-अण्णा के पहले किसी भी कवि ने मार्क्सवादी विचारधारा को समझकर अपने अंदर नहीं पचाया है। नारायण सुर्वे के बाद रॉक कार्व्हालो और नामदेव ढसाळ की कविताएँ मार्क्सवादी हैं।

जब हम मार्क्सवादी चेतना के प्रतिफलन की बात करते हैं तो हिंदी और मराठी कवियों ने ईश्वर और धर्म का विरोध किया है। इन्होंने ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हुए धर्म को शोषण का साधन माना है। हिंदी और मराठी कवि ईश्वर को मानते हैं किंतु उस ईश्वर को नहीं जिसे अभिजात वर्ग मानते आया है। बल्कि उस ईश्वर को मानते हैं जिसके श्रम से दुनिया बनती है और जीवित रहती है। इनके दृष्टि में श्रमिक ही ईश्वर है, क्योंकि भौतिक सुख संपदा ईश्वर की देन न होकर श्रमिक की देन है। श्रमिक इस सृष्टि का शिल्पकार है जो अपने खून पसीने से इस जगत का निर्माण करता है। मराठी और हिंदी के कवियों ने किसान को सबसे बड़ा ईश्वर माना है जो अपनी दिन-रात की मेहनत से इस दुनिया का पालन-पोषण करता है। सृष्टि ईश्वर की तो इसमें उपजा अनाज भी ईश्वर की देन है इस धारणा को खारीज करते हुए किसान की सत्ता को स्थापित करने का प्रयास किया है -

"नहीं कृष्ण की
नहीं राम की
नहीं भीम सहदेव नकुल की
नहीं पार्थ की
नहीं रावण की, नहीं रंग की
नहीं किसी की, नहीं किसी की,
धरती है केवल किसान की।"[419]

मराठी कवियों ने भी श्रमिक को ईश्वर मानते हुए सृष्टि का कर्ता-धर्ता माना है -

[419] गुलमेंहदी - केदारनाथ अग्रवाल , पृ.55

"यह तुम्हारी धरती माता, तूम ही विश्व के निर्माता
तुम्हारी चर-चर पर सत्ता, तूम ही जगत के दाता ।"[420]

शाहीर अमर शेख ने भी किसान को 'ब्रह्मा, विष्णु,महेश' कहा है, जिसने इस जगत का निर्माण किया है । रूढ़ी परंपरा से चलते आ रहे धारणाओं का खंडन कवि ने इन शब्दों में किया है -

"काली माँ का सगा पुत्र तू, तू ही खरा घनश्याम
ब्रह्मा बन के तूने, निर्माण किया जग सारा
पत्थर पहाड़ खोदके विश्व सजाया न्यारा
बहाकर पसीना-राजा किसान हरे राम"[421]

हिंदी और मराठी के मार्क्सवादी कवियों ने ईश्वर धर्म, धर्म-ग्रंध, धार्मिक मान्यताएँ, जातिवाद आदि जिससे मानव जाति का विकास कुंठित हो जाता हो, उनका जमकर विरोध किया है । नारायण सुर्वे स्वर्ग जैसी धार्मिक मान्यता पर थूंकते हैं, क्योंकि मनुष्य को जीवित रहते वक्त दरिद्र जीवन बिताना पड़ता हो, रोटी के लिए तरसना पड़ता हो तब मरने के बाद स्वर्ग किसे चाहिए ? धार्मिक ग्रंथों का विरोध भी इसलिए करते हैं कि उन ग्रंथों का निर्माण किसी विशिष्ट वर्ग ने अपने स्वार्थ के लिए रचा है । किस तरह इन चिजों का इस्तेमाल ढाल की तरह कर रहे हैं , इसे दोनों भाषाओं के कवि भली-भांति जानते हैं । इन दंगों में कई मुसलमान, हिंदू और सिक्ख मारे गये हैं । सांप्रदायिक दंगों के कारण किस तरह से निष्पाप मनुष्य की जाने जाती है इसका चित्रण मराठी और हिंदी कविता में किया गया हैं । हिंदी में 'तेरे खोपडी के अंदर क्या है', 'दरख्तों की सघन बगीचे में' और मराठी में 'शीघवाला', 'उस्मान अली' शीर्षक कविताएँ इसके उत्तम उदाहरण है ।

हिंदी और मराठी मार्क्सवादी कवियों ने मजदूर, पीड़ित, शोषितों के प्रति गहरी सहानुभूति दिखायी हैं । ये कवि कृषकों, मजदूरों, सर्वहारा के हिमायती रहे हैं। तत्कालीन समय की निर्मम शोषण के चक्की के पाटों में पीसनेवाले मजदूरों एवं पीडितों की दशा का कारुणिक चित्रण मार्क्सवादी कवियों ने की है। मार्क्सवादी कवियों ने मज़दूरों को सभी सुखों

---

[420] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या - लोकवाङमय ग्रह, पृ.30
[421] अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे, लोकगीत व कविता, संकलक - डॉ. अजीज नदाफ,पृ.35

के उपकरणों का सृष्टा माना है परंतु वही मज़दूर स्वयं जब सुख से वंचित हो जाते हैं तब कवियों को बहुत दुख होता हैं । प्रगतिवादी कवियों ने केवल उन्हें सहानुभूति नहीं दी बल्कि उन्हें अपने हक और कर्तव्यों के प्रति जागृत भी किया है, समय-समय पर उन्हें क्रांति के लिए उकसाया भी है ।

हिंदी में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल की कविताएँ जमींदारों द्वारा कृषकों के शोषण, अन्याय और अत्याचार के चित्र खिंचती हैं। आजादी के बाद भी मुनाफाखोरी, चोरबाजारी, तस्करी, भ्रष्टाचार, असहाय गरीबी कम होने के बजाय बढ़ ही रही थी, इसकी चिंता मराठी और हिंदी के कवियों को थी । हिंदी की कविता ग्रामीण, महानगरीय और औद्योगिक परिस्थितियों में कार्यरत मज़दूरों का चित्रण करती है । मराठी कविता मुंबई और मुंबई के मज़दूरों का चित्रण ज्यादा करती हैं ।

यथार्थवादी दृष्टि हिंदी और मराठी मार्क्सवादी कविता का केंद्रीय मूल्य रही है। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, नारायण सुर्वे, अण्णाभाऊ साठे और शाहीर अमर शेख की कई कविताएँ यथार्थ और व्यंग्य से भरी-पूरी हैं । छायावादी और रवीकिरण मंडल की कवियों की तरह कल्पना के पंख लगाकर उडना नहीं चाहते बल्कि यथार्थ की भावभूमी पर अभिव्यक्ति देना चाहते हैं। हिंदी और मराठी कविता में बेरोजगारी, भूखमरी, महंगाई, विषमता, अभावग्रस्त जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है । इसी से समाज की तत्कालीन दुर्दशा और युगीन समस्याओं का समाधान दृष्टिगोचर होने लगा । हिंदी में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और मुक्तिबोध की कविताओं में यथार्थ का साक्षात्कार कहीं भावात्मक स्तर पर तो कहीं बौद्धिक स्तर पर हुआ है । मुक्तिबोध की कविताओं में अन्य की तुलना अधिक बौद्धिक स्तर की हैं । मराठी में नारायण सुर्वे की कविताओं में अधिक बौद्धिक स्तर पर यथार्थ चित्रण हुआ है ।

हिंदी में नागार्जुन की 'युगधारा', 'प्रेत का बयान', 'पूरानी जुतियों का कोरस', 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' आदि कविताएँ यथार्थ की ठोस धरातल पर रची गई हैं। केदारनाथ अग्रवाल की 'शहर के छोकडे', 'नागार्जुन के बाँदा आने पर', 'कानपुर' आदि शीर्षक कविताओं में जो यथार्थ चित्रण दिखायी देता है वह अन्य कवियों की कविताओं से भिन्न है। इनका 'यथार्थ-लोक जैसे फैंटास्टिक है, वैसे ही उनका फैंटास्टिक लोक अत्यंत यथार्थ है ।' नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल ने कभी गंभीर होकर तो कभी व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक

विषमताओं के लिए जिम्मेदार लोगों की बखिया उधेडी हैं। गाँव से शहर जाने का सिलसिला कैसे बढ़ गया और उसका परिणाम क्या हुआ आदि का चित्रण हिंदी कविता में मिलता है। इसके अलावा 'अकाल और उसके बाद', 'ओ जन मन के सजग चितेरे', 'चीलों की चली बारात' आदि शेकडों कविताओं में यथार्थ चित्रण हुआ है। मुक्तिबोध एक गंभीर मार्क्सवादी कवि होने के कारण उनकी रचना में यथार्थ चित्रण भी गंभीर रूप से चित्रित दिखायी पड़ता है। स्वभावत: उन्होंने कभी प्रचारात्मक कविताएँ नहीं लिखी। उनके 'जब प्रश्न चिन्ह बौखला उठे', 'भाग गई जीप', 'ओ मसीहा', 'इस बैलगाडी को', 'विक्षुब्ध बुद्धि के मारक स्वर' आदि कविताओं में यथार्थ चित्रण किया गया है।

मराठी में लोकशाहीर अण्णाभाऊ साठे ने 'मुंबईची लावणी' में मनुष्य ही मनुष्य को किस तरह लूट रहा है, और टी.बी. ज्वार आदि रोगों से ग्रसित जन पैसे के अभाव में बिना उपचार के कैसे मर रहे हैं, इसका चित्रण किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पूँजीवादी तंत्र ने देश को गरीबी के अलावा दिया ही क्या है ? अपनी हड्डी तोड़कर मुंबई का निर्माण करनेवाला शिल्पकार किस तरह झुग्गी-झोपड़ी रूपी नरक में रह रहा है और अपना जीवन मोमबत्ती के समान जलाकर खत्म कर रहा है, इसका चित्रण नारायण सुर्वे ने 'मुंबई' कविता में किया है।

गरीबी, महंगाई और भ्रष्टाचार ने किस तरह तूफान मचाया है जिससे आम आदमी का जीवन तबाह हो रहा है आदि का चित्रण मराठी और हिंदी के कवियों ने अपनी कविता में किया है।

"गोदामों में अन्न कैद है, पेट-पेट है खाली
भूख-पिशाचिन बजा रही है, द्वार द्वार पर थाली।"[422]

साहूकारों के काला बाज़ार के कारण जनता किस तरह भूख से लड़ रही है इसका यथार्थ चित्रण मराठी कवियों ने भी किया है -

"काळयाबाजाराचा रोग आला। मागं लागला। गोरगरिबाला।
सुखाचा घास मिळना झाला। काळ हा आता बिकट आला।

[422] पूरानी जुतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ.55

वरती वरती बैसले चोर नफेबाज । करिती ते अपुले काज ।

म्हणती देशात आमुचे राज"[423]

इस प्रकार हिंदी और मराठी कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करके पाठक को सोचने पर मजबूर किया है।

हिंदी और मराठी मार्क्सवादी कवियों का ध्यान स्त्री के सोचनीय स्थिति की ओर भी आकर्षित हुआ है। स्त्री के प्रति रीतिकालीन एवं छायावादी कवियों की दृष्टि एक रहस्यात्मक व भोगवादी रही। इसलिए रीतिकाल से छायावाद तक की कविताओं में स्त्री का वर्णन रंभा, उर्वशी, मेनका के रूप में हुआ, जो सुंदर और कोमल है । सुंदरता, कोमलता के साथ-साथ उसे श्रृंगारीक भी दिखाया गया है जो पुरुष वासना को उत्तेजीत करती है । हिंदी और मराठी में पहले स्त्री सौंदर्य के मानदंड ही अलग थे। उनके दृष्टि में स्त्री के सौंदर्य से तात्पर्य पतली कमर, रंगे होंठ, सुंदर भौंहें, उन्नत उरोज आदि था। मार्क्सवादी कवियों ने इन मानदंडों को कभी स्वीकार नहीं किया बल्कि इसके विपरीत कड़ी धूप में मजदूरी करनेवाली, गोबर की उपले थापनेवाली, ईंट भट्टी में श्रम करनेवाली स्त्री में सौंदर्य देखा है ।

हिंदी और मराठी मार्क्सवादी कवियों को पतली कमर, लंबी नाक, पाणीदार आँखें, रंगे होंठ से ज्यादा भरी धूप में श्रम करनेवाली स्त्री के जिस्म से टपकता पसीना आकर्षित करता है ।वे किसी स्त्री के उन्नत उरोज से ज्यादा खुद भूखी होकर भी सूखे स्तन से अपने बच्चे को दूध पिलानेवाली स्त्री में सौंदर्य देखते हैं । इस प्रकार अभिजात कवियों के मानदंड से भिन्न उलझे हुए बालों, पपडियों पड़े हुए होंठों और कुम्हलाए हुए गालों में सौंदर्य का वास इन्हें दिखायी पड़ता हैं । हिंदी और मराठी मार्क्सवादी कविता की स्त्री भोग का उपकरण न होकर व्यक्तित्व से संपन्न एक मनुष्य प्राणी है । जो अपने व्यक्तित्व से समस्त संसार को प्रभावित करती है ।

नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और मुक्तिबोध का सौंदर्यबोध काव्यगत संवेदनाओं जो 'स्त्री' को उसके संपूर्ण परिवेश के साथ सहज भाव से प्रतिष्ठित करता है । वायवीय कल्पनाओं के बजाय यथार्थ की ठोस जमीन पर पूरी इंसानी संवेदनाओं से साक्षात कराते हैं । इनकी

---

[423] अमर अण्णा - डॉ. माधव पोतदार , पृ 213

कविता की स्त्री सुंदर, नाजुक, अबला न होकर वह परिश्रम करनेवाली और अन्याय के खिलाफ आवाज उठानेवाली है । पुरुषों के बराबरी के हक की दावेदार है । नागार्जुन की 'पाषाणी', 'यशोधरा', 'भिक्षुणी' आदि कविताओं में पीड़ित नारी की सहज प्रेम भावना दिखायी देती है, केदारनाथ अग्रवाल की 'आग और बर्फ की वसियत', 'हे मेरी तुम' जैसी कविताओं के माध्यम से स्त्री का सामर्थ्य और महत्व को रेखांकित किया गया है, तो मुक्तिबोध की 'किसी से' जैसी कविताओं के माध्यम से रूढ़ी, परंपरा का विरोध करनेवाली स्त्री का दर्शन हो जाता है ।

मराठी काव्य में भी नारी का महत्व उपभोग्य वस्तु से अधिक नहीं रहा था । लेकिन इससे पूर्व प्रगतिशील कवियों ने उसे योनी मात्र मानने वालों का विरोध किया हैं । नारी मुक्ति की दृष्टि से विवाह संबंध में जाति-प्रथा, दहेज प्रथा आदि का खंडण करते हुए उसे अस्वीकार किया है । मराठी कविता की स्त्री पुरुष की सहचरणी, मेहनती, पुरुष के सुख-दुख में साथ देनेवाली साहसी के रूप में चित्रित किया गया है । इनके कविता की स्त्री चार दीवारी में बंद दासी नहीं बल्कि उन्नत विचारोंवाली संसार का बीड़ा उठानेवाली स्त्री है । नारायण सुर्वे ने अपनी कविता में स्त्री का चित्रण ममतामयी, त्यागी और संघर्षशील स्त्री के रूप में किया है । 'आगमण' कविता में उस स्त्री का चित्रण किया गया है जो अमावस की रात सरकारी बस में प्रसव वेदना से तडफ रही है और उस स्त्री का पहला प्रसव होने का कारण उसकी वेदना पाठक को झकजोर देती है । उस स्त्री का प्रसव किसी घर, अस्पताल में न होकर चारों ओर से पकडे गये कंबल रूपी दीवारों के आड़ में होता है । इनकी अन्य कविता 'तुमचंच नांव लिवा' में उस स्त्री का चित्रण है जो गरीबी और भूखमरी के कारण वेश्यावृत्ती की ओर प्रवृत्त होती है और एक बच्चे को जन्म देती है । स्कूल में बच्चे का दाखिला कराते समय बच्चे के पिता का नाम क्या लिखे ? इस प्रश्न को समाज के सामने रखती है । एक स्त्री गरीबी, भूखमरी के दिनों में अपने परिवार संभालने के लिए जीवन से संघर्ष करते हुए किस तरह वेश्यावृत्ती को अपनाती है इसका प्रमाण 'मनि आर्डर' कविता है । शाहीर अमर शेख की 'बेडकी आणि तरुणी, अण्णाभाऊ साठे की 'मुंबईची लावणी' आदि कविताएँ यह दर्शाती हैं कि गरीबी मानव जाति के लिए कितनी कष्टदायक होती है और अपनी पेट की आग बुझाने के लिए स्त्रियों को अपना शरीर बेचना पड रहा है ।

हिंदी कविता में रोटी और कपडे के अभाव में जी रहे परिवारों का चित्रण किया गया है किंतु उतना मार्मिक और गहराई से नहीं जितना मराठी कविता में । मराठी में ऐसी भी कविताएँ दिखायी देती हैं जो कपडों के अभाव में जी रहे हैं, और उनका पूरा परिवार एक ही पोषाख पर अपनी जिंदगी गुजार रहा है । जब रात में सोने का समय आता है तो यह परिवार कपडे उतारकर नंगे सो जाता है और दिन निकलते ही कपड़े पहन कर समाज में आता है । रोटी, कपडा और मकान की समस्या को हिंदी कविता में भी दिखाया गया है किंतु मराठी कविता में इस समस्या को दिखाते हुए इन्हें हासिल करने के लिए स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति की ओर मजबूरन कैसे प्रवृत्त होती है,यह भी दिखाया गया है । इसका प्रमाण 'मुंबईची लावणी', 'मनीआर्डर', 'तुमचंच नांव लिवा' आदि कविताएँ हैं । हिंदी कविता में इस तरह की कविताएँ न के बराबर है ।

मार्क्सवाद के अनुसार मानवीय समाज आदिम रूप से वर्गरहित था । और सारी प्रजा एक समाज के रूप में संघटित, सुखी, संपन्न था । वहाँ किसी भी प्रकार का उच्च वर्ग-निम्न वर्ग नहीं था । इसलिए मार्क्सवादी कवि आशा करते हैं कि ऐसी समष्टि चेतना का वर्गरहित समाज फिर से स्थापित हो सकता है । यह स्थापित करने के लिए क्रांति की सृष्टि करना चाहते हैं जो ध्वंस के आधारशिला पर खडा हो । हिंदी और मराठी मार्क्सवादी कवि सर्वहारा वर्ग की क्रांति में ही संपूर्ण मानव की मुक्ति मानते हैं । यही कारण हो सकता है कि नागार्जुन, अण्णाभाऊ साठे, अमर शेख आदि कवि क्रांतिकारी जीवन से जुड़े हुए थे और कई बार जेल भी जा चुके थे ।

नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और मुक्तिबोध समतामूलक समाज की स्थापना के लिए हिंसात्मक क्रांति चाहते हैं । इनका हिंसा पर दृढ विश्वास है, अहिंसा को कब किसने महत्व दिया है । मार्क्सवादी कविता का उद्देश्य समाज, सत्ता और व्यवस्था परिवर्तन है । यह व्यवस्था में सुधार नहीं चाहते हैं बल्कि पूरे व्यवस्था को ही बदलना चाहते हैं और यह अहिंसा से नहीं हिंसा से ही मुमकिन है । केदार ने एक कविता में कहा भी है - 'हिंसा और अहिंसा क्या है, जीवन से बढ़ हिंसा क्या है ।' नागार्जुन भी 'हरिजन गाथा' कविता में नवजात शिशु की हस्तरेखाओं में खुखरी, बम, तलवार, गँडासा, भाला आदि देखते हैं । उस नवजात शिशु को इसलिए सुरक्षित जगहों पर ले जाना चाहते हैं ताकि वह बड़ा होकर हिंसक आंदोलन का

नेतृत्त्व कर सके । मुक्तिबोध ने तो गढ़ और मठों को तोड़ने की बात की है । एक कविता में कवि 'बराबरी का हक, बराबरी का दावा, नहीं तो मुठभेड और धावा' भी बोल देता है ।

मराठी में वर्गरहित समाज के लिए अमर, अण्णा और सुर्वे सिर्फ साहित्य में ही नहीं बल्कि प्रत्यक्ष जीवन में भी कार्यरत थे । अमर-अण्णा ने तो लोगों में जागृति लाने के लिए तमाशा, नाटक और पोवाडे का मंचन किया है । रक्तरूपी तेल मशाल में डालकर शोषण की नीव पर टिकी इस व्यवस्था को जलाने की बात करते हैं । गरीबी, भूखमरी और दरिद्र्य़ जीवन के कारणीभूत साहूकार, जमींदार, पूँजीपतियों को मिटाने के लिए सुर्वे तलवार उठाते हैं । इनको पता हैं कि समता, स्वातंत्र्य और सुखसंपन्नता माँगने से नहीं मिलती बल्कि इसके लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ता है ।

जब हम शिल्प की बात करते हैं तो हिंदी और मराठी के कवि शिल्प के प्रति कभी सतर्क नहीं रहें और न ही कभी शिल्प सजाने-संवारने पर अतिरिक्त ध्यान दिया । उनकी दृष्टि हमेशा कथ्य की ओर रहती थी । वे इस बात पर विश्वास रखते हैं कि कथ्य वजनी हो, बात गहरी हो तो शिल्प अपने-आप आचरण करने लगता है । वे कभी जान बूझकर कविता का श्रृंगार नहीं करते फिर भी शिल्प जानदार और भाषा सहज बोधगम्य प्रतीत होती है । मार्क्सवादी कवियों ने कला से अधिक यथार्थ को महत्व दिया है । दोनों भाषाओं के कवि सामान्य जनता के दुख और पीड़ा की अभिव्यक्ति बिना किसी शब्दों के बुनावट सजावट से करते हैं । कविता के माध्यम से बात करने का इनका अंदाज अभिजात कवियों से भिन्न है ।

नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और मुक्तिबोध की कविताओं में हिंदी भाषा का विराट रूप देखने को मिलता है । केदार और नागार्जुन की भाषा उपयोगितावादी है, ऐसा लगता है उनका भाषा शिल्प भी सामान्य लोगों के उपयोग के लिए निर्मित हुआ है । क्योंकि भाषा असली जन-जीवन की भाषा है । उसमें कहीं भी दिखावटीपन नहीं है । भदेस और गँवार लगनेवाले शब्दों का यथार्थ और सार्थक प्रयोग अपनी कविता में किया है । भाव और भाषा को यथार्थ के धरातल पर रखते हुए सामान्य लोगों के लिए जन शब्दावली तैयार की है । मुक्तिबोध को छोड़ बाकी कवियों का काव्य लेखन सरल और सहज भावों पर आधारित है । केदार और नागार्जुन में सीधे-सरल शब्दों में गहरा प्रभाव ड़ालने की क्षमता हैं ।

मराठी कविता में नारायण सुर्वे, लोकशाहीर अण्णाभाऊ साठे, शाहीर अमर शेख ने मजदूर जीवन को रेखांकित करते समय मजदूर जगत के भावों को अधिक गहरा बनाने के लिए कई बार बोलचाल की भाषा का सहारा लिया है । नारायण सुर्वे ने संवादपरक दीर्घ कविताओं में मजदूर और उनके द्वारा बोली जानेवाली भाषा का प्रयोग किया है । मराठी कविता की सबसे बडी विशेषता यह है कि कविता की भाषा और शैली मुंबई महानगर के जिंदगी से जुड़ी है जो हिंदी कविता से भिन्न है। अमर शेख और अण्णाभाऊ साठे के कविताओं में वह सहजता है जो पाठक को बांधकर रखने में सफलता प्राप्त करती है।

मराठी कविता की तुलना में हिंदी की कविता में भाषा के कई रूप बोलियों का मिश्रण मिलता है । कुछ शब्द अपने-अपने शब्द कोश के हैं जो गँवारू और भदेस लगने पर भी साहित्यिक महत्व कम नहीं हैं; बल्कि विषयानुरूप होने के कारण उसका असर अधिक गहरा दिखायी पडता है । उसी शब्दों को कविता में बोते हैं जिसका सार्थक अर्थ हो और वह सर्वसामान्य लोगों के समझ में आए । संस्कृतनिष्ठ भारी-भरकम शब्दों का प्रयोग कर पांडित प्रदर्शन नहीं करते । इसका कतई यह मतलब नहीं है कि वे संस्कृत नहीं जानते थे बल्कि संस्कृत के भी बहुत बडे पंडित थे, इसका प्रमाण नागार्जुन की 'रत्नगर्भ' काव्य-संग्रह है।

हिंदी और मराठी कविता की भाषा ज्यादातर आम आदमी की बोलचाल की भाषा होने के कारण उनकी काव्य भाषा सहज साधारण लगती है, जिसके कारण संप्रेषणीयता बाधित नहीं होती । कविता पढ़ते ही बात खुल जाती है कि कवि क्या कहना चाहता है । भाषिक सरलता के कारण पाठक को कविता का अर्थ समझने में गलतफहमी नहीं होती जिसके वजह से पाठक अर्थ की गहराई तक जाकर सोच-विचार कर सकता है । कविता के भावों की अनुभूतियों को सहजता से समझने के लिए मार्क्सवादी कवियों ने इस सहज संप्रेषणीयता को अपनाते हुए मुहावरों, लोकोक्तियों का यथायोग्य प्रयोग किया है। हिंदी और मराठी मार्क्सवादी कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जन-भाषा में अनुभूति की अभिव्यक्ति कविता में जान फूँकती है । रही बात बिंब की हिंदी और मराठी कविता में अनेकानेक बिंबों का सार्थक एवं सटीक प्रयोग दिखायी देता है। इन कविताओं में जिन बिंबों को हम देखते हैं उनकी प्रकृति छायावादी कविताओं में आए बिंबों से भिन्न है । मार्क्सवादी कविताओं के बिंब छायावादी रुमानी वायवीयता एवं कल्पनाशीलता की अतिरेक की तरह न

होकर स्वाभाविकता को लेकर आते हैं। दोनों भाषाओं के कवि जिन बिंबों को छूते हैं सबसे पहले उनकी गहरी जाँच पड़ताल संवेदना के संदर्भ में करते हैं।

हिंदी कविता में केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन की कविताओं को पढ़कर ऐसा लगता है कि बिंब रचते समय वह अपनी सारी सर्जनात्मक ऊर्जा यथार्थ के मानवीय अनुभव को वस्तुनिष्ठ आधार पर एक संवेदनामय चित्र में पुनर्गठित कर रहे हो। किसान के प्राकृतिक परिवेश के कवि होने के कारण उनकी सामाजिक विचारधारा की छाप प्रकृति चित्रण पर है और इसीलिए उनके काव्य में प्राकृतिक बिंब एकदम सजीव हो उठते हैं। मुक्तिबोध का तो संपूर्ण काव्य ही बिंबमय है। काव्य में बिंबों का इतना अधिक्य है कि वह दोष की सीमा तक भी पहुँच जाता हैं, क्योंकि एक ही कविता के अनेक बिंब मिलते हैं जो पाठक को किसी एक भाव, एक राग और संपूर्ण रूप से ग्रहण करने में दिक्कत हो जाती है।

मराठी कवियों का उद्देश्य उनके अनुभवों को चित्रित करना था बिंबों का चित्रण कवि ने जाने अनजाने में किया है। उनका कार्य क्षेत्र मजदूर और उनका यथार्थ जीवन रहा है। इसे चित्रित करते समय प्रकृति की ओर उनका ध्यान बहुत कम गया है। जीवन के अंतर्विरोधों, उसकी क्षमता, खुशियाँ, दर्द, बेचैनी, शोषण, संघर्ष आदि समस्त भावों को प्रभावकारी ढंग से व्यक्त करने के लिए कवियों ने जीवन के आस-पास की वस्तुओं का बिंबिकरण किया हैं।

हिंदी और मराठी कविता में सभी संचारी, व्यभिचारी और मूल रसों के बिंब मिल जाते हैं। मुक्तिबोध और नारायण सुर्वे के काव्य में ज्यादातर दुख संचारी करुण और अनेक स्थानों पर जुगुप्सा संचारी वीभत्स भाव बिंब देखने को मिलते हैं। दोनों के बिंब यथार्थ जीवन के ऐसे तीखे कोण है जिनमें कवियों ने अपनी विचारधारा को जीवन संघर्ष के साथ मिलाकर चित्रात्मक रूप में उपस्थित किया है। बिंबों में ताजगी तीव्रता और संवेदना जगाने की असीम क्षमता है। बिंबों का ढाँचा पारंपारिक न होकर गतिशील हैं।

हिंदी और मराठी कविता में बिंब की तरह प्रतीक भी सामान्य लोकजीवन से लिए गये हैं। दोनों भाषाओं के कविता में अनेक सार्थक एवं सटीक प्रतीकों का सफल प्रयोग देखने को मिलता है। शोषणकारी परंपरा को स्पष्ट करने के लिए कवियों ने इतिहास और पुराण-मान्य प्रतीकों का भी प्रयोग किया है।

हिंदी कवियों ने विविध आर्थिक स्तरों को चित्रित किया है, और उसके लिए धातुओं को प्रतीक के रूप में अपनाया है जैसे - 'चाँदी के बापू' , 'चंदन के विनोबा' आदि । इस तरह के प्रतीक मराठी में दुर्मिल है । एक ही प्रतीक आवश्यकतानुसार कविता में अलग-अलग संदर्भ में प्रयुक्त किये गये हैं , मुक्तिबोध ने वटवृक्ष को कहीं जीवन, कहीं परंपरा, कहीं स्नेह के रूप में प्रयुक्त किया है । मुक्तिबोध की कुछ कविताओं के शीर्षक भी प्रतीकबद्ध है जैसे - ब्रह्मराक्षस : अहंवादी, विलक्षण किंतु भटकी हुई प्रतिभा के धनि व्यक्ति का प्रतीक, डूबता चाँद : मृतप्राय पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतीक, काव्यात्मन फणिधर : कवि की क्रांति चेतना का प्रतीक, चंबल की घाटी : शोषित और आतंकित देश-काल का प्रतीक आदि । केदार के काव्य में ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलेंगे जहाँ कवि ने बिंबों को प्रतीकों में ढालने की कोशिश की हैं ।

मराठी कविता में पूँजीपति, साहूकार, साम्राज्यवादी और अवसरवादियों को साँप, मछली जो छोटी मछली को खाती है आदि प्रतीकों से अभिव्यक्त किया गया है । लाल बावटा, लाल तारा, साँप, बेडक, अजगर, आग, तलवार, सूरज आदि मराठी कवियों के प्रिय प्रतीक रहे हैं । इनमें से साँप, बेडक, अजगर को छोड बाकी क्रांति के प्रतीक हैं ।

उपसंहार

निष्कर्ष यह है कि प्रगतिवादी भाषा में शास्त्रीयता, कलात्मक परिष्कृति एवं साहित्यिक औदात्य भले ही उतना न हो, परंतु एक विविधता तथा व्यापकता आवश्यक है, जो उसे जन-जीवन के निकट से प्राप्त हुई है। इसकी सरल, सुबोध, सामान्य, व्यवहारिक एवं प्रचलित भाषा ने साहित्य को नई शक्ति प्रदान की है। छायावाद में जीवन और काव्य की भाषा में जो अंतराल आ गया था , उसको दूर कर सामान्य स्तर पर लाने में प्रगतिवादियों का महान योगदान है।

कई लोगों के मन में यह सवाल पैदा हो सकता है कि हमारे जैसे समाज में क्या मार्क्सवादी साहित्य गरीबी, भूखमरी खत्म कर सकता है ? साहित्य गरीबी नहीं हटा सकता लेकिन दृष्टिकोण में परिवर्तन तो जरुर ला सकता है। कोई राजनीतिक क्रांति नहीं ला सकता एक जाति में सवाल पूछते रहने की कुवत विकसित कर सकता है यह उसे बचाये रख सकता है। केदारनाथ अग्रवाल की एक कविता है ' आदमी का बेटा ' इस कविता मे गरीबी का दयनीय चित्रण किया गया है। एक बाप भूख से बेहाल होकर अपने बेटे को बेचता है , बेचनेवाला व्यक्ति कौन है ? किस गाँव, जिला, क्षेत्र का है या किस जाति का हम नहीं जानते। उस कविता को पढ़कर भले ही उसका दुख दूर नहीं कर सकते किंतु उसे दूर करने की आकांक्षा ने हमारे अंदर जन्म लिया है यह कोई कम बात नहीं है, और यही मार्क्सवादी कविता की सार्थकता भी।

प्रथम अध्याय का शीर्षक " हिन्दी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का उद्‌भव और विकास" है। दोनों भाषाओं के मार्क्सवादी काव्य की परम्पराओं का समुचित मूल्यांकन करने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है। चयनित कवियों की पूर्व-परम्परा के रूप में देखा जाए तो हिन्दी काव्य क्षेत्र में मार्क्सवादी चेतना का आरंभ सन् 1918 में गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की कविता 'वीरप्रण' से होता है, किन्तु इससे पूर्व भी हमें इसके संकेत पंडित केशवप्रसाद मिश्र की 1915 में लिखित कविता 'जाड़ा और निर्धन' में मिलते हैं। वही मराठी काव्यक्षेत्र में मार्क्सवादी चेतना का आगमन हिन्दी की अपेक्षा बाद में हुआ।

विं.दा. करंदीकर की 1935 के आस-पास लिखित कविताओं में इसकी शुरुआत देखी जा सकती है । इसी क्रम में हिन्दी और मराठी के मार्क्सवादी चेतना से युक्त कवियों और कविताओं की परम्परा का उल्लेख भी प्रस्तुत प्रथम अध्याय में किया गया है । और साथ ही मार्क्सवादी चेतना से क्या अभिप्राय है, इसके सन्दर्भ में भी अध्याय के आरंभ में अपेक्षित चर्चा की गई है । हिन्दी और मराठी कविताओं की इस मार्क्सवादी परम्परा को रेखांकित करते हुए बराबर इस बात पर भी ध्यान दिया गया है कि बाद के समय में मार्क्सवादी विचारधारा की जो विभिन्न व्याख्याएँ की गई हैं, उसने काव्यक्षेत्र को किस प्रकार प्रभावित किया । इस रूप में मार्क्सवादी काव्य लेखन की परम्परा में पूर्णतः तो नहीं, किन्तु किंचित दृष्टिभेद दिखाई देता है, जिसे रेखांकित करने का प्रयास यथास्थान किया गया है ।

मार्क्सवादी विचारधारा ने समुचे विश्व साहित्य पर अमिट छाप छोड़ी है । विशेषतः भारतीय साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा ने अमूलचूल परिवर्तन वस्तु और रूप दोनों स्तरों पर लाए हैं । ईश्वर और धर्म के प्रति दृष्टिकोण, यथार्थ को देखने का नज़रिया, सामंत-महाजन एवं धनिकों के प्रति दृष्टिकोण, नारी एवं अन्य हाशिएकृत समाज के प्रति दृष्टिकोण को स्थानापन्न पहली बार हिन्दी और मराठी काव्य जगत् में वर्ग रहित एवं समतावादी समाज की परिकल्पना ने ले लिया । अस्तु, इन्हीं बिन्दुओं को प्रस्थान बनाकर "हिन्दी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का प्रतिफलन" शीर्षक द्वितीय अध्याय में चयनीत उभय भाषाओं के काव्य में मार्क्सवादी चेतना के प्रतिफलन को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है । इन बिन्दुओं के आधार पर देखने से स्पष्ट दिखाई देता है कि हिन्दी और मराठी काव्य क्षेत्र में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित कवियों ने अभूतपूर्व परिवर्तन लाए हैं । पूर्वप्रचलित धर्म की अफीमवादी कई मान्यताओं को हिन्दी-मराठी मार्क्सवादी कवियों ने चुनौती दी । ऐसे में कहने की आवश्यकता नहीं कि यह कविता भाववाद के स्थान पर बौद्धिकता एवं उसके प्रामाण्यता को अपना आधार बनाती है । विदेहवाद के स्थान पर देहवाद इसकी अनन्य विशेषता है । न यह कविता आदिकालीन कविता की तरह किसी सामंत-जमींदार या बादशाह की स्तुति करती है, न भक्तिकालीन कविता की तरह अपने उद्धार के लिए किसी अवतार की प्रतिक्षा में या मिलन की आकांक्षा में प्रश्रय पाती है और न ही रीतिकालीन नव-क्लासिकी एवं चारण प्रवृत्ति इसमें दिखाई देती है । वास्तविक रूप में हिन्दी और मराठी दोनों भाषाओं के काव्य में आधुनिकता का आरंभ मार्क्सवादी काव्य से माना जा सकता है ।

आधुनिकता मूल्याधारित धारणा है और इसके स्पष्ट मूल्य पहले-पहल हिन्दी-मराठी काव्य के सन्दर्भ में मार्क्सवादी चेतना से युक्त कविताओं में ही दिखाई देते हैं। व्यंग्य इस कविता का प्राण है तो इसकी आँचलिक भाषा अभिजात्य साहित्य संस्कृति के प्रति चुनौती। तृणमूल में उतरकर यथार्थ चित्रण जिस प्रकार हिन्दी में नागार्जुन एवं नारायण सुर्वे ने किया है, वह दोनों काव्य-परम्पराओं में अभूतपूर्व परिवर्तन है।

तृतीय अध्याय का शीर्षक "हिन्दी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतना का प्रतिफलन" है। इस अध्याय में मार्क्सवादी कविता के शिल्प पक्ष का अध्ययन किया गया है। हिन्दी और मराठी के चयनित कवियों की कविताओं के रूप पक्ष पर स्वतंत्र रूप में भाषा, बिम्ब, प्रतीक, कहन शैली आदि को सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है। मार्क्सवादी कविता पर यह गलत आरोप लगाया जाता है कि वह वस्तु के प्रति अतिरिक्त सतर्कता बरतते हुए रूप के प्रति उपेक्षा का भाव अपनाती है। यह सही हो सकता है, किन्तु प्रश्न यह है कि किस दृष्टि से यह सही है ? इन आरोपवादी महाशयों को इस सापेक्षता और उपेक्षता के कारणों का पता लगाना कष्टसाध्य लगता है, इसी कारण ये आरोप लगाकर अपना पल्ला झाड़ लेते हैं। वस्तुतः मार्क्सवादी कविता जनता (लोक) की कविता है। इसके लिए अनिवार्य था कि कविता की पहुँच साधारण जन तक हो और कविता उसी वर्ग तक पहुँचे जिस वर्ग के लिए और जिस वर्ग के सन्दर्भ में यह लिखी जा रही थी। डॉ.नामवर सिंह ने क्या यह गलत कहा है कि छायावादी कविता ने हिन्दी के जितने पाठक कम किए उतने किसी अन्य काव्यान्दोलन ने नहीं किए? प्रायः यही बात मराठी के छायावाद के सहचरी काव्यान्दोलन रविकीरण मंडल के काव्य के सन्दर्भ में कही जा सकती है। ऐसे में हिन्दी की प्रगतिवादी कविता को अपने कथ्य को साधारण जन तक पहुँचाने के लिए विशिष्ट रूप का इस्तेमाल करना अनिवार्य हो गया था और उन्होंने अपना एक रूप निर्माण भी किया।

मार्क्सवादी कविता की भाषा उसकी अपनी विषिष्टता है। यहाँ नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और मुक्तिबोध की भाषा हो या मराठी कवियों में नारायण सुर्वे, लोकशाहीर अण्णाभाऊ साठे या शाहीर अमर शेख। इन कवियों की भाषा में भाव और भाषा का साहचर्य अप्रतिम है। लोकशाहीर अण्णाभाऊ साठे द्वारा प्रयुक्त ग्रामांचलों की भाषा एक साथ मिल मजदूरों एवं किसान-कारीगरों-खेत मज़दूरों एवं दिहाड़ी मजदूरों के भावों विचारों को सम्प्रेषित करने में समर्थ है। नारायण सुर्वे की संवादपरक कविताएँ मराठी की अपनी कहन

शैली का प्रतिनिधित्व करती हैं। अमर शेख की कविताओं की गेयता शास्त्रीयता की अपेक्षा लोकधुनों के अधिक करीब है। जीवन संघर्ष के जिस मराठी भाषा का रूप अण्णाभाऊ के काव्य में दिखाई देता है उसका हिन्दी रूप केदार के काव्य में दिखाई देता है। जो संवादपरक मराठी कवि सुर्वे की कविता में आया है उसका हिन्दी रूप मुक्तिबोध, नागार्जुन एवं केदारनाथा अग्रवाल में भी यथास्थान दिखाई देता है। अभिजात्य भाषा संस्कृति को धत्ता बताते हुए हिन्दी मराठी दोनों भाषाओं के कवियों ने गंवारू, भदेस भाषा का प्रयोग उनके काव्यवस्तु के अनुरूप किया है। यह तत्व उनकी कविताओं की प्रामाणिकता को बढ़ावा देता है। हिन्दी कवियों ने हिन्दी की कई बोलियों का खुलकर प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। जन भाषा में अनुभूति की अभिव्यक्ति भी जनभाषा में होने के कारण यह जीवित कविताएँ कही जा सकती है।

यथार्थ चित्रण मार्क्सवादी कविता का प्राण है और इस कविता की इस प्रवृत्ति ने इसमें अपने पूर्ववर्ती काव्य की तुलना में भिन्न बिम्ब विधान का प्रवेश कराया है। बिम्ब सौदर्य ही नहीं यथार्य को अधिक सम्प्रेषणीय बनाने में भी मददगार साबित होते हैं। नागार्जुन एवं केदार में जिस प्रकार के प्राकृतिक बिम्बों की भरमार है, वह न छायवादी बिम्बविधान के करीब है और न रीतिकालीन कवि सेनापति के। बिम्बों में भी यथार्थ के मानवीय अनुभवों को वस्तुनिष्ठ आधार पर एक संवेदनामय चित्र के रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति यहाँ दिखाई देती है। नागार्जुन का चूल्हा और चक्की का बिम्ब सर्वश्रुत है। मुक्तिबोध की कविता में बिम्बों का आधिक्य उसे चलचित्र बना देता है। यहाँ सीन हरदम ऐसे बदलते हैं कि पर्दे पर दृश्य देख रहे हो। मुक्तिबोध की कविता चित्रभाषा का सर्वोत्तम उदाहरण है। इन हिन्दी कवियों की अपेक्षा चयनित मराठी कवियों का ध्यान प्राकृतिक बिम्बों की ओर कम भले ही गया हो किन्तु उसकी क्षतिपूर्ति शहरों में रह रहे मज़दूरों की बस्तियों के, झुग्गियों के चित्रण से अण्णाभाऊ ने पूरे जंगल का चित्रण खड़ा कर दिया है। इन बिम्बों में भाव एवं विचारों का वस्तुकरण कुछ इस प्रकार से किया गया है कि पाठक-श्रोता उसी विश्व में पहुँच जाता है। शाहिर अमर शेख की गेयता बिम्बों के स्थान पर कथन पर अधिक जोर देती है। नारायण सुर्वे नाटकीय प्रसंगों के माध्यम से बड़े बिम्बों का निर्माण करते हैं, जो कारुणिक स्थिति और त्रासदी के बीच खड़े होते हैं। उदारहणस्वरूप उनकी कविता 'मास्तर तुमचच नाव लिहा' देखी जा सकती है।

प्रत्येक ग्रामांचल की अपनी प्रतीक व्यवस्था होती है । इन कवियों ने अपने काव्यकथा क्षेत्र के प्रतीकों का खुलकर प्रयोग अपनी कविताओं में किया है और साथ ही मार्क्सवादी कविताओं में सामान्य तौर पर पाए जानेवाले प्रतीकों का भी प्रयोग किया है । एक ही प्रतीक को सन्दर्भानुसार अलग-अलग अर्थ में प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है । मुक्तिबोध ने वटवृक्ष को कहीं जीवन का, कहीं परम्परा का तो कहीं स्नेह का प्रतीक बनाकर प्रयुक्त किया है। केदार के काव्य में ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलेंगें जहाँ कवि ने बिम्बों को प्रतीकों में ढ़ालने की कोशिश की है । मराठी कवियों ने पूँजीपति, साहूकार, साम्राज्यवाद और अवसरवादियों के लिए बार-बार साँप, मछली, आदि प्रतिकों का प्रयोग किया है । लाल बावटा, लाल तारा, साँप, मेंढ़क, अजगर, आग, तलवार, सूरज आदि मराठी कवियों के प्रिय प्रतीक हैं । इस प्रकार रूप के प्रति नैराश्य नहीं अपितु अपनी कविताओं के वस्तुनुरूप रूप निर्माण की प्रवृत्ति मार्क्सवादी कवियों में देखी जा सकती है, जो उन्हें उनकी पूर्ववर्ती कवि-काव्य परम्परा से अलगाती है ।

"हिन्दी और मराठी कविता में मार्क्सवादी चेतनाः तुलनात्मक अध्ययन" शीर्षक चतुर्थ अध्याय में सर्वप्रथम हिन्दी और मराठी में लिखित मार्क्सवादी कविता की परम्परा, उनकी परम्पराओं का विकास, उद्‌भव की परिस्थितियों को तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखते हुए चयनित कवियों की इस परम्परा में योगदान का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है । तुलना केवल कवियों और कविताओं की ही नहीं अपितु उनके पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियों की भी की गई है । सामाजिक परिस्थितियाँ एवं कवियों द्वारा विचारधारा का आत्मसातिकरण भी तुलना का यथास्थान बिन्दु रहा है । वस्तु के साथ-साथ काव्य के रूप पक्ष पर भी ध्यान दिया गया है । पूर्वप्रचलित सामाजिक धारणाओं के सन्दर्भ में चयनित कवियों के दृष्टिकोण को तुलना का बिन्दु कई स्थानों पर बनाया गया है । यथार्थ के प्रति दृष्टिकोण, शोषकों के प्रति दृष्टिकोण एवं उनके प्रति रवैया और उसकी अभिव्यक्ति भी काव्य तुलना के प्रसंग में ध्यातव्य बिन्दु रहा है । इन कवियों की वर्ग एवं शोषण रहित समाज की परिकल्पना भले की मार्क्सवाद से प्रभावित रही हो किन्तु उसमें परिस्थितियों के अनुसार कई स्थानों पर वस्तु और रूप दोनों स्तरों पर अन्तर रहा है, इसे तुलना द्वारा अधिक स्पष्ट करने में सहायता मिली है ।

आधार ग्रंथ सूची

हिन्दी

1.अपने खेत में - नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली - 02, प्र.सं. : 1997

2.अपूर्वा - केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. : 1984

3.आखिर ऐसा क्या कह दिया मैने - नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली - 02, प्र.सं. : 1986

4.आत्मगंध - केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, प्र.सं. : 1988

5.ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या - नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-02, प्र.सं. 1985

6.कहें केदार खरी खरी - केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, इललाहाबाद, प्र.सं. : 1983

7.खिचडी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन, संभावना प्रकाशन, नई दिल्ली - 02, प्र.सं. : 1980

8.चाँद का मुँह टेढ़ा है - ग. मा. मुक्तिबोध, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली - 02, स.प्र. 1981

9.जो शिलाएँ तोडते हैं -संकलक: अशोक त्रिपाठी, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, प्र.सं. : 1986

10.तुमने कहा था - नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली - 02, प्र.सं. : 1980

11.पंख और पतवार - केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, प्र.सं. 1979

12.पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली - 02, प्र.सं.1983

13.प्यासी पथराई आँखे - नागार्जुन, अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण : 1985

14.भूरी भूरी खाक धूल - ग. मा. मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-02, प्र.सं. 1980

15.मैं मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा - नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली - 02, प्र.सं. 1997

16.सतरंगे पंखोवाली - नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली - 02, प्र.सं. 2001

17. हजार-हजार बाहोंवाली - नागार्जुन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली - 02, प्र.सं. 1981

मराठी

1.अण्णाभाऊ साठे यांचे पोवाडे व लावण्या - अण्णाभाऊ साठे लोकवाङमय गृह, भूपेश गुप्ता भवन 85, सयानी रोड, प्रभादेवी मुंबई-25, सप्तम संस्करण : जुलै 2008

2.ऐसा गा मी ब्रह्म - नारायण सुर्वे, पॉप्युलर प्रकाशन प्रा. लि. 301, महालक्ष्मी चेंबर्स 22, भुलाभाई देसाई रोड मुंबई -26, संस्करण : 1999

3.कलश - अमर शेख, कॉंटिनेंटल प्रकाशन : पुणे, प्रथम संस्करण : 1958

4.गवसलेल्या कविता - संपा. विजय तापस, पॉप्युलर प्रकाशन प्रा. लि. 301, महालक्ष्मी चेंबर्स 22, भुलाभाई देसाई रोड मुंबई -26, संस्करण : 2004

5.जाहीरनामा - नारायण सुर्वे, पॉप्युलर प्रकाशन प्रा. लि. 301, महालक्ष्मी चेंबर्स 22, भुलाभाई देसाई रोड मुंबई -26, पुनर्मुद्रण : 2008/1930

6.नव्या मानसाचे आगमन - नारायण सुर्वे, पॉप्युलर प्रकाशन प्रा. लि. 35-सी, पं. मालवीय मार्ग ताडदेव, मुंबई -34, , प्रथम संस्करण : 1995

7.निवडक नारायण सुर्वे -संपा. कुसुमाग्रज, लोकवाङमय गृह, भूपेश गुप्ता भवन 85, सयानी रोड, प्रभादेवी मुंबई-25, सप्तम संस्करण : दिसंबर 2007

8.माझे विद्यापीठ - नारायण सुर्वे, पॉप्युलर प्रकाशन प्रा. लि. 301, महालक्ष्मी चेंबर्स 22, भुलाभाई देसाई रोड मुंबई -26, दूसरी आवृत्ति : 2007

9.शाहीर अमर शेख यांचे पोवाडे, लोकगीत व कविता - सं. डॉ. अजीज नदाफ, लोकवाङमय गृह, भूपेश गुप्ता भवन 85, सयानी रोड, प्रभादेवी मुंबई -25, द्वितीय संस्करण : नवम्बर 2005

10.सनद - संपा. कुसुमाग्रज , पॉप्युलर प्रकाशन प्रा. लि. 301, महालक्ष्मी चेंबर्स 22, भुलाभाई देसाई रोड मुंबई -26, संस्करण : 2005

संदर्भ ग्रंथ सूची

हिन्दी

1.अंतस्तल का पूरा विप्लव : अंधेरे में, सं. निर्मला जैन, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. जी-17, जगतपुरी, दिल्ली 051, दूसरी आवृत्ति-2000

2.आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबा-1, नवीन संस्करण-2004

3.आलोचना के प्रगतिशील आयाम - शिवकुमार मिश्र, पंचशील प्रकाशन जयपुर, सं. 1987

4.कविता के नये प्रतिमान - नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, 1983

5.कामायनी एक पुनर्विचार - गजानन माधव मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 02, छटी आवृत्ति, 2012

6.केदारनाथ अग्रवाल - सं. अजय तिवारी परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं.:1986

7.छायावादोत्तर काव्य-प्रवृत्तियाँ- टी.एन.मुरली कृष्णम्मा, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली-02, प्र. सं.-1986

8.जनकवि नागार्जुन - सम्पा. प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, प्र.सं-2004

9.धर्म की मार्क्सवादी धारणा - गोरख पांडेय, सं. गोपाल प्रधान, समकालीन प्रकाशन, आजाद मार्केट, पीरमुहानी पटना-800003, प्रथम संस्करण-2003

10.प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य - रेखा अवस्थी, स्वराज प्रकाशन दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण-2000

11.प्रगतिवाद पुनर्मूल्यांकन - हंसराज रहबर, विभूति प्र. दिल्ली सं. 1987

12.प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रूप - डॉ. रवी रंजन, मिलिंद प्रकाशन, कंदास्वामी बाग, सुल्तान बाजार, हैदराबाद

13.प्रगतिवादी काव्य साहित्य- कृष्णलाल हंस, मध्यप्रदेश हिंदी अकादमी, 1971

14.प्रगतिवादी समीक्षा - रामप्रसाद त्रिवेदी, ग्रंथम प्रकाशन कानपुर, 1964

15.प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल- डॉ. रामविलास शर्मा

16.मार्क्स एंगेल्स कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र - फ्रेडरिक एंगेल्स, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि. नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008

17.मार्क्सवाद और आधुनिक हिंदी कविता - जगदीश्वर चतुर्वेदी, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली-02, प्रथम संस्करण, 1994.

18.मार्क्सवाद और हिंदी कविता - डॉ. भक्तराम शर्मा, वाणी प्रकाशन, 61 एफ, कमलानगर दिल्ली 07, प्रथम संस्करण, 1980

19.मार्क्सवादी काव्य शास्त्र की भूमिका- शर्मा मक्खनलाल, प्रेमाशिल्प प्रकाशन दिल्ली, सं.1991

20.मार्क्सवादी समाज शास्त्रीय और ऐतिहासिक आलोचना - पांडेय शशिभूषण – राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, संस्करण, 1992

21.मार्क्सवादी साहित्य चिंतन - शिवकुमार मिश्र, म. प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी संस्करण,1973

22.मार्क्सवादी सौंदर्य शास्त्र - कमला प्रसाद, संभावना प्रकाशन हापुड, संस्करण 1977

23.मुक्तिबोध - सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, ज्ञान भारती द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण, 1989

24.मुक्तिबोध के सौंदर्य सिद्धांतों का विवेचन - डॉ. श्यामराव, मिलिंद प्रकाशन, प्रथम सं. 2009

25.मुक्तिबोध जीवन-संघर्ष बनाम काव्य-संघर्ष, डॉ. श्याम राव, मिलिंद प्रकाशन हैदराबाद, प्रथम संस्करण नवंबर, 2008

26.मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना, नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-02, प्रथम संस्करण-2010

27.यथार्थवाद और सौंदर्य शास्त्र , सैनी राजकुमार राजधानी प्र. दिल्ली, 1988

28.विचारबोध - के. अय परिमल प्रकाशन इलाहाबाद प्र. संस्करण, 1980

29.श्रम का सूरज - सं. डॉ. रामविलास शर्मा, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद 06, प्रथम संस्करण : 1986

30.हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना - जनेश्वर वर्मा, ग्रंथम प्रकाशन, रामबाग कानपूर-12, प्रथम संस्करण 1974

31.हिंदी की मार्क्सवादी कविता - डॉ. सम्पत ठाकुर, प्रगति प्रकाशन, आगरा-3, प्रथम संस्करण,1978

मराठी

1.अनन्यता मर्ढेकरांची - द. भि. कुलकर्णी, पद्मगंधा प्रकाशन, पांडुरंग कॉलनी, एरंडवन पुणे-38, प्रथम संस्करण 25 जुलै 2009

2.कवितेविषयी - वसंत आबाजी डहाके, स्वरूप प्रकाशन औरंगाबाद, प्रथम संस्करण, जुलै,1999

3.तीन अर्वाचीन कवी मार्क्सवादी दृष्टिक्षेप - प्रा. स.त्र्यं. कुल्ली, लोकवाङमय गृह, भूपेश गुप्ता भवन, प्रभादेवी मुंबई

4.धुके आणि शिल्प - त्र्य. वि. सरदेशमुख, सन पब्लिकेशन 317, नारायण पेठ, पुणे-30, प्रथम संस्करण, 1 अप्रैल 1985

5.नवी मळवाट - शरतचंद्र मुक्तिबोध, मौज प्रकाशन गृह, गिरगाव, मुंबई-04, चौथा संस्करण, जून 1997

6.नारायण सुर्वे यांची कविता आणि काव्यदृष्टी - प्रा. मनोज तायडे, सुगावा प्रकाशन, 562, सदाशिव पेठ, पुणे-30, प्रथम संस्करण, सितंबर 2005

7.मराठी कविता : परंपरा आणि दर्शन - रविंद्र शोभणे, विजय प्रकाशन, सीताबर्डी, नागपुर-12, संस्करण 1 मार्च 2006

8.मराठी कविता आणि आधुनिकता – डॉ. यशवंत मनोहर, अंबेडकर धम्म प्रकाशन, प्रोफेसर कालोनी, अमरावती मार्ग नागपुर-10, प्रथम संस्करण, धम्मचक्र प्रवर्तन 1993

9.मार्क्सवाद आणि मराठी साहित्य - डॉ. वि.स.जोग, विजय प्रकाशन, सीताबर्डी, नागपुर, प्रथम संस्करण, 29 सितंबर 1981

10.मुक्तिबोधांची निवडक कविता - सं. यशवंत मनोहर, साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण, 1993

11.मुक्तिबोधांचे साहित्य - रा. भा. पाटणकर, मौज प्रकाशन ग्ह, गिरगाव मुंबई-04, प्रथम संस्करण, 30 नवंबर 1983

12.शाहीर अमर अण्णा - डॉ. माधव पोतदार, अनुबंध प्रकाशन, बालाजी नगर पुणे -43, प्रथम संस्करण, फरवरी 2004

13.सूचींची सूची - सु. रा. चुनेकर, प्रतिमा प्रकाशन क्र. 120, पुणे प्रथम संस्करण, नवंबर 1995

पत्र-पत्रिकाएँ

1. अलाव(नागार्जुन जन्मशती विशेषांक), सं. रामकुमार कृषक, सी-3/59, नागार्जुन नगर, सादतपुर विस्तार दिल्ली-110094, जनवरी-फरवरी 2011

2. आधुनिक हिंदी साहित्य, सं. शशिभूषण सिंहल अंक 3, 'साहित्यानुशीलन: का विशेषांक 'आधुनिक हिंदी साहित्य' वर्ष: 1980, हिंदी विभाग, महर्षिदयानंद विश्वविद्यालय, मेरठ

3. आलोचना(त्रैमासिक), सं. नामवर सिह, वर्ष: 29 नवांक 54-55 अक्तूबर-दिसंबर,1980

4. आलोचना(त्रैमासिक), सं. नामवर सिह, वर्ष: 30 नवांक 58(पूर्णांक 95) जुलाई-सितम्बर,1981

5. आलोचना(त्रैमासिक), सं. नामवर सिह, वर्ष: 35अंक81 अप्रेल-जून,1987

6. कुरजांसन्देश, सं. प्रेमचंद गाँधी, ई-10, गाँधी नगर जयपुर-15 प्रवेशांक: मार्च-अगस्त, 2011

7. धूमकेतु, सं. विमल वर्मा, हिंदी अकादमी कलकत्ता, पश्चिम बंगाल, छठवां अंक,1999

8. पहल, 14 मासिक,सं. ज्ञानरंजन: कमला प्रसाद, जून 1979

9. बनास जन, सं.पल्लव,393 डी.डी.ए.ब्लॉक सी एंड डी कनिष्क अपार्टमेंट, शालीमारबाग,दिल्ली-110088,नवम्बर,2012

10. संकल्य(त्रैमासिक) सं. प्रो.टी. मोहन सिंह, प्लाटनं. 10,रोडनं.6समतापुरी कालोनी हैदराबाद, जनवरी-जून 2012

11. संचारिका, सं. डॉ.नारायण वाकले(मंत्री. म. हि. प्र. सभा,औरंगाबाद) प्रकाश ऑफसेट,दीवान देवडी, चुना भट्टी के पास औरंगाबाद- संयुक्तांक: जनवरी-फरवरी-मार्च 2011
12. समकालीनचुनौती(नागार्जुन जन्मशती विशेषांक), सं. सुरेन्द्र प्रसाद सुमन, लेनिन आश्रम, माल गोदाम चौक समिस्तीपुर-848101, जुलाई-सितंबर 2010
13. समकालीनचुनौती, सं. सुरेन्द्र प्रसाद सुमन, समस्तीपुर बिहार,वर्ष 1 सयुक्तांक अक्तोबर 2010 मार्च 2011
14. समकालीन भारतीय साहित्य,सं. शानी, साहित्य अकादमी, वर्ष: 8 अंक: 30रविन्द्र भवन,35 फिरोजशाह मार्ग नई दिल्ली 01, अक्तुम्बर-दिसम्बर 1987
15. समकालीन भारतीय साहित्य, वर्ष 32 अंक 159- साहित्य अकादमी, रविन्द्र भवन,35 फिरोजशाह मार्ग नई दिल्ली- जनवरी-फरवरी 2012
16. साक्षात्कार, सं. आग्नेय, नवम्बर 1998